THE SANSKRIT ŚIKSHIKÂ

A HINDI VERSION

OF

THE 'SANSKRIT TEACHER'

BY

RÂO BAHÂDUR VIDYÂBHÛSHANA KAMALÂŚANKARA PRÂNAŚANKARA TRIVEDÎ, B.A.,

RETIRED PRINCIPAL, P. R. TRAINING COLLEGE, AHMEDÂBÂD

(HONORARY FELLOW OF THE UNIVERSITY OF BOMBAY

AND

EXAMINER IN SANSKRIT IN THE BOMBAY AND THE PANJAB UNIVERSITIES)

Translated into Hindi

BY

PANDIT LAKSHMANA ŚÂSTRÎ TAILANGA SÂHITYÂCHÂRYA

PROFESSOR OF SANSKRIT, QUEEN'S COLLEGE, BENARES



MACMILLAN & CO., LIMITED

LONDON, BOMBAY, CALCUTTA, AND MADRAS

1917

Price Rs. 2/-

All rights reserved

PRINTED BY UPENDRA NATH BHATTACHARYYA
HARE PRESS
46 BECHU CHATTERJEE STREET CALCUTTA

संस्कृतशिक्षिका

अर्थात् [illegible]।

रावबहादुर विद्याभूषण कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी, बी ए,

रिटायर्ड प्रिन्सिपल, पी आर ट्रेनिङ् कालेज, अमदाबाद,

मुम्बई विश्वविद्यालयके आनररी फेलो, बम्बई तथा पञ्जाब

विश्वविद्यालयके संस्कृत परीक्षक विरचित

'संस्कृत टीचर्'का

हिन्दी रूपान्तर



अनुवादक

पण्डित लक्ष्मणशास्त्री तैलङ्ग, साहित्याचार्य,

संस्कृत प्रोफेसर, क्वीन्स् कालेज्,

बनारस।

प्रकाशक

म्याक्मिलन् एण्ड कम्पनी लिमिटेड्

लण्डन्, बाम्बे कलकत्ता, और मद्रास।

१९१७

मूल्य २)

सर्व स्वत्व स्वाधीन।

भूमिका।

—०—

संस्कृत भाषा प्राचीन साहित्यका एक अमूल्य निधि है और यह प्रकृततत्त्वशास्त्र, भाषाशास्त्र, तथा इतर शास्त्रोंकी दृष्टिसे सब जातियोंको लाभदायक है, विशेषत हिन्दुओंको, जिनका जीवन धर्ममय है। मातृभाषाके यथार्थ ज्ञान तथा परिपाकके लिये और धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्यके—जो सभ्य जगत्का एक आश्चर्य है—बोधके लिये संस्कृत भाषाका अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इसकी लालसा लोगोंमें अवश्य उत्पन्न होनी चाहिये। जर्मन्, अंग्रेज, अमेरिकन् इत्यादि जातिया इस पर मुग्ध होकर इसके अभ्यासके लिये अपना जीवन समर्पण करते हैं।

मैं जब स्कूलों तथा कालेजोंमें कार्य करता था तब मेरे ध्यानमें यह बात आयी कि विद्यार्थियोंमें रुचि न होनेसे संस्कृतकी बड़ी हानि हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें संस्कृतका अनुराग उत्पन्न हो सकता और वह स्थिर भी हो सकता है यदि योग्य दिशासे उसका निरूपण किया जाय और साहित्यके बहुमूल्य खजाने उनके सामने रक्खे जाय। 'संस्कृत शिक्षिका' कुछ नयी रीतिपर बनायी गयी है और इसका उद्देश यह है कि संस्कृतमें विद्यार्थियोंका अनुराग उत्पन्न हो और उसका अभ्यास सुकर हो।

इस ग्रन्थमें विशेष बातें ये हैं —

(अ) प्रति पाठमें विद्यार्थियोंके लिये संस्कृतसाहित्यका साराश दिया गया है। वाक्य, प्रबन्ध तथा श्लोकोंके चुनावमें बड़ा ध्यान दिया गया है। ये महाकवियोंके प्रबन्धोंसे, महापुराणोंसे तथा उपनिषदोंसे लिये गये हैं। इनमें कई लोकोक्तिया हैं जो प्रतिदिनके जीवन तथा बातचीतके लिये उपयुक्त हैं (जैसे—गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः, अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोट आम्नान् पृष्ट कोविदारान् व्याचष्टे क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया, महदपि परदु ख शीतल सम्यगाहु), तथा कई ऐसे श्लोक हैं जो उपदेश तथा उपयोगितासे पूर्ण हैं। इनसे चित्तपर उदात्त शील, श्रद्धा, उत्तमोंके प्रति आदर तथा विनय, विद्याका अनुराग, शक्ति, तथा प्रभुताका आदर, तथा परमेश्वरकी भक्ति, इत्यादिके संस्कार दृढ होंगे।

(आ) इसमें गद्यपद्यमय कविताओंका बड़ा सग्रह है। गद्यभाग पञ्चतन्त्र, दशकुमारचरित, कादम्बरी तथा श्रीमच्छङ्कराचार्यके ग्रन्थोंसे लिया गया है। इनमें विद्यार्थियोंको विविध रीतियोंके नमूने मिलेंगे। पद्यभाग चाणक्य, भर्तृहरि, कालिदास, भवभूति, इत्यादिके ग्रन्थों तथा रामायण, महाभारत, तथा अन्य ग्रन्थोंसे चुना गया है।

(इ) भाषाका उत्तम अभ्यास काव्योंसे ही सकता है जिनमें उत्तम विचार मनोहर रचनामें प्रकाशित किये गये हैं। ऐसे ऐसे ...पितरत्नोंके कण्ठस्थ कर लेनेसे भाषापर अधिकार तथा गाढ

अनुराग उत्पन्न होगा। पाठोंमें तथा ग्रन्थके अन्तमें दिये श्लोकोंके चुनावमें, जो लगभग २०० के हैं, इस बातपर विशेष दृष्टि दी गयी है।

(इ) विद्यार्थियोंका संस्कृतके छन्द तथा अलङ्कारोंमें प्रवेश करानेका यत्न किया गया है। गणोंके तथा मालिनी, वसन्ततिलका, हरिणी, शिखरिणी, इत्यादि प्रचलित छन्दोंके लक्षण दिये गये हैं। उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, अन्योक्ति, इत्यादि प्रसिद्ध अलङ्कारोंके लक्षण पाठोंमें तथा पुस्तकान्तकी टिप्पणियोंमें स्पष्ट किये गये हैं।

(उ) विद्यार्थियोंका ध्यान पहिले साहित्यकी ओर आकृष्ट किया गया है और व्याकरण उसका अङ्ग बनाया गया है, और ऐसा ही होना चाहिये। यह उद्देश अधोलिखित मार्गसे सिद्ध हुआ है। प्रतिपाठके आरम्भमें कुछ वाक्य दिये गये हैं जिनका हिन्दीमें अनुवाद किया गया है। इनमें नये व्याकरणके रूप मोटे टाइपमें दिये गये हैं जिसमें विद्यार्थियोंका ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हो। इसके बाद तैयार रूपावली है। सबके अन्तमें नियम हैं जो उन रूपोंसे निकाले गये हैं। इस प्रकार अनुसृत पद्धति तुलनात्मक है। यह स्कूलके लड़कोंसे लेकर संस्कृतके जिज्ञासु वृद्ध पुरुषोंतक सभोंको शिक्षाप्रद तथा मनोरञ्जक होगी। स्कूलके विद्यार्थियोंको पहिले रूपोंका पहिचानना सीखना चाहिये और इसके बाद उनका अभ्यास करना चाहिये। जिज्ञासु वृद्धोंके लिये केवल उनका पहिचानना पर्याप्त है।

(ऊ) इसमें संक्षेपसे प्रायः वे सब व्याकरणके विषय आ गये हैं जिनका जानना संस्कृत साहित्यके अभ्यासके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अप्रयुक्त रूप जान बूझकर छोड़ दिये गये हैं। अध्यापक तथा परीक्षककी भांतिसे मुझे इस बातका अनुभव हुआ है कि विद्यार्थी लोग अनियत रूपोंको केवल परीक्षाके लिये रट लेते हैं और परीक्षासे छुटकारा पाते ही उनको भूल जाते हैं। वे लोग भाषामें प्रचलित शब्दरूप तथा धातुरूपोंके साधारण नियमोंको नहीं समझते। इस त्रुटिके दूर करनेके लिये साहित्यमें साधारणतः प्रचारमें आनेवाले रूपोंपर विद्यार्थियोंका ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसी उद्देशसे सन्धिके नियमोंका, जो विविध रूपोंके बनानेमें लगते हैं, बड़ी सावधानीसे निरूपण किया गया है और वे उदाहरणोंसे स्पष्ट किये गये हैं।

(ए) जो विषय अधिक सुगम तथा प्रचलित है वह पहिले दिया गया है और पीछेसे अधिक दुर्गम तथा कम प्रचलित विषय। समास तथा भूत कृदन्तोंका प्रयोग संस्कृत साहित्यमें बहुत पाया जाता है, इसलिये उनका पहिले प्रकरणोंमें समावेश किया गया है। भविष्यत् कालोंका परोक्षभूतके पूर्व तथा सामान्य भूतकालके चतुर्थ तथा पञ्चम प्रकारोंका निरूपण अन्यप्रकारोंके पूर्व किया गया है।

(ऐ) अन्तिम पाठमें कृत् तथा तद्धित प्रत्ययोंका वर्णन है जो प्रायः भाषामें मिलते हैं।

(ओ) संस्कृत व्याकरणके पारिभाषिक शब्दोंमें यह

विशेषता है कि वे अभिप्रायगर्भित हैं। यदि यह बात विद्यार्थियों की भलीभांति समझायी जाय, तो उनका कार्य बहुत कुछ सुगम होगा। मुझे यूनीवर्सिटीके परीक्षकके सम्बन्धमें यह कहते खेद होता है कि यह बात योग्य रीतिसे विद्यार्थियों के ध्यानमें नहीं लायी जाती। यही कारण है कि विद्यार्थी लोग 'बहुव्रीहि' इत्यादि शब्दों के लिखनेमें अनेक प्रकार की गलतियां किया करते हैं—जैसे कोई 'बहुरि' लिखते हैं, जो अत्यन्त उपहासास्पद है। इस आपत्तिको दूर करने के लिये इस पुस्तकमें प्रत्येक व्याकरण के पारिभाषिक शब्दोंका व्याख्यान किया गया है जिससे विद्यार्थियों के मन पर उनका संस्कार दृढ होगा। जब विद्यार्थीको यह मालूम हो जाता है कि 'बहुव्रीहि' शब्द स्वयं बहुव्रीहि समास है और उस समासके लक्षणको बतलाता है, जब वह यह समझ लेता है कि 'तत्पुरुष' शब्दका विग्रह दो प्रकारोंसे हो सकता है और यह दोनों प्रकारके समासों के

प्रशंसापत्र।

—ooXoo—

सूचना—बांब गवर्मेंटने 'संस्कृत टीचर' और उसके गुजराती अनुवाद' संस्कृत शिक्षिका' का स्कूलों तथा ट्रेनिंग कालेजोंमें पाठ्य पुस्तककी तरह उपयोग किया जाना मंजूर किया है। मध्यप्रदेशको गवर्मेंटने संस्कृत टीचर का द्वितीय श्रेणीके स्कूलोंमें तथा अलाहाबाद युनीवर्सिटीने सन् १९१९ की व्यान्तिक परीक्षामें पाठ्यपुस्तक की तरह उपयोग किया जाना मंजूर किया है।

माननीय न्यायमूर्ति सर् एन् जी चन्दावरकर, एम् ए, एल् एल् बी महाशय लिखते हैं —

१ मैंने आपकी पुस्तक (संस्कृत टीचर) को पढ़ा और उसे अत्यन्त उपयोगी पाया। पाठोंका रचनाक्रम, टिप्पणियां, और उद्धृत गद्यपद्यसंग्रह अत्युत्तम हैं।

प्रो॰ ए ए मक्डानल, आक्सफोर्ड —

आखिर हमको आपकी पुस्तक पढ़नेका अवसर मिला। जहांतक मेरा अनुभव है भारतवर्षके विद्यार्थियोंको संस्कृतविद्यामें प्रवेश करानेके लिये इससे उत्तम पुस्तक भारतवर्षमें छपी नहीं है। नवीन विद्यार्थियोंको संस्कृतविद्या बहुत रोचक बनायी जा सकती है यदि वह योग्य रातिसे पढ़ाई जाय। परन्तु मैं समझता हूं कि आजकल भारतवर्षमें बनी हुई पुस्तकोंमें, जिनको मैंने देखा है, यह बात नहीं पायी जाती। वे विशेषतः पढ़ानेके लिये बनायी गयी हैं। उनमें मनोहर टिप्पणियोंके रूपमें बहुत कम आवश्य विषय होता है और उनमें अनावश्यक नियम तथा अप्रयुक्त रूप बहुत होते हैं। आपका व्याख्याका प्रकार, संस्कृत साहित्यसे सावधानीके साथ चुने हुए गद्यपद्य, छन्द तथा अलङ्कारों पर टिप्पणियां तथा पाणिनीय व्याकरणपद्धति ये सब विषय मेरी समझमें अत्युत्तम हैं।

मैं समझता हूं कि भारतवर्षीय युनीवर्सिटियोंकी एन्ट्रेन्स परीक्षाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपकारक होगा।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री एम्. ए., प्रिंसिपल, गवर्नमेंट् संस्कृत कालेज कलकत्ता —

अच्छा होता यदि आपकी पुस्तक इस प्रान्तमें भी चलायी जाती। [illegible] सचमुच ही आपने संस्कृत व्याकरणको एक सरस और विद्यार्थियोंके चित्तको अपनी ओर खींचनेवाली चीज बना डाला। [illegible] परन्तु आपने मधुमक्खियां पालनेवाले चतुर पुरुषके कुशल हाथसे सब मधुमक्खियोंको उड़ा दिया और शहद हमारे सबोंके लिये सुलभ कर दिया है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि आपके परिश्रमोंसे आपका प्रान्त अच्छी तरह लाभ उठायगा। [illegible] सबसे उत्तम बात तो यह है कि नियमोंके उदाहरणोंमें आपने आधुनिक संस्कृत न देकर प्राचीन काव्योंसे गद्य पद्य चुने। मेरी यह इच्छा है कि इस कार्यमें आपको पूर्ण सफलता प्राप्त हो। मैंने अपने लड़कोंसे आपकी पुस्तकका पूर्ण उपयोग लेनेके लिये कहा है।

श्रीयुत रेवरेंड् प्रो॰ ए हेग्लिन्, सस्कृत प्रोफेसर, झेवियर्स कालेज बबई —

संस्कृतकी विभक्तियां अनेक शब्दरूप, तथा धातुरूप विद्यार्थियोंकी स्मृतिशक्तिपर बडा बोझ डालते हैं। आपने बडी चतुराईसे विशेष प्रचलित रूपोंमें सीमाबद्ध कर इस कामको हलका बना डाला है। नियमोंको योग्य रचना और क्रमिक पाठोंका सनिवेश इस कामको और हलका करते हैं। आपने (उदाहरणार्थ) दिये हुए वाक्य तथा पुस्तकके अन्तमें दिये हुए गद्य पद्य उत्तम रीतिसे चुने हुए, भिन्न भिन्न विषयोंके, मनोरञ्जक, तथा काव्योंसे उद्धृत हैं।

विद्यार्थियोंको यह देखकर बडी प्रसन्नता होगी कि प्रति पाठमें दिये हुए भाषाके वाक्य कम और छोटे २ हैं। टाइप मोटा तथा स्पष्ट और पुस्तकका आकार छोटा है। पुस्तककी सम्पूर्ण रचना मनोहर है। मेरी रायमें संस्कृत टीचर स्कूलोंमें प्राथमिक व्याकरण और पाठ्य पुस्तककी तरह उपयुक्त होनेके योग्य है।

प्रो॰ वी एस् घाटे, एम् ए, सस्कृत प्रोफेसर, डेक्कन कालेज, पूना —

मैंने आपके 'संस्कृत टीचर्' के कुछ भाग पढे हैं। मैं प्रसन्नतासे इसे स्कूलोंमें चलाये जानेकी शिफारिस करता हू।

पहिले संस्कृत वाक्य लेकर उनपर व्याकरणनियमोंके बैठानेकी आपकी रीति अधिक स्वाभाविक है और मुझे निश्चय है कि यह सस्कृतकी पढाईको अधिक मनोरञ्जक बनायगी।

गद्यपद्योंका सग्रह उत्तम और मनोरञ्जक है। व्याकरणके भिन्न भिन्न विषय योग्य रीतिसे व्यवस्थित किये गये हैं, जैसे पुस्तकके पूर्व भागमें प्रथम ... [illegible] ...नामोंका वर्णन, तथा परोक्षभूतके पूर्व लोनों भविष्यत् कालोंका

ए महादेव शास्त्री, बी ए, संस्कृत पुस्तक निरीक्षक तथा मैसोर संस्कृत सीरीज़के सम्पादक —

आप विश्वास रक्खें कि आपने पढ़ानेकी रीतिमें बड़ी उन्नति कर दिखायी है। पढ़ने की इस नवीन स्वाभाविक रीतिसे संस्कृतका पढ़ाना अधिक मनोरञ्जक होगा। उदाहरणार्थ जो संस्कृत वाक्योंसे लिये गये हैं, साहित्यमें लोगोंकी रुचि उत्पन्न करेंगे।

ए अनन्ताचार्य शास्त्री, मैसोर पुरातत्त्वविभाग, बंगलोर —

मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी। आपकी रीति उत्तम है। थोड़ेही दिनोंमें संस्कृत विद्यार्थियोंके लिये यह पुस्तक अच्छी सहायक होगी। दूसरी पुस्तक उन्हीं विद्यार्थियोंको सहायता दे सकती है जिनको पहिले ही से संस्कृत भाषाकी अच्छी व्युत्पत्ति है। पहिले वाक्य [illegible] उनके शब्दोंको विभाग निर्देश करनेकी रीति विद्यार्थियोंको साहित्य पढ़नेमें सहायता देती है। आपने उदाहरणार्थ चुने हुए गद्य पद्य केवल उपदेशपर ही नहीं हैं किन्तु वे स्मरण रखने योग्य तथा भावि जीवनमें उपयोगी भी हैं।

प्रो० राजराज वर्मा, एम् ए, संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालिज, त्रिवोंड्रम् —

मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी। मैं देखता हूं कि इसकी योजना बड़ी योग्यतासे कल्पित और बड़ी कुशलतासे रची गयी है। इसमें संक्षेप और सुगमताका योग हुआ है जिसके लिये आप धन्यवादार्ह हैं। नये विद्यार्थियोंके लिये पहली पुस्तकमें प्रयोगात्मक रीतिसे तुलनात्मक रीतिका अवलम्बन करना एक नयी बात है। इस नयी रीतिका अवलम्बन उन विद्यार्थियोंमें रुचि उत्पन्न तथा स्थिर करनेमें उपयुक्त होगा जिनके हाथमें यह पुस्तक दी जायगी। इसके गद्य पद्योंके विषयमें मुझे निश्चय है कि उनकी विचित्रता और उत्तमता सर्वत्र आदृत

होगी। अथवा इसमें यदि मतभेद हो सकता है तो वह कदाचित् इसके परिमाणके विषयमें। सम्भव है कि इसे कुछ लोग नये विद्यार्थियोंके लिये अपर्याप्त समझें। इसी प्रकार संस्कृतमें अनुवादके लिये वाक्य कदाचित् बहुत कम समझे जांय तो सम्भव है। परन्तु मुझे पूर्ण निश्चय है कि नये विद्यार्थियोंके लिये बनाई गयी ऐसी पुस्तकमें कुछ सीमा भी होती है। पुस्तकके अन्तमें दिये हुए गद्य पद्य भलीभांति चुने गये हैं और सदाचार के अच्छे निदर्शक हैं। व एन्ट्रेन्स परीक्षाकी एक वर्षकी पढ़ाईके लिये पर्याप्त हैं। मैं अपने विद्यार्थियोंमें इसका प्रचार करूंगा और सामान्यतः स्कूलोंमें इसके उचित उपयोगकी शिफारिस करूंगा।

प्रो॰ वीरेश्वर शास्त्री द्रविड, संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, जयपुर —

स्कूलों तथा भारतवर्षीय युनीवर्सिटियोंके म्याट्रिक्युलेशन परीक्षाके छात्रोंकी अपेक्षायें पूर्ण करनेमें यह पुस्तक अत्यन्त उपयुक्त है। अपने परिश्रमसे संस्कृतमें प्रवेश चाहनेवालोंके लिये तो यह अमूल्य है। आपने अवलम्बन की हुई तुलनात्मक पद्धति नूतन विद्यार्थियोंको उस नीरसताको कम करेगी जिसका उनको प्रायः अनुभव हुआ करता है। चुने हुए वाक्य सुगम तथा सुव्यवस्थित हैं और प्रधान व्याकरण नियमों को अच्छी तरह स्पष्ट करते हैं। पुस्तकके अन्तमें दिये हुए विविध विषयोंके गद्य पद्य इस पुस्तकमें अपूर्व हैं। उनका बार बार पढ़ना विद्यार्थियोंको संस्कृत भाषाकी रचना और मर्म समझने में बहुत उपकार करेगा।

टी॰ गणपति शास्त्री, संस्कृतपुस्तकनिरीक्षक तथा त्रिवाड्रम् संस्कृत सीरिजके सम्पादक —

आप ऐसे लोग लोगोंके अनेक प्रकारके उपकार करनेमें समर्थ हैं। उन्हें अपने

हुए अनेक उपकारोंसे हानि सहा। वे ऐसो दिनास फिर भी लोगोंका उपकार करनेकी इच्छा करते रहते हैं। अवश्य यह नयी पुस्तक गुणज्ञोंमें अवश्य प्रवेश पावेगी।

नारायण शास्त्री, हेड्मास्टर, संस्कृत पाठशाला, त्रिवांड्रम् तथा भूतपूर्व संस्कृत प्रोफेसर, महाराजा कालेज, त्रिवांड्रम् —

मैंने सावधानतासे आपकी पुस्तक पढ़ी। मुझे इसमें कहीं कोई भी चीज दुष्ट या असुन्दर दिखनेमें न आयी। मार्गोंसे उद्धृत कर पदोंकी निष्पत्ति प्रतिपादन करनेकी आपकी शैली पाणिनिसरीखे किसी वैयाकरणके ग्रन्थकी सुध न करती? इससे बढ़कर प्रशंसाकी बात तो यह है कि इसमें प्राचीन उत्तम काव्योंसे संग्रहीत वाक्य, गद्य, तथा पद्य मधुर कोमल तथा सदुपदेशपर हैं। अधिक क्या लिखें? आपकी पुस्तक संस्कृताभिमानियोंके मनके 'अंग्रेजोंके कमनेसे संस्कृतका प्रचार संकुचित हो रहा है' इस कण्टकको दूर करनेमें रामबाण औषध है यही मेरा निश्चित मत है।

आपने प्रस्तावनामें जो लिखा है कि यह पुस्तक स्कूलके विद्यार्थियों तथा अधिक वय प्राप्त अंग्रेजीके शिक्षितोंको जो संस्कृत जाननेकी अभिलाषा रखते हैं, प्रियामद तथा मनोरञ्जक होगी इससे मैं सहमत हूँ। ऐसा आदमी न मिलेगा जो इस विषयमें विवाद करे कि यह पुस्तक स्कूलोंमें उत्तम पाठ्यपुस्तकका स्थान पाने योग्य है। सदैव यह है कि इस प्रकारका आपका उद्योग शुभ होवे लोगोंको बहुत आनन्द देता है। पाठशालाओंमें पाठ्यपुस्तकोंका विचार करनेके अवसरपर कौन 'संस्कृत टीचर' को भूलेगा? सज्जन मनसे अपना हर्ष प्रकट करते हैं।

शास्त्री केदारनाथ दुर्गाप्रसाद, महामहोपाध्याय काव्यमालाके सम्पादक, जयपुर —

आपका 'संस्कृत टीचर्' नामका संस्कृतशिक्षक एकबारगी व्याकरण कोश तथा साहित्यमें उत्तम व्युत्पत्ति करानेमें समर्थ है।

इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत साहित्यमें प्रवेश करनेकी इच्छा रखनेवालोंको यह अत्यन्त

उपयोगी तथा नवीन श्रेणीकी पुस्तक बहुत लाभकारी होगी। संस्कृतानुरागी सहृदयोंसे मेरी सानुरोध यह प्रार्थना है कि केवल संस्कृत जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये वे लोग इसी शैलीपर प्रत्येक संस्कृत अथवा हिन्दीमें ग्रन्थ शीघ्र बनावें। पढ़ानेमें किस परिपाटीका स्वीकार करना चाहिये यह बात 'संस्कृत टीचर्' अच्छी तरह सिखाता है। संस्कृतमें हम इसे टीचर् नहीं, गीतर कहते हैं। क्योंकि पाणिनि कात्यायन तथा पतञ्जलि यह त्रिमुनि केवल श्लोकार्थमें व्युत्पत्ति करा सकता है और यह एक ही में कोश, व्याकरण, तथा काव्य सिखाता है। इसी प्रकार यह मोक्षमूलर—काले—आपटे—इनके पुस्तकोंसे भी निराला है। इस कारणसे भी यह गीतर है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि यह संस्कृतसाहित्यमें प्रवेश तथा व्युत्पत्ति चाहनेवालोंका उपकार करेगा। यह संस्कृत गीतर बहुत योग्य समयपर उदित हुआ। प्रतिदिन बढ़नेवाली इसकी कलायें संस्कृत व्युत्पत्ति चाहनेवालोंको अपनी शिक्षारूपी चन्द्रिका दें।



गर्जति शरदि न वर्षति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥

* * * *

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते
धुर्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद ।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नम्रस्य तन्मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय ॥

* * * *

शरणं करवाणि कामदं ते चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥

संस्कृतशिक्षिका।

पाठ १।

वर्ण।

संस्कृतमें अधोलिखित वर्ण होते हैं —

(अ) अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ।

(ब) क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स्, तथा ह्।

(अ) से चिह्नित वर्णोंको स्वर कहते हैं, क्योंकि और किसी वर्णकी सहायताके बिना ये उच्चारण किये जा सकते हैं।

(ब) से चिह्नित वर्णोंको व्यञ्जन कहते हैं, क्योंकि ये अपने उच्चारणमें स्वरोंकी अपेक्षा रखते हैं, क्, ख्, इत्यादि वर्णोंका बिना किसी स्वरके मिलाये उच्चारण नहीं हो सकता, व्यञ्जन शब्द वि+अञ्ज्+अन को जोड़नेसे बना है और उसका अर्थ मिलना है। उदाहरण—क=क्+अ, का=क्+आ, को=क्+ओ।

आ, ई, ऊ, और ॠ ये अ, इ, उ, तथा ऋ इनके दीर्घरूप हैं, ऌको दीर्घ नहीं होता।

स्वरोंके ऊपर जो बिन्दु दिया जाता है उसे अनुस्वार तथा उनके आगे जो दो बिन्दु दिये जाते हैं उनको विसर्ग कहते हैं। जैसे— ं, ः, कं, कः।

दो या अधिक व्यञ्जन जहाँ मिले रहते हैं उनको संयुक्ताक्षर कहते हैं। जैसे क्त=क्+त्, र्क=र्+क्, द्ध=द्+ध्, स्म=स्+म्,

श = ◌ + य, द्य = द् + य, ज्ञ = ज् + ञ, द्य = द् + य, द्ध = द् + ध,
द्व = द् + व, ह्ल = ह् + ल्।

स्मरण रखना चाहिये कि क्ष = क् + ष् के मिलानेसे तथा ज्ञ = ज् + ञ
से बना हुआ है।

पाठ २।

वर्तमान काल।

सृजति (वह) उत्पन्न करता है।	नश्यति (वह) नष्ट होता है।
लिखति (वह) लिखता है।	नृत्यति (वह) नाचता है।
विशति (वह) प्रवेश करता है।	कुप्यति (वह) कोप करता है।
स्पृशति (वह) छूता है।	लुभ्यति (वह) लोभ करता है।
मिशति (वह) मिलाता है।	क्रुध्यति (वह) क्रोध करता है।

१। ऊपर लिखे हुए शब्दोंको देखनेसे यह मालूम होगा कि वर्तमा[न] कालिक क्रियाके प्रथम पुरुषके एकवचनका प्रत्यय ति है।

सृजति	(सृज् अ ति)	नश्यति	(नश् य ति)
लिखति	(लिख् अ ति)	नृत्यति	(नृत् य ...
विशति	(विश् अ ति)		
स्पृशति	(स्पृश् अ ति)		
मिशति	(मिश् अ ति		

अनुसार धातु कई वर्गोंमें विभक्त हैं। संस्कृतमें ऐसे वर्ग दस हैं जिनको गण कहते हैं।

२। अ तुदादिगणका, और य दिवादिगणका चिह्न है।

शब्द संग्रह।

तुदादिगण।	दिवादिगण।
दिश्—दिखाना	कुप्—कोप करना
लिख्—लिखना	क्रुध्—क्रोध करना
सृज्—सिरजना	नश्—नष्ट होना
स्पृश्—छूना	नृत्—नाचना
विश्—प्रवेश करना	क्षुभ्—क्षोभ करना

पाठ ३।

वर्त्तमान काल।

वसत (ये दो) रहते हैं।	पूजयत (ये दो) पूजा करते हैं।
वदत (ये दो) बोलते हैं।	कथयत (ये दो) कहते हैं।
चरत (ये दो) चलते हैं।	गणयत (ये दो) गिनते हैं।
पठन्ति (ये) पढ़ते हैं।	रचयन्ति (ये) रचते हैं।
दहन्ति (ये) जलाते हैं।	स्पृहयन्ति (ये) चाहते हैं।
पतन्ति (ये) गिरते हैं।	पीडयन्ति (ये) कष्ट देते हैं।
नमन्ति (ये) प्रणाम करते हैं।	सूचयन्ति (ये) सूचना करते हैं।

१। ऊपरके शब्दोंसे यह मालूम होगा कि वर्त्तमान कालिक क्रियाके प्रथम पुरुषके द्विवचनका त: यह चिह्न है, तथा अन्ति यह प्रथम पुरुषके बहुवचनका चिह्न है।

वसत (वस् अ त)	पूजयत (पूज् अय त)
वदत (वद् अ त)	कथयत (कथ् अय त)
चरत (चर् अ त)	गणयत (गण् अय त)
पठन्ति (पठ् अ अन्ति)	रचयन्ति (रच् अय अन्ति)
स्मरन्ति (स्मृ अ अन्ति)	स्पृहयन्ति (स्पृह् अय अन्ति)
पतन्ति (पत् अ अन्ति)	पीडयन्ति (पीड् अय अन्ति)
नमन्ति (नम् अ अन्ति)	भूषयन्ति (भूष् अय अन्ति)

जिस प्रकार द्वितीय पाठमें दिये हुए वसति इत्यादि धातुओंमें अ लगता है उसी प्रकार वसत इत्यादि रूपोंमें भी अ लगता है ।

२। अ भ्वादिगणके धातुओंका चिह्न है। वस् इत्यादि धातु पूज् इत्यादि धातुओंसे पृथक् विभक्त क्यों है यह बात आगे चलकर मालूम होगी।

पूजयत इत्यादि रूपोंमें धातुओंसे अय लगाया गया है।

३। अय चुरादिगणका चिह्न है।

पठन्ति रचयन्ति इत्यादिमें अन्तिके पहिले रहनेवाला अ निकाला गया है।

४। अन्ति के पहिले रहनेवाला अ निकल जाता है

जयति (वह) जीतता है।	नाटयति—(वह) भाव करता है।
नयति (वह) ले जाता है।	क्षालयति (वह) धोता है।
भवति (वह) होता है।	चोरयति (वह) चुराता है।
स्मरति (वह) स्मरण करता है।	धारयति (वह) उठाता है।
तरति (वह) तैरता है।	
बोधति (वह) जानता है।	

ऊपर दिये हुए धातुरूप भ्वादि और चुरादिगणके हैं। जयति = जि + अ + ति (जि + अ = जे + अ = जय् + अ) जि का, नयति = नी + अ + ति (नी + अ = ने + अ = नय् + अ) नी का, भवति = भव् + अ + ति (भू + अ = भो + अ = भव् + अ) भू का, स्मरति = (स्मृ + अ = स्मर + अ)

ऋ का, तरति=तर्+अ+ति (तॄ+अ=तर्+अ) तॄ का, बोधति=बोध्+अ+ति (बुध्+अ=बोध्+अ) बुध् का रूप है।

५। ऊपरके रूपोंसे यह मालूम होता कि अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य (अन्त्यसे समीपका) ह्रस्व स्वरोंमें लगचिह्न अ के पहिले कुछ परिवर्तन होता है। (इ, वा ई का ए, उ, वा ऊ का ओ, ऋ वा ॠ का अर्, तथा लृ का अल् हो जाता है)।

६। ए, ओ, अर्, तथा अल् इ वा ई उ वा ऊ, ऋ, वा ॠ, और लृ के यथाक्रम आदेश हैं और इनको गुण आदेश कहते हैं।

जे+अ=जय्+अ, ने+अ=नय्+अ, भो+अ=भव्+अ—

७। संस्कृतमें जब एक साथ दो स्वर आते हैं तो वे विशेष परिवर्तनसे मिल जाते हैं। इसको सन्धि कहते हैं।

८। जब ए तथा ओ के बाद कोई स्वर आता है तो वे यथाक्रम अय् तथा अव् में बदल जाते हैं।

नाटयति, चालयति चोरयति, धारयति इत्यादि चुरादिगणके धातु रूप हैं।

नट+अय+ति=नाटयति, चल—चालयति; कथ्—कथयति, चुर्—चोरयति, पीड्—पीडयति स्पृह्—स्पृहयति, धृ—धारयति—

९। उपान्त्य (अन्त्यके समीपका) अ प्राय इसकी वृद्धि आमें बदल जाता है, परन्तु कथ, गण्, वर् इत्यादिमें नहीं बदलता।

१०। स्पृह् इत्यादि छोड़ कर अ से भिन्न दूसरे उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण होता है।

११। अन्त्य स्वरको वृद्धि होती है। अ की वृद्धि आ, इ तथा ई की वृद्धि ऐ, उ तथा ऊ की वृद्धि औ ऋ तथा ॠ की वृद्धि आर, और लृ की वृद्धि आल् है।

इच्छति, विशति, और स्पृशति तुदादि गणके रूप हैं। इनको बोधति के साथ मिलाओ।

१२ । जिस प्रकार भ्वादिगणके धातुओंमें अ के पहिले गुण होता है उस प्रकार तुदादिगणके धातुओंमें नहीं होता ।

शब्दसंग्रह ।

भ्वादिगण ।	चुरादिगण ।
चर्—चलना	कथ्—कहना
जि—जीतना	क्षल—धोना
तॄ—पार करना	गण—गिनना
दह—जलाना	चुर—चुराना
नी—ले जाना	धृ—पकड़ना या उठाना
पठ—पढ़ना	नट—नाचना
पत्—गिरना	पीड्—कष्ट देना
बुध्—जानना	पूज—पूजा करना
भू—होना	रच्—रचना
वद्—बोलना	सूच—सूचन करना या सुझाना
वस्—रहना	
स्मृ—स्मरण करना	

पाठ ४ ।

वर्तमान काल ।

कुप्यसि—(तू) कोप करता है ।
नश्यसि (तू) नष्ट होता है ।
हरथ (तुम दो) ले जाते हो ।
नयथ (तुम दो) ले जाते हो ।
शुष्यथ (तुम लोग) सूखते हो ।
क्षुभ्यथ (तुम लोग) क्षोभ करते हो ।
नशामि (मैं) नाश करता हूं ।
शिक्षामि (मैं) सिखता हूं ।
स्पृशाव (हम दो) छूते हैं ।
त्यजाव (हम दो) छोड़ते हैं ।
वदाम (हम लोग) बोलते हैं ।
स्पृहयाम (हम लोग) चाहते हैं ।

ऊपरके उदाहरणोंसे ये नियम निकलते हैं —

१। सि, थ, और थ यथाक्रम वर्तमानकालिक क्रियाके मध्यम पुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके प्रत्यय हैं, और मि, व, म वर्तमानकालिक क्रियाके उत्तम पुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचनके यथाक्रम प्रत्यय हैं।

२। स्पृहयामि, स्मराव, वदाम —मि, व, म के पूर्व अ को दीर्घ हो जाता है।

शाम्यामि—मैं शान्त होता हूं।	क्लाम्यति—वह मुरझाता है।
श्राम्याम—हम लोग थकते हैं।	भ्राम्यन्ति—वे घूमते हैं।
क्षाम्याव—हम दो क्षमा करते हैं।	भ्रम्यति—वह घूमता है।
माद्यामि—मैं मत्त होता हूं।	भ्रम्यसि—तू घूमता है।

इन उदाहरणोंसे ये नियम सिद्ध होते हैं —

३। शम, श्रम, तम, मद, और क्लम इन धातुओंके अ को दीर्घ होता है।

४। भ्रम भ्वादि तथा दिवादि दोनों गणोंमें पढ़ा हुआ है। और दिवादिमें अ को विकल्पसे दीर्घ होता है। इस प्रकार इसके तीन रूप होते हैं —भ्रमति, भ्रम्यति, भ्राम्यति।

गच्छसि—तू जाता है।	पृच्छाम—हम लोग पूछते हैं।
इच्छामि—मैं चाहता हूं।	पश्यथ—तुम लोग देखते हो।
तिष्ठन्ति—वे खड़े रहते हैं।	पिबत—वे दो पीते हैं।

५। गणचिह्न (विकरण) के पहिले कुछ धातुओंके स्थानमें दूसरे आदेश हुआ करते हैं। जैसे—गम् के स्थानमें गच्छ, इष के स्थानमें इच्छ, स्था के स्थानमें तिष्ठ, प्रच्छ के स्थानमें पृच्छ, दृश के स्थानमें पश्य, और पा के स्थानमें पिब आदेश होता है।

गच्छाम —हम लोग जाते हैं । नयथ —तुम लोग ले जाते हो ।
आगच्छामः—हम लोग आते हैं । आनयथ —तुम लोग ले आते हो ।
वसामि—मैं रहता हूं । हराम — हम लोग हर लेते हैं ।
निवसामि—मैं रहता हूं । अपहराम —हम लोग हरते हैं ।

६। धातुओंके पहिले लगे हुए आ, नि, अप इत्यादि उपसर्ग कहाते हैं । ये बहुधा धातुओंके अर्थोंको बदल देते हैं ।

स्नाथ —तुम लोग नहाते हो । यान्ति—वे जाते हैं ।

स्नाथ —स्ना धातुका रूप है, और यान्ति या धातुका । ये अदादिगणके धातु हैं ।

७। अदादिगणके धातुओंमें कोई गणचिह्न नहीं होता । धातुओंमें सीधे ही प्रत्यय लगाये जाते हैं ।

शब्दसंग्रह ।

भ्वादि ।	दिवादि ।
गम् (गच्छ्) जाना	क्लम् (क्लाम्)—थकना
आगम्—(गच्छ्) आना	क्षम् (क्षाम्)—क्षमा करना
क्षि—नाश करना	क्षुभ्—क्षोभ करना
अव तॄ—उतरना (अव—नीचे)	भ्रम् (भ्राम् या भ्रम)—घूमना
त्यज्—छोड़ना	मद् (माद्)—मस्त होना
दृश् (पश्य)—देखना	श्रम् (श्राम्)—थका होना
धाव्—धोना	क्षुध्—भूखना
पा (पिब्)—पीना	श्रम (श्राम)—थकना
भ्रम्—घूमना	तुदादि ।
नि वस्—रहना	इष् (इच्छ्)—चाहना
स्था (तिष्ठ्)—खड़ा रहना	प्रच्छ् (पृच्छ्)—पूछना
हृ—हरण करना ।	अदादि ।
	या—जाना
	स्ना—नहाना

पाठ ५।

उपसर्ग।

अपनयति—वह हटाता है (अप=दूर)।	प्रतिवदाम—हम लोग उत्तर देते हैं (प्रति=बदलेमें)।
अनुसरति—वह पीछे चलता या अनुकरण करता है (अनु=पीछे)।	उपगच्छतः—वे दो समीप आते हैं (उप=समीप)।
उत्पतामि—मैं कूदता हूं (उत्=ऊपर)।	अवगच्छाव—हम दो जानते हैं। (यहांपर अव का अर्थ 'नीचे' नहीं है।)
विनश्यथ—तुम दो नष्ट होते हो (वि=पूर्ण रूपसे)।	प्रचरसि—तुम चलते हो (प्र=आगे)।

गम्—भ्वादि।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यम ,,	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तम ,,	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

पुष्—दिवादि।

प्र पु	पुष्यति	पुष्यतः	पुष्यन्ति
म पु	पुष्यसि	पुष्यथः	पुष्यथ
उ पु	पुष्यामि	पुष्यावः	पुष्यामः

इष्—तुदादि।

प्र पु	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
म पु	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उ पु	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

चर्—चुराना।

प्र पु	चोरयति	चोरयत	चोरयन्ति
म पु	चोरयसि	चोरयथ	चोरयथ
उ पु	चोरयामि	चोरयाव	चोरयाम

स्ना—नहाना।

प्र पु	स्नाति	स्नात	स्नान्ति
म पु	स्नासि	स्नाथ	स्नाथ
उ पु	स्नामि	स्नाव	स्नाम

उद्+पतामि=उत्पतामि, यहां द् का त् हुआ है।

यह जानना आवश्यक है कि अपने२ स्थानोंके अनुसार स्वर और व्यञ्जन किन वर्गों में विभक्त हैं।

अ, आ, कु, (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) ह्, और विसर्ग—कण्ठस्थानीय।
इ, ई, चु (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्), य्, और श्—तालुस्थानीय।
ऋ ॠ, (ट् ठ्, ड, ढ्, ण्) र् और ष्—मूर्द्धस्थानीय।
लृ, तु, (त्, थ्, द्, ध् न) ल्, और स्—दन्तस्थानीय।
उ, ऊ पु, (प्, फ, ब्, भ्, म्)—ओष्ठस्थानीय।

ए और ऐ—कण्ठतालुस्थानीय।

ए=अवर्ण (अ वा आ)+इवर्ण (इ वा ई), ऐ=अवर्ण (अ वा आ)+ए।

ओ तथा औ—कण्ठोष्ठस्थानीय।

ओ=अवर्ण (अ वा आ)+उवर्ण (उ वा ऊ), औ=अवर्ण (अ वा आ)+ओ।

व्—दन्तोष्ठस्थानीय।

ङ्, ञ्, ण्, न्, और म्—इनको ऊपर लिखे हुए स्थानोंके सिवा नासिका स्थान भी है और ये अनुनासिक कहाते हैं।

य्, व्, और ल् अननुनासिक भी हैं और अनुनासिक भी। क् से म् तकके पांचो वर्गोके (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग) वर्ण स्पर्श कहाते है, क्यों कि इन वर्णों के उच्चारण करनेमें जिह्वाका अग्र, उपाग्र, मध्य, और मूल इनके उच्चारण स्थानोंको (कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त, और ओष्ठोंको) स्पर्श करता है।

पांचो वर्गोंके प्रथम, तृतीय, तथा पञ्चम वर्ण और य्, र्, ल, व्, अल्प प्राण कहाते हैं। क्योंकि इनके उच्चारणमें कम श्वासकी अपेक्षा है और इनका उच्चारण सुगमता से हो सकता है। इनके सिवा अन्य वर्ण महाप्राण कहाते है, क्योंकि इनके उच्चारणमें अधिक श्वासकी अपेक्षा है और इनका उच्चारण कठिनतासे होता है।

वर्गोंके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा, श्, ष्, स्, अघोष (कठोर व्यञ्जन), और,य् र्, ल्, व्, तथा ह् घोष (कोमल व्यञ्जन) कहाते है।

य्, र्, ल, और व् अन्तःस्थ वा अन्त स्थ (अर्द्धस्वर), और श, ष्, स्, तथा ह् ऊष्मन् कहाते हैं।

उद्+पतति=उत्पतति, उद्+सरति=उत्सरति, तम्+पात = उत्पात, उद्+साह = उत्साह, उम्+तेजनम्=उत्तेजनम्।

नियम—अनुनासिक वा अन्त स्थ को छोड कर और कोई व्यञ्जन, जब उनके बाद कोई अघोष वर्ण हो, अपने वर्गके प्रथम वर्णमें बदल जाता है।

शब्दसङ्ग्रह।

अनु इ (२य्रादि) पीछे जाना, अनुकरण करना।
अप नी (१आदि) ले जाना।
अव गम् (१आदि) जानना।
उद् पत् (१आदि) कूदना।
उप गम् (१आदि) पास जाना।
प्र चर् (१आदि) आगे चलना।

प्रति वच् (ब्रवीति) विरुद्ध बोलना , उत्तर देना ।
वि नश् (विनश्यति) पूर्णरूपसे नष्ट होना ।

पाठ ६ ।

अकारान्त शब्द ।

बालः क्रीडति—लड़का खेलता है ।
अश्वः चरति=अश्वश्चरति—घोड़ा चलता है ।
जनः तरति=जनस्तरति—आदमी तैरता है ।
चोरौ चोरयतः—दो चोर चुराते हैं ।
वृक्षौ पततः—दो पेड़ गिरते हैं ।
बुधाः पठन्ति—पण्डित लोग पढ़ते हैं ।
देवाः जयन्ति=देवा जयन्ति—देव लोग जीतते हैं ।
पर्णम् शुष्यति=पर्णं शुष्यति—पत्ता सूखता है ।
नयने पश्यतः—दो आँखें देखती हैं ।
पापानि नश्यन्ति—पाप नष्ट होते हैं ।
दुःखानि गलन्ति—दुःख गलते हैं ।
धर्मम् उपदिशामि=धर्ममुपदिशामि—मैं धर्मका उपदेश करता हूँ ।
असत्यम् वदथ=असत्यं वदथ—तुम लोग झूठ बोलते हो ।
बालं ताडयति—वह एक लड़केको मारता है ।
वेदान् पठामः—हम लोग वेदोंको पढ़ते हैं ।
पुस्तकानि लिखन्ति—वे लोग पुस्तकोंको लिखते हैं ।
वत्स, सुष्ठु भणसि—लड़के, तू अच्छा कहता है ।

सात विभक्तियाँ हैं ।

प्रथमा—यह प्रातिपदिकार्थमें लगती है ।
द्वितीया—यह क्रियाके कर्मको दिखाती है ।
तृतीया—यह किसी क्रियाके कर्ता या करणको दिखाती है ।

चतुर्थी—यह उसको दिखाती है जिसको कोई वस्तु दी जाय (सम्प्रदान), किंवा जिसके लिये कोई काम किया जाय (तादर्थ्य)।

पञ्चमी—अपादान वा हेतुको दिखाती है।

षष्ठी—सम्बन्धका बोध कराती है।

सप्तमी—यह किसी क्रियाके अधिकरणको बताती है।

सम्बोधन कोई आठवाँ कारक नहीं है वह केवल प्रथमाका बोध कराती है और किसीको पुकारनेमें इसका प्रयोग किया जाता है जैसे—हे राम, मुञ्च मणिं।

योधः शरान् क्षिपति, शरान् क्षिपति योधः, वा क्षिपति शरान् योधः = वीर बाणोंको फेंकता है।

संस्कृतमें वाक्यके शब्दोंके क्रमके लिये कोई नियम नहीं है।

इस पाठमें अकारान्त शब्दोंके प्रथमा, द्वितीया, और सम्बोधनके रूप दिये गये हैं।

राम—पुंलिङ्ग।

	एक व।	द्वि व।	बहु व।
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

फल—नपुंसक लिङ्ग।

प्र	फलम्	फले	फलानि
द्वि	,,	,,	,,
स	हे फल	,,	,,

अश्वः + सरति = अश्वस्सरति, जनः + तरति = जनस्तरति।

नियम—

१। विसर्गके बाद जब च् वा छ् आवे तो वह श् में बदल जाता है, और जब उसके बाद त तथा थ आवे तो वह स में बदल जाता है

२। यदि विसर्गके पहिले अ हो और उसके बाद कोई स्वर या कोमल व्यञ्जन हो तो उसका लोप हो जाता है।

३। विसर्गका लोप होने पर पास पास रहनेवाले स्वरोंमें सन्धि कार्य नहीं होता।

(अ) पुष्पम् + हरति = पुष्पं हरति—

(ब) वनम् + गच्छति = वनं गच्छति या वनङ्गच्छति—

(क) पुस्तकम् लिखति = पुस्तकं लिखति या पुस्तकँल्लिखति —

नियम—

४। विभक्तियोंके सहित शब्दोंको पद कहते हैं जैसे—रामः, फले, गच्छत।

५। (अ) पुष्पं हरति—जब किसी पदके अन्तमें म हो और उसके बाद श, ष, स, ह, या र हो तो वह अनुस्वारमें बदल जाता है।

(ब) वनं गच्छति, या वनङ्गच्छति—जब म के बाद कोई अन्य व्यञ्जन हो तो वह अनुस्वारमें अथवा जिस वर्गका वह व्यञ्जन हो उसके अनुनासिकमें बदल जाता है।

(क) पुस्तकं लिखति—या—पुस्तकँल्लिखति—जब म के बाद य, व, या ल हो तो वह अनुस्वारमें अथवा अनुनासिक य, व, या ल में बदल जाता है।

दुग्धं भक्षति।
नरमश्नाति वीरः।
अनृतं वदसि।
तिष्ठन्ति पर्वताः।
स्नानागारं यान्ति।
ताडयन्ति चोरान्।
पर्णानि पतन्ति।

शब्दसंग्रह ।

अकारान्त पुंलिङ्ग शब्द ।

अश्व—घोड़ा	योध—सिपाही
चोर—चोर	वत्स—प्रिय बालक
जन—मनुष्य	वीर—वीर
देव—देवता	वृक्ष—पेड़
धर्म—धर्म	वैद्य—वैद्य
पर्वत—पहाड़	शर—तीर
बाल—लड़का	स्तेन—चोर
बुध—पण्डित	

नपुंसक ।

अनृतम्—झूठ	पत्रम्—पत्ती
असत्यम्—झूठ	पापम्—पाप
दुःखम्—दुःख	पुस्तकम्—पुस्तक
नयनम्—नेत्र	वनम्—जंगल

धातु ।

अस (अस्यति) दिवादि—फेंकना ।
उपदिश (उपदिशति) तुदादि—उपदेश करना ।
क्रीड (क्रीडति) भ्वादि—खेलना ।
गल (गलति) भ्वादि—गलना ।
तड (ताडयति) चुरादि—पीटना, मारना ।
भण (भणति) भ्वादि—बोलना ।

पाठ ७।

अकारान्त शब्द।

रथेन आगच्छति=रथेनागच्छति—वह रथसे आता है।

पादाभ्यां चलति—वह दो पैरोंसे चलता है।

अक्षराणि गणयति बालः—लड़का अक्षरोंको गिनता है।

बालैः सह क्रीडामि—मैं लड़कोंके साथ खेलता हूं।

रामाय नमः—रामको नमस्कार।

क्रोधाद् भवति संमोहः—क्रोधसे अज्ञान होता है। (क्रोधात्+भवति भी क्रोधाद् भवति के बराबर है)।

चक्रं रथस्य अङ्गम्=चक्रं रथस्याङ्गम्—चक्र रथका एक भाग है।

व्याघ्रेभ्यः भयम्=व्याघ्रेभ्यो भयम्—व्याघ्रोंसे भय।

चन्द्रो नक्षत्राणां भूषणम्—चन्द्रमा ताराओंका भूषण है।

आकाशे शुकः उत्पतति=आकाशे शुक उत्पतति—आकाशमें शुक उड़ता है।

पुरुषेषु उत्तमः—पुरुषेषूत्तमः पुरुषोत्तमः—पुरुषोत्तम वा विष्णु पुरुषोंमें उत्तम है।

हस्तयोः पतति—हाथों पर पड़ता है।

इस पाठमें अकारान्त शब्दोंको प्रथमासे सप्तमीतक सब विभक्तियां दी गयी हैं।

राम—पुं।

	एक व।	द्वि व।	बहु व।
प्र०	रामः	रामौ	रामाः
द्वि०	रामम्	,,	रामान्
तृ०	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
च०	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पं०	रामात् द्		,,

ष	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
स	रामे	,,	रामेषु।
सं०	राम	रामौ	रामाः

प्रथम–शब्द।

प्र०	प्रथमः	प्रथमौ	प्रथमाः
द्वि०	,,	,,	,,
तृ	प्रथमेन	प्रथमाभ्याम्	प्रथमैः
च	प्रथमाय		प्रथमेभ्यः
पं	प्रथमात् द्		,,
ष	प्रथमस्य	प्रथमयोः	प्रथमानाम्
स	प्रथमे		प्रथमेषु
सं०	प्रथम	प्रथमौ	प्रथमाः

रामेण रामाणाम् और प्रथमेन, प्रथमानाम् इन शब्दों पर ध्यान दो। [illegible] वर्णोंसे न का ण हो जाता है।

न का ण् होनेके नियम

१। [illegible]

[illegible]

५। आयात् + भवति = आयाद्भवति—पदके अन्तमें आनेवाला अनुनासिक भिन्न किसी वर्गका कोई व्यञ्जन उसके तृतीय वर्ण में बदल जाता है, यदि उसके बाद कोई स्वर या घोष वर्ण हो।

अत्र + अपि = अत्रापि, देव + आलयम् = देवालयम, रथेन + आगच्छति = रथेनागच्छति, कवि + ईश्वर = कवीश्वर, रघु + उत्तम = रघूत्तमः; पुरुषेषु + उत्तम = पुरुषेषूत्तम —अधोलिखित नियमके अनुसार होंगे —

६। जब अ इ उ, ऋ (ह्रस्व या दीर्घ), तथा ऌ के बाद वही ह्रस्व वा दीर्घ स्वर आता है तो उन दोनों स्वरोंके स्थानमें दीर्घ होता है।

इस प्रकार अवर्ण + अवर्ण = आ, इवर्ण + इवर्ण = ई, उवर्ण + उवर्ण = ऊ, ऋवर्ण + ऋवर्ण = ॠ, ऌ + ऌ = ॠ। (क्योंकि ऌ का दीर्घ नहीं होता, और ऋ तथा ऌ सवर्ण माने जाते हैं।)

व्याघ्रेभ्य + भयम—यहाँ पर विसर्गको उ हुआ, और उसका पहिला अ तथा उ मिलकर अधोलिखित नियमके अनुसार ओ हो गया :—

७। मन + रथ = मनोरथ, मन + भाव = मनोभाव, मन + वृत्ति = मनोवृत्ति, मन + हर = मनोहर, ग्राम + प्राप्ति = ग्रामोप्राप्ति (अन्तमें ग्रामोऽक्षि पाठ ८, नियम ३)—जब विसर्गके पहिले अ हो और उसके बाद अ या कोई घोष वर्ण हो तो उस विसर्गका उ हो जाता है।

यह उ तथा उसके पहिला अ मिलकर अधोलिखित नियमसे ओ हो जाता है।

८। परम + ईश्वर = परमेश्वर, चन्द्र + उदय = चन्द्रोदय, गङ्गा + उदकम = गङ्गोदकम—

जब अ या आ के बाद इ, उ, ऋ (ह्रस्व किंवा दीर्घ), वा ऌ आता है तो उन दोनोंके स्थानमें इ, उ, ऋ, तथा ऌ के गुण अर्थात् ए, ओ, अर्, तथा अल् आदेश होते हैं।

इस प्रकार अवर्ण + इवर्ण = ए, अवर्ण + उवर्ण = ओ, अवर्ण +

ऋवर्ण=अर, और अवर्ण+ऌ=अल्। व्याघ्रेभ्य + भयम्=व्याघ्रेभ्य + उ + भयम्=व्याघ्रेभ्यो भयम्।

नियम— शुक + उत्पतति=शुक उत्पतति।

९। विसर्गके पहिले अ हो, और उसके बाद अ के सिवा कोई स्वर हो, तो उसका लोप होता है।

नमो देवेभ्य।	पुत्र गृह धावति।
शरीर क्षयति।	अश्वादवतरति योधः।
नरा दुर्गाणि तरन्ति।	वनेषु व्याघ्रा भ्रमन्ति।
भद्राणि पश्यन्ति जना।	वृक्षादुत्पतति शुक।
गृहाणि प्रविशन्ति।	बालस्य चित्त लुभ्यति।

अकारान्त पुलिङ्ग शब्द।

आकाश—आकाश	पुरुषोत्तम—विष्णु
क्रोध—कोप	रथ—रथ
चन्द्र—चन्द्रमा	राम—राम
दुर्ग—कठिनाई	व्याघ्र—बाघ
नर—मनुष्य	शुक—तोता
पाद—पैर	प्रमोद—आराम
पुत्र—लड़का	हस्त—हाथ
पुरुष—१ पुरुष, २ आत्मा	

अकारान्त नपुंसक शब्द।

अङ्गम्—शरीरका अवयव।

अरण्यम्—वन	नक्षत्रम्—तारा।
आकाशम्—आकाश	मद्यम्—मद्य
गृहम्—घर	भयम्—डर
चक्रम्—चक्र	भूषणम्—गहना
दुर्गम्	शरीरम्—शरीर

विशेषण

उत्तम—उत्तम अच्छा।

अव्यय।

सह—साथ (यह या इसी अर्थके दूसरे शब्द जैसे साकम् सार्धम्, तृतीयाके साथ आता है)

नमः—नमस्कार (यह चतुर्थीके साथ प्रयोग किया जाता है।

धातु।

चल (चलति) भ्वादि—चलना।
प्रविश (प्रविशति) तुदादि—घुसना।
प्रहृ (प्रहरति) भ्वादि—मारना या प्रहार करना।
सृ [धाव] (धावति) भ्वादि—दौड़ना।

पाठ ८।

इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द।

रविः उदयं याति=रविरुदयं याति सूर्य उदय को जाता है—सूर्य उदित होता है।

रामः कपिभिः रावणं जयति=रामः कपिभी रावणं जयति—राम बन्दरोंसे रावणको जीतता है।

कवयः भूपतीनाम् चरितं वर्णयन्ति=कवयो भूपतीनां चरितं वर्णयन्ति—कवि लोग राजाओंके चरित्रका वर्णन करते हैं।

गुरवे नमः—गुरुको नमस्कार।

वीरः अरीन् जयति=वीरोऽरीञ्जयति—वीर शत्रुओंको जीतता है।

हरये स्वस्ति—हरिको जयजयकार।

अग्नये स्वाहा—अग्निको स्वाहा (आहुति)।

शिशवः वृक्षमारोहन्ति—बच्चे पेड़पर चढ़ते हैं।

मनो अपत्यानि मानवा =मनोरपत्यानि मानवा —मनुके लड़के मानव (कहाते हैं)।

बहव सन्ति, बहून् अणून् इत्यादि—

विशेष्य तथा विशेषणका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति एक होती है।

शिशौ अपि प्रहरति मूर्ख =शिशावपि प्रहरति मूर्ख —मूर्ख लड़के पर भी प्रहार करता है।

विपदि धैर्य रक्षन्ति धीरा —धीर लोग विपत्में भी धैर्यकी रक्षा करते हैं।

भानु निभ मणि —भानुनिभ मणि —सूर्य जिसका रत्न है।

सुहृदाम् वचन नातिकामन्ति = सुहृदा वचन नातिकामन्ति—वे लोग मित्रोंकी बातको उल्लङ्घन नहीं करते।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त शब्द दिये गये हैं।

हरि—पुंलिङ्ग।

	ए व।	द्वि व	ब व।
प्र.	हरि	हरी	हरय
द्वि	हरिम	,	हरीन
तृ	हरिणा	हरिभ्याम	हरिभि
च	हरये	हरिभ्याम	हरिभ्य
प	हरे	,,	,
ष	,,	हर्यो	हरीणाम
स	हरौ	,,	हरिषु
स	हरे	हरी	हरय

भानु—पुंलिङ्ग।

प्र	भानु	भानू	भानव
द्वि	भानुम्	,,	भानून
तृ॰	भानुना	भानुभ्याम	भानुभि

च	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पं	भानोः	,,	,,
ष	,,	भान्वोः	भानूनाम्
स	भानौ	,,	भानुषु
सं	भानो	भानू	भानवः

हरि और भानु शब्दके रूपोंके मिलानेपर यह मालूम होता कि इन दोनोंमें एकसा परिवर्तन हुआ है।

विपद्—स्त्रीलिङ्ग।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	विपद्	विपदौ	विपदः
द्वि	विपदम्	,,	,,
तृ	विपदा	विपद्भ्याम्	विपद्भिः
च	विपदे	,,	विपद्भ्यः
पं	विपदः	,,	,,
ष	,,	विपदोः	विपदाम्
स	विपदि	,,	विपत्सु
सं	विपद्	विपदौ	विपदः

इन तथा इनसे पहिले दिये हुए शब्दरूपोंसे ये प्रत्यय सुगमतासे मालूम होते हैं —

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	स्	औ	अः
द्वि	अम्	,,	,,
तृ	आ	भ्याम्	भिः
च	ए	,,	भ्यः
पं	अः		

ष	अस्	ओस्	आम
स	इ	,,	सु
स	स	औ	अस

१। ग्रिवश् + स = विप् — व्यञ्जनान्त शब्दोंका प्रत्यय स का लोप हो जाता है।

अब हम लोग इस पाठमें दिये हुए वाक्योंमें सन्धिके नियमोंका विचार करें।

रवि + उदयम् = रविरुदयम्, कपिभि + रावणम् = कपिभिर् रावणम् = कपिभी रावणम्, मनो + अपत्यानि = मनोरपत्यानि, भानु + विनश्य = भानुर्विनश्य, निर + रस = नीरस, निर + रोग = नीरोग —

नियम —

२। जब विसर्गके पहिले अ या आ के सिवा कोई स्वर आवे और उसके बाद कोई स्वर या घोष व्यञ्जन हो तो वह र में बदल जाता है।

३। जब र के बाद र हो तो उसका लोप होता है, और उसके पहिलेका स्वर, यदि वह ह्रस्व हो, दीर्घमें बदल जाता है।

घोर + अरीन = घोरोऽरीन —

जब विसर्गके पहिले और बाद अ हो तो वह उ में बदल जाता है (पाठ ७ नियम ७) अ + उ = ओ (पाठ ७ नियम ८)।

४। जब किसी शब्दके अन्तमें रहनेवाले ए या ओ के बाद अ आता है तो वह अ उसमें मिल जाता है, और यह उसका मिलना ऽ चिह्नसे दिखाया जाता है, जिसको अवग्रह कहते हैं।

गुरो + अपि = गुरोऽपि, नी + अक = नै[1] + अक = नायक, पो + अक = पायक।

१। अक (जो धातुसे होने वाला एक प्रत्यय है और कर्ताका बोध कराता है) के पहिले धातुके अन्तिम स्वरको वृद्धि आदेश होता है।

च	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पं	भानोः	,,	,,
ष	,,	भान्वोः	भानूनाम्
स	भानौ	,,	भानुषु
सं	भानो	भानू	भानवः

हरि और भानु शब्दके रूपोंको मिलानेपर यह मालूम होगा कि इन दोनोंमें एकसा परिवर्तन हुआ है।

त्रिष्टुभ्—स्त्रीलिङ्ग।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	त्रिष्टुप्	त्रिष्टुभौ	त्रिष्टुभः
द्वि	त्रिष्टुभम्	,,	,,
तृ	त्रिष्टुभा	त्रिष्टुब्भ्याम्	त्रिष्टुब्भिः
च	त्रिष्टुभे	,,	त्रिष्टुब्भ्यः
पं	त्रिष्टुभः	,,	,,
ष	,,	त्रिष्टुभोः	त्रिष्टुभाम्
स	त्रिष्टुभि	,,	त्रिष्टुप्सु
सं	त्रिष्टुप्	त्रिष्टुभौ	त्रिष्टुभः

इन तथा इनके पहिले दिये हुए शब्दरूपों से प्रत्यय सुगमतासे मालूम होते हैं :—

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	स्	औ	अस्
द्वि	अम्	,,	,,
तृ	आ	भ्याम्	भिस्
च	ए	,,	भ्यस्
पं	अस्	,,	,,

कुबेरो निधीनामीश।
मातलिरिन्द्रस्य सारथिः।
अलयः कुसुमानां गन्धं हरन्ति।
साधवो विपत्सु धैर्यं न त्यजन्ति।
बाला पांसुभिः क्रीडन्ति।

शब्दार्थ।

अग्नि (पुं)—आग	धैर्य (न)—धीरता
अपत्य (न)—सन्तान	निधि (पुं)—खजाना
अरि (पुं)—शत्रु	पांसु (पुं)—धूल
अलि (पुं)—भ्रमर	भूपति (पुं)—राजा
इन्द्र (पुं)—इन्द्र, स्वर्गका राजा	भानु (पुं)—सूर्य
ईश (पुं)—स्वामी	मणि (पुं)—रत्न
उदधि (पुं)—समुद्र	मनु (पुं)—मनु
उदय (पुं)—उदय, उन्नति	मातलि (पुं)—इन्द्रका सारथि
कपि (पुं)—बन्दर	मानव (पुं)—मनुष्य
कवि (पुं)—कवि	रवि (पुं)—सूर्य
कुबेर (पुं)—कुबेर, धनका प्रभु	रावण (पुं)—रावण
कुसुम (न)—फूल	वचन (न)—वचन
गन्ध (पुं)—सुगन्ध	विपद् (स्त्री)—विपद्
गुरु (पुं)—अध्यापक	शिशु (पुं)—लड़का
चरित (न)—चरित्र	साधु (पुं)—सज्जन
जन्तु (पुं)—प्राणी	सारथि (पुं)—सारथि
चित्र (न)—चित्र	सुहृद् (पुं)—मित्र
धीर (पुं)—गम्भीर पुरुष	हरि (पुं)—१ कृष्ण, २, किसी पुरुषका नाम

नियम —

५। ए, ऐ, ओ, तथा औ के बाद जब कोई स्वर आता है तो क्रमसे वे अय, अव, आय तथा आव में बदल जाते हैं।

हरये और विष्णवे—इनमें इ तथा उ को गुण होनेके बाद—इसी नियम के अनुसार बने हैं।

हरि+ए=हरे+ए=हरय+ए=हरये।

गुरु+ए=गुरो+ए=गुरव+ए=गुरवे॥

६। गुरो+अपि=गुरवपि और गुर अपि—

जब ए, ऐ, ओ, तथा औ, किसी पदके अन्तमें होते हैं और उनके बाद कोई स्वर रहता है, तो उनके स्थानमें होनेवाले अय, अव, आय, तथा आव के य तथा व का विकल्पसे लोप होता है, और इस प्रकार उनका लोप होनेपर एक साथ आये हुए स्वर आपसमें नहीं मिलते।

हरे+ए—का केवल हरये होता है, क्योंकि हरे का ए पदके अन्तमें नहीं है।

शार्ङ्गिन्+जयति=शार्ङ्गिञ्जयति सत्+चरितम्=सच्चरितम्—

नियम —

७। जब स या तवर्गका कोई वर्ण श या चवर्गके किसी वर्णके साथ आता है, तो स को श होता है, और तवर्गके वर्णको उसी क्रमसे चवर्गका वर्ण होता है। इस प्रकार शार्ङ्गिञ्जयति में तवर्गका पञ्चम न् के स्थानमें चवर्गका पञ्चम ञ हुआ, और सच्चरितम् में प्रथम वर्ण त् के स्थानमें प्रथम वर्ण च हुआ।

८। अतिक्रामन्ति या अतिक्राम्यन्ति—क्रम् भ्वादि तथा दिवादि दोनोंमें है और उसके उपान्त्य अ को दीर्घ होता है।

आकाशे उड्डयन्ते शुका—तोते आकाशमें उड़ते हैं ।

वत्से ! सुष्ठु शोभसे विनयेन—बच्ची, तू विनय से अच्छी शोभती है ।

असत्यं भाषध्वे—तुम लोग झूठ बोलते हो ।

पुष्पाणां गन्धं हरन्ति अलयः=पुष्पाणां गन्धं हरन्त्यलयः—भ्रमर फूलोंके गन्धको हरते हैं ।

बिडालान् ताडयति=बिडालांस्ताडयति—वह बिल्लियोंको मारता है ।

क्षिपति—वह ढेलोंको फेंकता है ।

प्रतिपच्चन्द्रकलेव दिने दिने वर्धते बाला—प्रतिपद्की चन्द्रकलाकी तरह दिन दिन लड़की बढ़ती है ।

कन्ययो विवाहो (कन्ययोर्विवाहो) वर्तते अद्य—आज दो लड़कियों का विवाह है ।

इस पाठमें दिये हुए वर्तमान कालके रूप पहिले दिये गये रूपोंसे भिन्न हैं, जैसे रमसे, शोभसे, भाषध्वे, उड्डयन्ते । धातुओंसे आइजानेवाले प्रत्यय दो प्रकारके होते हैं परस्मैपद और आत्मनेपद । जिन धातुओंमें परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिनमें आत्मनेपद प्रत्यय लगते हैं वे आत्मनेपदी, और जिनमें दोनों प्रकारके प्रत्यय लगते हैं वे उभयपदी कहाते हैं । वर्तमान कालके दोनों पदोंके रूप इस प्रकार होते हैं —

भू-धातु—परस्मै ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र पु	भवति	भवतः	भवन्ति
म पु	भवसि	भवथः	भवथ
उ पु	भवामि	भवावः	भवामः

धातु	अव्यय
अतिक्रम् (अतिक्रामति, अतिक्राम्यति) (भ्वादि॰ तथा दिवादि॰)—पार करना लांघना	अपि—भी
रक्ष (भ्वादि॰) बचाना	न—नहीं
आरुह (आरोहति) (भ्वादि) चढ़ना	स्वस्ति—जय जयकार। (यह चतुर्थी के साथ आता है।)
वर्ण् (वर्णयति) (चुरादि॰)—वर्णन करना	स्वाहा—आहुति देनेके समय उच्चारण किया जाता है। (यह चतुर्थी के साथ आता है।)

विशेषण

बहु—बहुत।

पाठ ९।

आत्मनेपद वर्तमान काल तथा आकारान्त शब्द।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्—विद्या सचमुच मनुष्यकी बड़ी सुन्दरता है।

सीतया सह रामो रमते—सीताके साथ राम खेलता है।

नरपतिर्विघ्नेभ्यः प्रजास्त्रायते—राजा विघ्नोंसे प्रजाओंको बचाता है।

मयूरा वर्षासु नृत्यन्ति—मोर बरसातमें नाचते हैं।

रमायाम् हरिरुत्सुक = रमायां हरिरुत्सुक—रमा (लक्ष्मी) के लिये हरि उत्सुक है।

पाठशालाभ्यः सायं निर्गच्छन्ति बालिकाः—लड़कियाँ सायङ्कालको पाठशालाओंसे निकलती हैं।

आकाशे उड्डयन्ते शुकाः—तोते आकाशमें उड़ते हैं ।

वत्से ! सुष्ठु शोभसे विनयेन—बच्ची, तू विनय से अच्छी शोभती है ।

अनृतं भाषध्वे—तुम लोग झूठ बोलते हो ।

पुष्पाणां गन्धं हरन्ति अलयः=पुष्पाणां गन्धं हरन्त्यलयः—भ्रमर फूलोंके गन्धको हरते हैं ।

बिडालान् ताडयति=बिडालांस्ताडयति—वह बिल्लियोंको मारता है ।

इषू क्षिपति—वह दो बाणोंको फेंकता है ।

प्रतिपच्चन्द्रकलेव दिने दिने वर्धते बाला—प्रतिपदकी चन्द्रकलाकी तरह दिन दिन लड़की बढ़ती है ।

कन्ययोः विवाहो (कन्ययोर्विवाहो) वर्तते अद्य—आज दो लड़कियों का विवाह है ।

इस पाठमें दिये हुए वर्तमान कालके रूप पहिले दिये गये रूपोंसे भिन्न हैं, जैसे रमते, शोभसे, भाषध्वे, उड्डयन्ते । धातुओंसे जोड़े जानेवाले प्रत्यय दो प्रकारके होते हैं परस्मैपद और आत्मनेपद । जिन धातुओंमें परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिनमें आत्मनेपद प्रत्यय लगते हैं वे आत्मनेपदी, और जिनमें दोनों प्रकारके प्रत्यय लगते हैं वे उभयपदी कहाते हैं । वर्तमान कालके दोनों पदोंके रूप इस प्रकार होते हैं —

भू भ्वादि—परस्मै ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र पु	भवति	भवतः	भवन्ति
म पु	भवसि	भवथः	भवथ
उ पु	भवामि	भवावः	भवामः

धातु	अव्यय
अतिक्रम् (अतिक्रामति, अतिक्राम्यति) (भ्वादि तथा दिवादि)—पार करना, लाघना	अपि—भी
रक्ष (भ्वादि) बचाना	न—नहीं
आरुह् (आरोहति) (भ्वादि) चढ़ना	स्वस्ति—जयजयकार। (यह चतुर्थी के साथ आता है।)
कथ् (कथयति) (चुरादि)—कथन करना	स्वाहा—आहुति देनेके समय उच्चारण किया जाता है। (यह चतुर्थी के साथ आता है।)

विशेषण

बहु—बहुत।

पाठ ८।

आत्मनेपद वर्तमान काल तथा आकारान्त शब्द।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्—विद्या सचमुच मनुष्यकी बड़ी सुन्दरता है।

सीतया सह रामो रमते—सीताके साथ राम खेलता है।

नरपतिर्विघ्नेभ्यः प्रजास्त्रायते—राजा विघ्नोंसे प्रजाओंको बचाता है।

मयूरा वर्षासु नृत्यन्ति—मोर बरसातमें नाचते है।

रमायाम् हरिरुत्सुकः =रमायां हरिरुत्सुकः—रमा (लक्ष्मी) के लिये हरि उत्सुक है।

पाठशालाभ्यः सायं निःसरन्ति बालिकाः—लड़कियां सायङ्कालको पाठशालाओंसे निकलती हैं।

आकाशे उड्डयन्ते शुकाः—तोते आकाशमें उड़ते हैं ।

वत्से ! सुष्ठु शोभसे विनयेन—बच्ची, तू विनय से अच्छी शोभती है ।

असत्यं भाषध्वे—तुम लोग झूठ बोलते हो ।

पुष्पाणां गन्धं हरन्ति अलयः = पुष्पाणां गन्धं हरन्त्यलयः—भ्रमर फूलोंके गन्धको हरते हैं ।

बिडालान् ताडयति=बिडालांस्ताडयति—वह बिल्लियोंको मारता है ।

इषू अस्यति—वह दो बाणोंको फेंकता है ।

प्रतिपच्चन्द्रकलेव दिने दिने वर्धते बाला—प्रतिपद्की चन्द्रकलाकी तरह दिन दिन लड़की बढ़ती है ।

कन्ययोः विवाहो (कन्ययोर्विवाहो) वर्तते अद्य—आज दो लड़कियोंका विवाह है ।

इस पाठमें दिये हुए वर्तमान कालके रूप पहिले दिये गये रूपोंसे भिन्न हैं, जैसे रमसे, शोभसे, भाषध्वे, उड्डयन्ते । धातुओंसे जोड़ेजानेवाले प्रत्यय दो प्रकारके होते हैं, परस्मैपद और आत्मनेपद । जिन धातुओंमें परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं वे परस्मैपदी, जिनमें आत्मनेपद प्रत्यय लगते हैं वे आत्मनेपदी, और जिनमें दोनों प्रकारके प्रत्यय लगते हैं वे उभयपदी कहाते हैं । वर्तमान कालके दोनों पदोंके रूप इस प्रकार होते हैं —

भू भ्वादि—परस्मै ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र पु	भवति	भवतः	भवन्ति
म पु	भवसि	भवथः	भवथ
उ पु	भवामि	भवावः	भवामः

वध — धातु आत्मने।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र पु	वधते	वधेते	वधन्ते
म पु	वधसे	वधेथे	वधध्वे
उ पु	वधे	वधावहे	वधामहे

प्रत्यय (परस्मै)

प्र पु	ति	तस्	अन्ति
म पु	सि	थस्	थ
उ पु	मि	वस्	मस्

आत्मने।

प्र पु	ते	इते	अन्ते
म पु	से	इथे	ध्वे
उ पु	ए	वहे	महे

वधावहे—वधामहे—वध—वधन्त—

१। वहे और महे के पहिले अ को दीर्घ होता है जैसे वस और मस के पहिले अ को, और अन्ति के पहिले अ की तरह ए और अन्ते के पहिले अ का लोप होता है।

देखना चाहिये कि सब आत्मनेपद प्रत्यय ए में समाप्त होते हैं।

आकारान्त शब्द भी इस पाठमें लिये गये हैं।

रमा—(स्त्री)।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	रमा	रमे	रमाः।
द्वि	रमाम्	,,	रमाः
तृ	रमया	रमाभ्याम्	रमाभिः

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
च	रमायै	रमाभ्याम्	रमाभ्यः
प	रमायाः	,,	,,
ष	,,	रमयोः	रमाणाम्
स	रमायाम्	,,	रमासु
स	रमे	रमे	रमाः

हन्ति + अलय = हन्त्यलय , प्रति + उत्तरम् = प्रत्युत्तरम् , मधु + अरि = मध्वरि ।—

२ । जब इवर्ण, उवर्ण, ऋवर्ण और ऌ के बाद उनसे भिन्न प्रकारका (असवर्ण) स्वर आता है तो वे क्रमसे य, व् र और ल में बदल जाते हैं ।

बिडालान् + ताडयति = बिडालांस्ताडयति ।—

३ । जब पदके अन्तके न के बाद च , छ, त, थ, ट या ठ हो तो उसका अनुस्वार तथा विसर्ग दोनों होते हैं ।

४ । जब विसर्गके बाद च् या छ् हो तो वह श में, जब उसके बाद त् या थ हो तो स् में, और जब उसके बाद ट् या ठ हो तो ष् में बदल जाता है ।

कवी + आगच्छत , इषू + अश्नुति, लभेते + अत्र यहां सन्धिकार्य्य नहीं हुआ है ।

नियम —

५ । ईकारान्त ऊकारान्त, या एकारान्त संज्ञा किंवा क्रियावाचक शब्दोंके द्विवचनके अन्तिम स्वर उनके आगेके स्वरके साथ नहीं मिलते, इस प्रकार आगेके स्वरसे न मिलने वाले ई, ऊ और ए प्रगृह्य कहाते हैं ।

पटू + इयते = पटूइयते ।

विवरण :—

१। [illegible] (पाठ ८ विवरण ७ [illegible], [illegible]) [illegible] ।

[illegible] —[illegible] है । [illegible] विभक्ति लगी है ।

[illegible] ।
आतपात् [illegible] आतपत्रम् ।
[illegible] पुष्प न [illegible] ।
[illegible] ।
पङ्के जायते पङ्कजम् ।

शब्दार्थ ।

अगस्त्य (पुं)—एक ऋषिका नाम
अलि (पुं)—भ्रमर
आतप (पुं)—घाम, धूप
आतपत्र (न)—छत्र
इषु (पुं)—बाण
कन्या (स्त्री)—कुमारी
गन्ध (पुं)—गन्ध
चन्द्रकला (स्त्री)—चन्द्रकला
तृष्णा (स्त्री)—तृष्णा
नर (पुं)—मनुष्य
नरपति (पुं) राजा, मनुष्योंका स्वामी
पङ्क (पुं)—कीचड़
पङ्कज (न)—कमल
पाठशाला (स्त्री)—पाठशाला
पुष्प (न)—फूल
प्रभा (स्त्री)—प्रभा
प्रतिपद् (स्त्री)—[illegible]

प्रथम दि:

बाला (स्त्री)—लड़की
बालिका (स्त्री)—लड़की
बिडाल (पु)—बिलार
भार्या (स्त्री)—पत्नी
मयूर (पु)—मोर
रमा (स्त्री)—लक्ष्मी, विष्णु की स्त्री
रूप (न)—सुन्दरता
लोपामुद्रा (स्त्री) अगस्त्यकी भार्या
वत्सा (स्त्री)—प्रिय बालिका
वर्षा (स्त्री)—बरसात (यह शब्द सर्वदा बहुवचन ही में प्रयोग किया जाता है)
विप्र (पु)—विप्र
विद्या (स्त्री) ज्ञान
विवाह (पु)—विवाह
सीता (स्त्री)—सीता

विशेषण ।

अधिक—अधिक
उत्सुक—उत्सुक

अव्यय ।

अद्य—आज
इव—तरह, सदृश,
नाम—सचमुच
सायम—सायङ्काल

धातु ।

अस् (अस्यति) (दिवादि परस्मै)—फेंकना
उद्+डी (उड्डी—उड्डयते) (भ्वा आत्म)—उड़ना
चिन्त (चिन्तयति) (चुरादि परस्मै)—सोचना
ग्लै (ग्लायते) (भ्वा आत्म)—अघाना ।
निर्+गम (निर्गच्छति) (भ्वा परस्मै)—निकलना
भाष (भाषते) (भ्वा आत्म)—बोलना
रम (रमते) (भ्वा आत्म)—खेलना
लभ् (लभते) (भ्वा आत्म)—पाना
वृत (वर्तते) (भ्वा आत्म)—होना
वृध् (वर्धते) (भ्वा आत्म)—बढ़ना
शुभ (शोभते) (भ्वा आत्म)—शोभना

पाठ १० ।

सर्वनाम ।

सर्वः स्वार्थं समीहते—सर्वस्स्वार्थं समीहते—सब अपना स्वार्थ चाहता है ।

सर्वेभ्यः देवेभ्यो नमः = सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः —सब देवोंको नमस्कार ।

सर्वासु कलासु चतुरः एष बालः = सर्वासु कलासु चतुर एष बालः — यह लड़का सब कलाओंमें चतुर है ।

कस्य एष पुत्रः = कस्यैष पुत्रः —यह लड़का किसका है ?

का वार्ता वर्तते ?—क्या खबर है ?

अन्यः कः अपि एषः = अन्यः कोऽप्येष —यह कोई दूसरा ही है ।

किम् अपि एषा कथयति = किमप्येषा कथयति—यह कुछ भी कहती है ।

भूपते ! एषा एव सा ऊर्मिका = भूपते ! एषैव सोर्मिका—महाराज, यही वह अंगूठी है ।

के एते कन्ये—ये दो लड़कियां कौन हैं ? (के और एते का स्वर प्रगृह्य है, इस लिये सन्धि नहीं हुई) ।

तेषाम् विद्या न विद्यते = तेषां विद्या न विद्यते—उनको ज्ञान नहीं है ।

सर्व—(पुं)

	एक व	द्वि व	बहु व
प्र	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वि	सर्वम्	,,	सर्वान्
तृ	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
च	सर्वस्मै	,,	सर्वेभ्यः

	ए व	द्वि व	ब व
प	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्य
ष	सर्वस्य	सर्वयो	सर्वेषाम्
स	सर्वस्मिन्		सर्वेषु

सर्व (न)

	ए व	द्वि व	ब व
प्र द्वि	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि

और सब रूप पुलिङ्गके समान।

सर्व सर्वनाम है। इसका स्त्रीलिङ्गका रूप सर्वा होता है। राम, रमा, तथा फल शब्दके समान इसके तीनों लिङ्गोंमें रूप होते हैं। केवल अधोलिखित रूपोंमें विशेष है।

	पु	स्त्री	न
प्र ब व	सर्वे		
च ए व	सर्वस्मै	सर्वस्यै	पुलिङ्गके समान
प ,	सर्वस्मात्	सर्वस्या (ष ए व भी)	
ष ब व	सर्वेषाम्	सर्वासाम्	
स ए व	सर्वस्मिन्	सर्वस्याम्	

परस्मै, अन्येषाम्, किन्तु—पर (दूसरा), अन्य (दूसरा), और विश्व (सब) सर्वनाम हैं, और इनके रूप सर्वके समान होते हैं।

तद्—(पु)।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	स	तौ	ते
द्वि	तम्	,,	तान्
तृ	तेन	ताभ्याम्	तैः

यद्—(स्त्री)

	ए व	द्वि व	ब व
च	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
प	यस्याः		,,
ष	,,	ययोः	यासाम्
स	यस्याम्		यासु

किम्—(न)।

प्र	किम्	के	कानि
द्वि	,,	,,	,,
तृ	केन	काभ्याम्	कैः

अदस्—(न)

प्र, द्वि	अदः	अमू	अमूनि

एतद्—(पुं)

प्र	एषः	एतौ	एते
द्वि	एतम् एनम्	एतौ एनौ	एतान् एनान्
तृ	एतेन एनेन	एताभ्याम्	एतैः
च	एतस्मै	,,	एतेभ्यः
प	एतस्मात्	,,	,,
ष	एतस्य	एतयोः एनयोः	एतेषाम्
स	एतस्मिन्		एतेषु

एतद्—(स्त्री)

द्वि	एताम् एनाम्	एते एने	एताः एनाः
तृ	एतया एनया		
ष स		एतयोः—एनयोः	

एतद्—(न)

द्वि	एतद् एनत्	एते एने	एतानि एनानि

तद्, यद्, एतद्, और किम् सर्वनाम हैं। इनको त, य, एत, और क समझना चाहिये। और इनके रूप सर्वके समान होते हैं। तद् के पुंलिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें सः और एतद् का एषः रूप होता है। तद् के स्त्रीलिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें सा और एतद् का एषा रूप होता है। तद्, यद्, एतद्, और किम् के नपुंसक लिङ्गके प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमें तद्, यद्, एतद्, और किम् ये रूप होते हैं। अन्य के नपुं के प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमें अन्यत्—द् रूप होते हैं। एतद् के द्वितीयामें, तृतीयाके एकवचनमें, षष्ठी, तथा सप्तमीके द्विवचनमें तीनों लिङ्गों में एन के भी रूप बनते हैं।

छत्र + छायम् = छत्रच्छायम्—

नियम :—

१। जब विसर्गके बाद क, ख, प या फ आता है तो वह ज्यों का त्यों रह जाता है या ×, ष, श या स में बदल जाता है।

एषः + बाल = एष बालः, सः + जन = स जनः, एषः + पुत्र = एष पुत्रः—

नियम :—

२। जब विसर्गके बाद कोई व्यञ्जन आता है तो उसका लोप हो जाता है।

कथ + एव = कथैव, गङ्गा + ओघ = गङ्गौघः, परम + ऐश्वर्यम् = परमैश्वर्यम्, महा + औषधि = महौषधिः—

नियम :—

३। अ वा आ + ए वा ऐ = ऐ, और अ वा आ + ओ वा औ = औ।

सर्वां देवता नमामि।

अन्यदेतत् काननम्।

क एषः बालः।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]

[illegible]

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
[illegible]	

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पाठ ११।

द्वन्द्व और तत्पुरुष, ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द।

अयं सा पञ्चवटी—क्या यह पञ्चवटी है?

अयं सा गोदावरी—क्या यह गोदावरी है?

अयं तत् तपोवनम्—क्या यह तपोवन है?

सा हि कुलपतेः प्राणाः—वह तो कुलपतिका जीवन है।

लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः—लक्ष्मी और नारायणको प्रणाम।

विघ्नभयेन नीचाः कार्यं न प्रारभन्ते—विघ्नोंके भयसे नीच लोग कार्यको प्रारम्भ नहीं करते।

उत्तमजनाः कदापि धर्मं न त्यजन्ति—अच्छे लोग कभी धर्मको नहीं छोड़ते।

पञ्चधातवः पुत्तलासामग्री तनुः—पञ्चधातुमय (पांच धातुओंका समुदाय) पुतलाका सामान है।

सरस्वत्याः जलं पावनम्=सरस्वत्या जलं पावनम्—सरस्वतीका जल पवित्र है।

कुबेरः स्वनगर्याम् अ(म)लकायां वसति—कुबेर अपनी नगरी अलकामें रहता है।

पत्न्यै कुप्यति माणवकः—माणवक अपनी स्त्री पर क्रोध करता है, (कुप् चतुर्थीके साथ आता है)।

सरय्वाः तटे *कश्चित्तापसः प्रतिवसति=सरय्वास्तटे कश्चित्तापसः प्रतिवसति—सरयूके तटपर कोई तपस्वी रहता है।

श्वश्र्वाः आज्ञामनुसरति वधूः—श्वश्र्वा आज्ञामनुसरति वधूः—बहू सासकी आज्ञाका अनुसरण करती है।

---

* चित, चन, और अपि—ये अनिश्चित अर्थमें किम् शब्दके पुं, स्त्री, तथा नपुंसक लिङ्गके रूपोंके साथ जोड़े जाते हैं—जैसे कश्चित्, कश्चन, कापि किमपि इत्यादि।

इस पाठमें ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप दिये गये हैं।

नदी (स्त्री)।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वि	नदीम्	„	नदीः
तृ	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च	नद्यै	„	नदीभ्यः
पं	नद्याः	„	„
ष	„	नद्योः	नदीनाम्
स	नद्याम्	„	नदीषु
सं	नदि	नद्यौ	नद्यः

वधू (स्त्री)।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वि	वधूम्	„	वधूः
तृ	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च	वध्वै	„	वधूभ्यः
पं	वध्वाः	„	„
ष	„	वध्वोः	वधूनाम्
स	वध्वाम्	„	वधूषु
सं	वधु	वध्वौ	वध्वः

नदी तथा वधूके रूप एकसे हैं। परन्तु वधूके प्रथमाके एकवचनमें विसर्ग रहता है, और नदीके प्र ए व में नहीं रहता।

लक्ष्मीनारायणाभ्याम्, कुलपते, पञ्चवटी, तपोवनम्, विप्रभयेन, और उत्तमजना ये सब समास हैं।

दो या अधिक पद सब एक साथ मिले रहते हैं तो वह समास कहाता है। प्राय अन्तिम पदको छोड़ और सब पदोंकी विभक्तियोंका लोप हो जाता है।

हम लोग अपनी इच्छासे पदोंको जोड़कर समास नहीं बना सकते। संस्कृतके वैयाकरणोंने इस विषयपर अति सूक्ष्म नियम किये हैं।

प्रधानत समास चार प्रकारके होते हैं —द्वन्द्व, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव। इनमें पहिले दो प्रकारके समासोंका वर्णन इस पाठमें किया गया है।

रामलक्ष्मणौ (राम और लक्ष्मण), रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना (राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न), भीमार्जुनौ (भीम, और अर्जुन), लक्ष्मी-नारायणौ (लक्ष्मी, और नारायण), पार्वतीपरमेश्वरौ (पार्वती, और परमेश्वर), उमामहेश्वरौ (उमा, और महेश्वर) ये सब द्वन्द्व समास हैं।

१। द्वन्द्व समास वह है जिसमें सब (दो या अधिक) पदोंके अर्थों की एकसी प्रधानता रहती है। जब वह समास अलग किया जाता है तो उसका प्रत्येक पद च से जोड़ा जाता है। च का अर्थ 'और' है।

यदि दो पदोंका समास हो तो उसमें द्विवचन आता है और अधिक पदोंका हो तो बहुवचन, अन्तिम पदका लिङ्ग ही समासका लिङ्ग होता है। द्वन्द्वका अर्थ है जोड़, द्वन्द्व समासमें प्रति पदके अर्थकी एकसी प्रधानता रहती है।

छोटे शब्दका बड़े शब्दसे पहिले प्रयोग होता है। भाइयोंके नाम छोटे बड़ेके क्रमसे प्रयुक्त होते हैं।

२. कुलपति —कुलका स्वामी, षष्ठीतत्पुरुष, तत्पुरुष :—उपवा आश्रमौ, षष्ठीतत्पुरुष, तपोवनम् (तपस् + वनम् = तप व वनम् =

तपोधनम्)—तपका धन, षष्ठीतत्पुरुष, विद्याभयम्—विद्यासे भय, पञ्चमीतत्पुरुष—

२। तत्पुरुष वह समास है जिसका पहिला पद प्रथमाको छोड़ और किसी विभक्तिके अर्थमें हो और इस प्रकार वह दूसरे पदसे जोड़ा जाय।

'तत्पुरुष' यह शब्द भी तत्पुरुष समास है, और इसका अर्थ है—उसका आदमी, और इस प्रकार यह तत्पुरुष समासके लक्षणको बताता है।

तत्पुरुष शब्दका अर्थ—'वह आदमी' भी है। इसमें पहिला शब्द विशेषण है और दूसरा विशेष्य—

विशेषण तथा विशेष्यका समास भी एक प्रकारका तत्पुरुष है, इसको कर्मधारय कहते हैं।

उत्तमजना —कर्मधारय समास है।

३। कर्मधारय—कर्म धारण किया। इस समासके सब पद एक ही क्रियामें अन्वित होनेसे हैं, उत्तमजना गच्छन्ति और उत्तमजनान् पूजयामि—में उत्तम तथा जन ये दोनों एक ही क्रियामें अन्वित हैं। पहिलेमें ये कर्ता हैं और दूसरेमें कर्म। इस प्रकार कर्मधारय समासमें पद समानाधिकरण होते हैं। पञ्चपात्रम—पांच पात्रोंका समुदाय, पञ्चवटी—पांच वट वृक्षोंका समुदाय,—ये द्विगु समास हैं।

४। द्विगु कर्मधारयका एक भेद है। यदि प्रथम पद संख्यावाचक और द्वितीय पद संज्ञावाचक हो तो वह द्विगु समास है। यह समाहार (समूह) के अर्थमें नपुंसकके एकवचनमें प्रयोग किया जाता है। कहीं कहीं द्विगु समासके अन्तका अ ई हो जाता है।

द्विगु शब्द इस समासके लक्षणको बताता है क्योंकि इसका पहिला पद द्वि यह संख्यावाचक है और दूसरा पद गु (गो—गाय, गु में बदल गया है) संज्ञावाचक है।

५। समासके अर्थको स्पष्ट करनेके लिये उसके पदोंको अलग अलग कर दिखानेको विग्रह कहते हैं।

द्वन्द्व—रामश्च लक्ष्मणश्च रामलक्ष्मणौ।

तत्पुरुष—सतः पुरुषः सत्पुरुषः, विप्रात् भयं विप्रभयम्।

कर्मधारय—उत्तमाश्च ते जनाश्च उत्तमजनाः।

द्विगु—पञ्चानां पात्राणां समाहारः पञ्चपात्रम्।

वहन्ति नद्यः।

कुमार्यौ बालकाभ्याम् क्रीडन्ति।

वधूः पितुर्गृहमेवैच्छत्।

आज्ञाभङ्गं न सहन्ते नराधिपाः।

प्रदोषो रजनीमुखम्।

गङ्गायमुने प्रयागे सङ्गच्छेते।

गर्भिण्या इच्छा दोहदम्।

मयस्य पत्नी [illegible] कद्र्वाः [illegible]।

[illegible] परा शोभा [illegible]।

क्या यह ठीक है?

स्त्रियाँ और पक्षियोंका प्रणाम।

हम लोग पेड़ सींचते हैं।

शब्दार्थ ।

अधिप (पु)—स्वामी
अलका (स्त्री) कुबेरकी नगरी
आज्ञा (स्त्री)—आदेश
इच्छा (स्त्री)—चाह
काय (न)—काय
कुबेर (पु)—कुबेर
कुमारी (स्त्री)—अविवाहित कन्या
कुलपति (पु) १ कुलका प्रधान पुरुष, २ गुरु जो १०,००० शिष्योंको पढ़ाता और पोषण करता है।
गङ्गा (स्त्री)—गङ्गा
गर्भिणी (स्त्री)—गर्भिणी
गोदावरी (स्त्री)—गोदावरी
[illegible] (न)—कमजोर
जल (न)—पानी
तट (पु, न)—किनारा
तपोवन (न)—तपोवन
तापस (पु)—तपस्वी
दोहद (पु न) गर्भिणीका मनोरथ
नगरी (स्त्री)—नगरी
नारायण (पुं)—विष्णु
नैपुण्य (न)—चातुर्य
पञ्चपात्र (न)—पांच पात्रोंका समूह
पञ्चवटी (स्त्री)—दण्डकारण्यका एक भाग, जिसमें पांच बट थे
पत्नी (स्त्री)—भार्या
पादप (पुं)—पेड़
पूजा (स्त्री)—पूजा
प्रदाव (पु)—दावानल
प्रयाग (पु)—प्रयाग
प्राण (पु)—(बहुवचनमें प्रयोग होता है)—प्राण
मधु (पु)—वसन्त
भव (पुं)—शिव
भवानी (स्त्री)—पार्वती
माणवक (पु)—किसी का नाम
मुख (न)—१ मुँह, २ आरम्भ
यमुना (स्त्री)—यमुना
रजनी (स्त्री)—रात
रुद्र (पु)—शिव
रुद्राणी (स्त्री)—पार्वती
लक्ष्मी* (स्त्री)—लक्ष्मी
वधू (स्त्री)—स्त्री, पुत्रवधू
शरयू (स्त्री)—शरयू नदी
श्वश्रू (स्त्री)—सास
सरस्वती (स्त्री)—सरस्वती नदी
सामग्री (स्त्री)—सामान
सीमा (स्त्री)—सीमा, हद।

* प्रथमा ए व लक्ष्मी । शेष रूप नदी शब्दके समान।

विशेषण।

उत्तम—सब से अच्छा
नीच—नीचा, अधम
पर—(स्त्री परा) बड़ा (परा सीमा=चरम सीमा)
पावन—पवित्र, शुद्ध करनेवाला
बाल—लड़का
श्रेष्ठ—उत्तम
स्व—अपना (सर्वनाम)*

धातु।

कुप् (कुप्यति) (दिवादि पर)—कोप करना। (चतुर्थीके साथ आता है)।
प्र+आ+रभ् (प्रारभते) (भ्वा आत्म)—आरम्भ करना।
सम्+गम् (सङ्गच्छते)—सगम् (भ्वा आत्म) मिलना।
सह् (सहते) (भ्वा आत्म)—सहना
सिच [सिञ्च] (सिञ्चति) (तुदादि पर)—सींचना।
स्रु (स्रवति) (भ्वा पर)—बहना।

पाठ १२।

बहुव्रीहि और अव्ययीभाव, सकारान्तशब्द, मूलकृदन्त।

रामः ससीतः सलक्ष्मणो वनं गतः—राम सीता और लक्ष्मणके साथ वनको गया।

अश्वमारूढो देवदत्तः—देवदत्त घोड़ेपर चढ़ा।

---

* यह सर्वनाम है जब इसका अर्थ अपना है। जब इसका अर्थ सम्बन्धी या धन है तब यह सर्वनाम नहीं है।

क एषोऽस्ति भो। कुत आगतोऽसि।—यह कौन है जी? तू कहांसे आया है?

प्रतिदिनं सन्ध्यामाचरति—वह प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन करता है।

तपोधनानां तप एव परमं धनम्—मुनियोंका तपही बड़ा धन है।

ऋषयो जितेन्द्रिया जितक्रोधाश्च—ऋषि लोग ही हैं जिन्होंने इन्द्रियोंको तथा क्रोधको जीता।

च तथा वा भाषाकी तरह न तो अकेले आते हैं न वाक्योंके बीचमें ही आते। इनके प्रयोगपर ध्यान दो। रामश्च लक्ष्मणश्च या रामो लक्ष्मणश्च। रामो वा लक्ष्मणो वा, अथ वा रामो लक्ष्मणो वा, न त्वया साधु कृतं न ज्ञानेन।

परोपदेशवेलायां सर्वेऽपि पण्डिता भवन्ति—दूसरोंको उपदेश देनेके समय सभी पण्डित होते हैं।

अहो एतद्गृहस्य रमणीयता—वाह! इस घरकी सुन्दरता।

चन्द्रमा ओषधीनां नायकः—चन्द्रमा ओषधियोंका स्वामी है।

पयोदाः पयांसि वर्षन्ति—मेह पानी बरसते हैं।

कुतूहलेन तेषां चेतसि लब्धं पदम्—कौतुकने उनके हृदयमें स्थान पाया।

इस पाठमें बहुव्रीहि तथा अव्ययीभावका वर्णन किया गया है।

बहुव्रीहि—यदि इस शब्दको बहु व्रीहि (बहुत धान) ऐसा लिया जाय, तो यह कर्मधारय समास है, क्योंकि यह विशेषण तथा विशेष्यसे बनाया गया है। पर यदि इसका अर्थ 'वह जिस के पास बहुत धान है' (बहु व्रीहि यस्य) ऐसा लिया जाय, तो यह बहुव्रीहि समास है। इस प्रकार यह शब्द अपने लक्षणको बताता है।

जितेन्द्रिय—वह जिसने अपने इन्द्रियोंको जीता है।

जितक्रोध—वह जिसने अपने क्रोधको जीता है।

पीताम्बर—वह जिसका वस्त्र पीला है, विष्णु।

ये सब बहुव्रीहिके उदाहरण हैं।

१। विशेषण तथा विशेष्यका समास बहुव्रीहि समास है, यदि वह किसी दूसरेका विशेषण हो। इसका विग्रह दिखानेमें यत् शब्दका प्रयोग करना आवश्यक है, जो प्रथमाको छोड़ और बाकी किसी विभक्तिमें आ सकता है।

जितेन्द्रिय ऋषि—इसमें जित विशेषण है और इन्द्रिय विशेष्य, और यह समस्त पद अन्य पदार्थ ऋषिका विशेषण है। इसका विग्रह यों होता है—जितानि इन्द्रियाणि येन सः, पीतमम्बरं यस्य सः।

कमलनयन और ससीत बहुव्रीहि समास हैं—

२। सह समास भी, जिसमें पहिला पद सह है, बहुव्रीहि है। सह विशेषणके स में बदल जाता है। ससीत राम—सीतया सह वर्तते इति ससीतः—

३। यदि बहुव्रीहिका अन्तिम पद आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो और समस्तपद पुंलिङ्ग या नपुंसक लिङ्गका हो तो उस 'आ' को 'अ' हो जाता है।

प्रतिदिनम्—प्रति अव्यय है, दिन अव्यय नहीं है, पर यह समस्तपद अव्यय है, दिनं दिनं इति प्रतिदिनम् (हर दिन)—

४। यदि समासका प्रथम पद अव्यय हो और यदि वह समस्तपद भी अव्यय हो तो इसका नाम अव्ययीभाव समास है।

अव्ययीभाव शब्दका अर्थ है—जो अव्यय नहीं है, अव्यय हो जाता है। दिनम् सञ्ज्ञाशब्द है, पर प्रतिदिनम् में वह अव्यय है।

५। अव्ययीभाव समासका रूप सदा नपुंसक शब्दके द्वितीयाके एकवचनके समान होता है।

अस्—धातु, परस्मै वर्तमान काल।

	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
प्र. पु.	अस्ति	स्तः	सन्ति
म. पु.	असि	स्थः	स्थ
उ. पु.	अस्मि	स्वः	स्मः

सकारान्त शब्दोंके पुंलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्गके रूप भी इस प्रकार लिखे जाते हैं।

चन्द्रमस्—पुं।

	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
प्र	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
द्वि	चन्द्रमसम्	”	”
तृ	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
पं	चन्द्रमसः	”	”
ष		चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स	चन्द्रमसि	”	चन्द्रमस्सु or चन्द्रमःसु
सं	चन्द्रमः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः

पयस्—न।

	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
प्र	पयः	पयसी	पयांसि
द्वि	”	”	”
तृ	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
च	पयसे	”	पयोभ्यः
पं	पयसः	”	”
ष	पयसः	पयसोः	पयसाम्
स	पयसि	”	पयःसु-पयस्सु
सं	पयः	पयसी	पयांसि

ये रूप सन्धिके नियमके अनुसार शब्दोंके आगे प्रत्यय जोड़नेसे बने हैं । पुल्लिङ्ग के प्रथमाके एकवचनमें उपान्त्य अ को दीर्घ होता है ।

ई नपुंसक शब्दके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधनके द्विवचनका प्रत्यय है, और इ नपुं० शब्दके उन्हीं विभक्तियोंके बहुवचनका प्रत्यय है । प्रत्ययोंकी तरफ ध्यान दो ।

६ । अनुनासिक अथवा अन्तःस्थ व्यञ्जनोंको छोड़ और किसी व्यञ्जनमें समाप्त होनेवाले नपुंसक शब्दोंके प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधनके अन्तिम व्यञ्जनके पूर्व न् आता है, जब इ आगे रहता है ।

जब इस न् के बाद श्, ष्, स्, या ह् होता है, इसको अनुस्वार होता है, और जब और कोई व्यञ्जन आगे रहता है, यह न् उसके आगे रहनेवाले व्यञ्जनके वर्गके अनुनासिकमें बदल जाता है । सकारान्त शब्द तथा महत् शब्दमें इस अनुनासिकके पहिले रहनेवाले स्वरको दीर्घ होता है ।

क्तप्रत्ययान्त तथा कृत्यप्रत्ययान्त शब्दोंके रूप भी इस पाठमें दिखाये गये हैं । संस्कृतमें क्तप्रत्ययान्तका बहुत प्रयोग होता है । ये बहुधा अनद्यतन भूतकी जगह प्रयोग किए जाते हैं ।

भूतकृदन्त—भूत यह शब्द स्वयं भूतकृदन्त है, और इस बातको दिखाता है कि धातुसे भूतकृदन्त किस प्रकार बनाया जाता है ।

१ । भू+त=भूत । त भूतकृदन्तका प्रत्यय है ।

गम्	गत	इन धातुओंमें अन्तिम म् का लोप हुआ है ।
नम्	नत	
रम्	रत	

भू	भूत
जि	जित
नी	नीत
लुभ्	लुब्ध
रुध्	रुद्ध
लभ्	लब्ध
क्षुभ्	क्षुब्ध
क्रुध्	क्रुद्ध
युध्	युद्ध
वह्	ऊढ
रुह्	रूढ

ये सब रूप बनते हैं। लुभ्+त=लुभ्+ध=लुब्+ध=लुब्ध—त—जब किसी वर्गका चतुर्थ वर्ण उसके पहिले रहता है—ध हो जाता है, और उससे पहिले रहनेवाला वर्गचतुर्थ उसके तृतीयवर्णमें बदल जाता है।

वह्+त=वढ्+त=वढ्+ध=वढ्+ढ (ष्टुत्व ध् मूर्धन्य ढ् में बदल गया क्यों कि वह ढ् के साथ मिलाया गया)=ऊढ, पर रूढ में ऋ को दीर्घ नहीं हुआ—जब अनुनासिक या अन्तस्थ या वर्ग के सिवा और कोई व्यञ्जन आगे रहता है, धातु के अन्तिम ह् को ढ् होता है, ढ् जब आगे रहता है तो ढ् का लोप होता है, और म् को छोड़ कर उसके पहिले रहनेवाले स्वरको, यदि वह ह्रस्व हो, दीर्घ होता है।

रमणीय कैसे बना है इधर ध्यान दो।

८। गम्—गन्तव्य, गमनीय, गम्य (जाने योग्य)—तव्य, अनीय, और य विध्यर्थ प्रत्यय हैं।

श्रु—श्रवणीय, कृ—करणीय—कर्तव्य, शुच्—शोच्य, धृ—धार्य—

९। अनीय तथा तव्यके पहिले धातुके अन्तिम स्वर तथा हलन्त्य पूर्व स्वरके स्थानमें गुण आदेश होता है, और य के पहिले प्रायः अन्तिम स्वरको वृद्धि आदेश होता है।

१०। रमणीय—सुन्दर, रमणीयता—सुन्दरता—भाववाचक प्रत्यय ता और त्व हैं। इनके लगानेसे विशेषणोंसे भाववाचक शब्द बनते हैं।

शत्रून् पराजयते।
अध्ययनात् पराजयते।

बहूनि देवदत्तस्य पुस्तकानि ।
गतं न शोचनीयम् ।
पश्य रमणीयमेतद् गृहम् ।
अहो प्रियदर्शनः कुमारः ।
अपि सन्निहितोऽत्र कुलपतिः ।
अचिन्त्यानप्यर्थान् विधिर्घटयति ।
भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमे ।
न खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जनः स्मरति ।
तानि वचांसि तस्य हृदये शल्यानि सम्भूतानि ।
एतस्यां परिषदि बहवः पण्डिताः सन्ति ।
वयस्य ! कथं शून्यहृदयो भवसि ।
गुणेन शून्याः पशुभिः समानाः ।
पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरिताम् ।

हम लोग प्रतिदिन गङ्गामें नहाते हैं ।
ये लड़के कहांसे आये हुए हैं ?
इस नगरमें बहुत पण्डित रहते हैं ।

संज्ञाशब्द ।

अध्ययन (न)—पढ़ना	कुतूहल (न)—कौतुक
काम (पुं)—इच्छा	कुमार (पुं)—लड़का
आगम (पुं)—आना	क्रोध—(पुं)—क्रोध
इन्द्रिय (न)—इन्द्रिय	गुण (पुं)—गुण
उपदेश (पुं)—उपदेश	चन्द्रमस् (पुं)—चन्द्रमा
ऋषि (पुं)—मुनि	चेतस् (न)—मन
ओषधि (पुं)—वनस्पति	जन (पुं)—लोग

नद (पु)—बड़ा नद
नकुल (पु)—किसी पुरुषका नाम
नदी (स्त्री)—दरया, नदी
धन (न)—धन
नक्षत्र (न)—तारा
नायक (पुं)—स्वामी
पण्डित (पु)—पण्डित
पद (न)—स्थान
पयस् (न)—जल
पयोद (पुं)—मेघ
परिषद् (स्त्री)—सभा
पशु (पुं)—पशु
पुलिन (न)—तट
फल (न)—फल

रमणीयता (स्त्री)—सुन्दरता
लक्ष्मण (पुं)—लक्ष्मण
श्रवण (न)—प्राणी
वयस्य (पु)—मित्र
विधि (पु)—ब्रह्मा, दैव
वेला (स्त्री)—समय
शत्रु (पुं)—शत्रु,
शल्य (न)—कांटा, दुःखदायी
सन्ध्या (स्त्री)—त्रिकालसन्ध्या
सरित् (स्त्री)—नदी
सदन (न)—मकान
सीता (स्त्री)—रामकी स्त्री
स्थलम् (न)—पठार
हृदय (न)—हृदय

विशेषण ।

अचिन्त्य—जिसको सोच नहीं सकते
आगत—(आ+गम्+त) आयाहुआ
आरूढ (आ+रुह्+त) चढ़ा हुआ
उच्च—ऊंचा
उपरत (उप+रम्+त)—मृत
गत (गम्+त)—गया हुआ
जित (जि+त)—जीता हुआ

नम्र—नम्र, विनीत
पर—दूसरा (पर शत्रु)
परम—बड़ा
प्रियदर्शन (वस्तु)—सुन्दर
रमणीय—सुन्दर
लब्ध (लभ्+त)—मिला हुआ
वल्लभ—प्रिय

शून्य—खाली, (शून्यहृदय=जिसका मन ठिकाने नहीं)
शोचनीय—शोक करने योग्य
संनिहित—(सम्+नि+धा+त)—उपस्थित
सम्भूत—(सम्+भू+त)—उत्पन्न
समान—तुल्य

अव्यय।

अधुना—अब
कथम्—कैसे?
कुतः—कहाँ से?
खलु—निश्चयसे
तत्र—वहाँ
पुरा—पूर्वकालमें
प्रतिदिनम्—हरदिन
[1] भोः (भो) हे!
कुत्र—कहाँ?

धातु।

अस् (अस्ति) (अ पर)—होना।
आ+चर् (आचरति)-(भ्वा पर)-करना।
घट् (घटयति) (चु पर)—बनाना, पूरा करना।
पराजि (पराजयते) (भ्वा आ)—१ पराजय करना, २ थकना (दूसरे अर्थमें पञ्चमीके साथ प्रयोग किया जाता है।)
रुष् (रुषति) (भ्वा पर) घायलना।

पाठ १२।

इन्, त्, स तथा द् में समाप्त होनेवाले शब्द।

क अयम् ऋषिकुमार = कोऽयमृषिकुमारः—यह कौन ऋषिकुमार है?

अलम् अनेन अतिविस्तरेण = अलमनेनातिविस्तरेण—यह विस्तार बस है—अब बहुत न कहिये।

१। भोस् के स् का लोप होता है, जब उसके बाद कोई स्वर या घोष व्यञ्जन आता है।

प्रणयम् अयम् मम सर्वे सद्भाव—प्रणयमय मनुष्योंमें सद्भाव— यह मनुष्य सब मनुष्यके लिये सम (समान) है।

मनुष्यैः सर्वत्र एव विनयः कार्यः—मनुष्योंको सर्वत्र विनय करना चाहिये—सब लोगोंको सबके साथ नम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये।

महान् अस्य (महाकवेः) काव्यानां विषयः—[redacted] कविता कविके का विषय बड़ा है।

युधानां परिवर्तने यत्नेन (परिवर्तनेन) महद्यशो लब्धम्—परिवर्तनोंकी समामें इसने बड़ा यश पाया।

मन्दान्ति तु यानि वाहनानि याभ्याम् (घोड़ागाड़ी) कुमाराभ्याम्—इन दो लड़कोंने बड़े तुच्छ वाहन लिये।

नि स्पृहस्य तृणं जगत्—निःस्पृहको जगत् तृण (तुच्छ) है।

एभिः कर्मै किं प्रयोजनम्*—इन कर्मोंसे क्या काम है?

इयम् अस्मि—इयमस्मि—यह मैं हूँ।

यस्मिन् एव समये कोऽपि वनागमनानुशासनम्—यस्मिन्नेव समये कोऽपि वनागमनानुशासनम्—इसी समय कोई जानेकी आज्ञा नहीं पाया।

इदम्—पुं ।

	एक	द्वि	बहु
[redacted]	अयम्	इमौ	इमे
द्वि	इमम् एनम्	इमौ एनौ	इमान् एनान्
तृ	अनेन एनेन	आभ्याम्	एभिः
च	अस्मै	,,	एभ्यः
प	अस्मात्	,,	एभ्यः
ष	अस्य	अनयोः एनयोः	एषाम्
स	अस्मिन्	,,	एषु

* हेतु, अर्थ प्रयोजनम् किम् और इनके समान अर्थवाले पद प्रायः तृतीयाके साथ प्रयोग किये जाते हैं।

इदम्—स्त्री।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	इयम्	इमे	इमाः
द्वि	इमाम् एनाम्	,,—एने	,,—एनाः
तृ	अनया—एनया	आभ्याम्	आभिः
च	अस्यै	,,	आभ्यः
पं	अस्याः	,,	,,
ष	,,	अनयोः—एनयोः	आसाम्
स	अस्याम्	,, ,,	आसु

इदम्—न।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	इदम्	इमे	इमानि
द्वि	,,—एनत्	,,—एने	,,—एनानि

शेष पुं० के समान।

जगत्—न।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	जगत्	जगती	जगन्ति
द्वि	,,	,,	,,

भगवत्—पुं०।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
द्वि	भगवन्तम्	,,	भगवतः

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
तृ	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
च	भगवते	"	भगवद्भ्यः
प	भगवतः	"	"
ष	"	भगवतोः	भगवताम्
स	भगवति	"	भगवत्सु
सं	भगवन्	भगवन्तौ	भगवन्तः

महत् -पुं० ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वि	महान्तम्	"	महतः
तृ	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
च	महते	"	महद्भ्यः
प	महतः	"	"
ष	"	महतोः	महताम्
स	महति	"	महत्सु
सं	महन्	महान्तौ	महान्तः

वाच्—स्त्री ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	वाक् ग्	वाचौ	वाचः
द्वि	वाचम्	"	"
तृ	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च	वाचे	"	वाग्भ्यः

	ए व।	द्वि व।	ब व।
च	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष	,,	वाचोः	वाचाम्
स	वाचि	,,	वाक्षु
स	वाक्-ग्	वाचौ	वाचः

सुखभाज्—पु०।

	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	सुखभाक्-ग्	सुखभाजौ	सुखभाजः
द्वि	सुखभाजम्	,,	,,
तृ	सुखभाजा	सुखभाग्भ्याम्	सुखभाग्भिः
च	सुखभाजे	,,	सुखभाग्भ्यः
प	सुखभाजः	,,	,,
ष	,,	सुखभाजोः	सुखभाजाम्
स	सुखभाजि	,,	सुखभाक्षु
स	सुखभाक्-ग्	सुखभाजौ	सुखभाजः

महत्—न।

प्र, द्वि, स महत्—द् महती महान्ति

महती—महत् का स्त्रीलिङ्ग है।

सुखभाज्—न।

प्र, द्वि, स सुखभाक्-ग् सुखभाजी सुखभाञ्जि

१। भगवत्+भ्याम्=भगवद्भ्याम्—

अनुनासिक या अन्तःस्थ को छोड़कर पदके बीचका और कोई व्यञ्जन, जब, उसके बाद वर्गका तृतीय या चतुर्थ वर्ण होता है, अपने वर्ग को तृतीय वर्णमें बदल जाता है।

१। प्राच् आयुः = प्राङ् + आयुः = प्राङायुः, प्राच् + स् = प्राक्, = प्राक् — प्राक् —

पदान्तका वर्ग वर्णको अवसानमें अघोष अल्प बदल जाता है, यदि उसके बाद अनुनासिक या अन्तःस्थ मिला कोई व्यञ्जन न हो। अथवा कोई वर्ण न हो।

३। पदके अन्तका अनुनासिक न मिला कोई व्यञ्जन वर्ग अपने वर्गके प्रथम या तृतीय वर्णमें बदल जाता है।

सुबन्तादिके तथा वाक्यादि – इन उदाहरण जिन १५ वा वाक्य में जो नियम। यथा। वार् स (जल) में स् नहीं है ता। क्योंकि र् बाद रुप है।

वार् — वा — वारी — वारि — स ह्नि, ष।

वाक्षु = वाच् + सु = वाक् + सु = वाक् + षु,

वार्षु = वार् + सु = वार् + षु,

कमल्षु = कमल् (कमलको विश्वको काटनेवाला) + सु =

कमल् + षु,

रामेषु = राम + सु = रामे + सु = रामे + षु,

मतीषु = मती + सु = मती + षु,

वधूषु = वधू + सु = वधू + षु, परन्तु रमासु = रमा + सु —

नियम —

४। अ, आ, को छोड़ और कोई स्वर, अथवा कोई कवर्ग, र्, वा ल पहिले होने पर प्रत्ययका स् को ष् होता है।

अस्मिन् + एव = अस्मिन्नेव, प्रत्यङ् + आत्मा = प्रत्यङ्ङात्मा (जीवात्मा), सुगण् + ईश = सुगण्णीश (अच्छीतरह गिननेवाला प्रभु) —

नियम —

५। ह्रस्वके बाद पदका अन्तके ङ्, ण्, वा न् का, कोई स्वर आगे रहने पर, द्वित्व होता है।

अपि तपो वर्धते ।

भानुर्वियति भाति ।

धिक् चौरान् ।

धिगियं दरिद्रता ।

अलं श्रमेण ।

रमणीयेयं लता ।

अहो मधुरमासां कन्यानां दर्शनम् ।

अहो महानुभावोऽयमृषिः ।

कथय किमर्थमिह रक्षण्या इति ।

न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।

अनेन तीर्थेनाद्य समीहितं साधयाम ।

अयं स ललितशो मित्र दुष्यन्त ।

तस्मिन्नरण्ये चिरमपि सीतया सह राम उषितः ।

लोभश्चेदगुणेन किम् ।

अर्थो हि कन्या परकीय एव ।

किं सारस्य धन्यस्य मायैवाडम्बरो महान् ।

क्षमा नाम महद् दुर्गं धिगतो महतामपि ।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।

साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ।

यहाँ हम लोग हैं ।

इन पत्तोंका क्या काम है ?

इस मूर्खको धिक्कार ।

तुम लोग ऐसे व्यग्र क्यों हो ?

* जब कोई शब्द दो बार प्रयोग किया जाता है तब उस का अर्थ 'हर' होता है जैसे—शैले शैले=हर पहाड़में ।

संज्ञाशब्द ।

अतिविस्तार (पु)—बड़ी लम्बाई
अर्थ (पु)—प्रयोजन
अनल (पु)—अग्नि
अरण्य (न)—वन
* अविषय (पु)—(नञ्समास) जिसको जान नहीं सकते
आडम्बर (पु)—दिखावा
उद्देश (पु)—प्रदेश, स्थान
गज (पु)—हाथी
चन्दन (न)—चन्दनका पेड़
जगत् (न)—संसार
तीर्थ (न)—उपाय, घाट, मार्ग
दरिद्रता (स्त्री)—दरिद्रता
दर्शन (न)—प्रकाश, देख पड़ना
दुःख (न)—कष्ट
दुष्यन्त (पु)—एक राजाका नाम
पदार्थ (पु)—वस्तु
परिषद् (स्त्री)—पण्डितोंकी सभा
प्रयोजन (न)—मतलब

प्रवात (पु)—(प्रकृष्टो वात) अच्छा पवन
बलभिद् (पुं)—बल असुरका मारक इन्द्र
मल्ल (पुं)—मल्ल, पहलवान
माणिक्य (न)—माणिक
मित्र (न)—मित्र
मौक्तिक (न)—मोती
पद्मम्—(न)—पद्म
लता (स्त्री)—लता
लोभ (पुं)—लोभ
वासुदेव (पु)—कृष्ण वसुदेव का लड़का
विक्रम (पु)—पराक्रम
विभव (पु)—शक्ति
वियत् (न)—आकाश
शैल—(पु)—पहाड़ (शैले शैले=हर पहाड़में)
श्रम (पु)—परिश्रम
समय—(पुं)—काल

---

* जिस कर्मधारयमें न या अन् पूर्वपद रहता है उसे नञ्समास कहते हैं। जैसे अपापम् (न पापमिति) पर अपापम् (नास्ति पापं यस्य सः) बहुव्रीहि है।

विशेषण ।

अर्थार्थि (अर्थ+ग्रिष्+स)—ग्राही	भाग्यवत्—भाग्यवान्
उषित—(वस्+त)—रहा	मधुर—मीठा, मनोहर
करणीय—करने योग्य	महत्—बड़ा
किञ्चित्—कुछ	वन्य—जंगली
किमपि—कुछ	समीहित (सम्+ईह्+त)—इष्ट
[1] कियत्—कितना	साधु—अच्छा
[2] धीमत्—बुद्धिमान्	सुभग—सुन्दर
नि सार (बहु)—बेमन	सोढ (सह्+त)—सहन किया हुआ
परकीय—दूसरेका	

अव्यय ।

अलम् (१) बस (इस अर्थ में यह तृतीयाके साथ आता है), (२) बराबरी का (इस अर्थ में यह चतुर्थीके साथ आता है।	सनु—सदा
इति—यह किसी वाक्यकी समाप्ति होने पर आता है।	धिक्—धिक्कार (यह प्राय द्वितीया के साथ आता है और कभी कभी प्रथमा और स. के साथ)
चिरम्—बहुत काल	प्रायेण—बहुत कर (प्राय शब्द का तृ. ए. व.)
चेत्—यदि (यह वाक्यके आरम्भ में कभी नहीं आता।)	सर्वत्र—सब ठौर

१। कुछ सर्वनाम शब्दोंसे परिमाण अर्थमें वत् प्रत्यय होता है। जैसे—यावत् तावत् एतावत्। कियत् तथा इयत् में यह यत में बदल जाता है इनके रूप भगवत् के समान होते हैं।

२। मत् प्रत्यय है। जिन शब्दोंका अन्त्य या उपान्त्य म, अ या आ हो उनका मत् वत् में बदल जाता है। जैसे—भगवत्, भास्वत् यशस्वत्, लक्ष्मीवत्। पर यवमत और भूमिमत अपवाद हैं। मत् में समाप्त होनेवाले शब्द भगवत के समान होते हैं।

वर्तमानकी तरह आज्ञामें भी विकरण लगानेकी पद्धति है।

पुष्—४ था।

प्र पु पुष्यतु पुष्यताम् पुष्यन्तु

लिख्—६ ठा।

प्र पु लिखतु लिखताम् लिखन्तु

इहागच्छ (यहाँ आओ), भानुमान् भव (विरोधी हो) एव 'प्रसाद (महाराज 'कृपा कीजिए) इनके साथ प्रकारों के तौर मिलाकर पढ़ो।

नियम —

लोट् लकार केवल आज्ञा ही के अर्थमें नहीं आता। इच्छा, प्रार्थना, तथा आशीर्वाद भी इसके अर्थ हैं।

क्रिया भी रक्षतात्—आशीर्वाद के अर्थ में प्रथम, तथा मध्यम पुरुष एकवचनमें तात् विकल्पसे लगाया जाता है।

प्र पु रक्षतु—रक्षतात् रक्षताम् रक्षन्तु

म पु रक्ष—,, रक्षतम् रक्षत

इस पाठमें इकारान्त तथा उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप भी दिये गये हैं।

मति—स्त्री।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	मतिः	मती	मतयः
द्वि	मतिम्	,,	मतीः
तृ	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
च	मत्यै—मतये	,,	मतिभ्यः
पं	मत्याः—मतेः	,,	,,

	ए व	द्वि व	ब व
ष	मत्याः—मतेः	मत्योः	मतीनाम्
स	मत्याम्—मतौ	,,	मतिषु
स	मते	मती	मतयः

धेनु—स्त्री।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वि	धेनुम्	,,	धेनूः
तृ	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
च	धेन्वै—धेनवे		धेनुभ्यः
प	धेन्वाः—धेनोः	,,	,,
ष	,, ,,	धेन्वोः	धेनूनाम्
स	धेन्वाम्—धेनौ	,,	धेनुषु
स	धेनो	धेनू	धेनवः

इकारान्त उकारान्त पुंलिङ्ग शब्दोंके रूपोंको इनके साथ मिलाकर अधोलिखित भेदकी ओर ध्यान दो,—

१। स्त्रीलिङ्गमें द्वितीयाके बहुवचनमें न् के स्थानमें विसर्ग होता है। पुं हरीन्, भानून्, स्त्री—मतीः, धेनूः।

२। इकारान्त उकारान्त शब्दोंके च, प, ष, तथा स, के एकवचनमें विकल्पसे दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दोंके समान रूप भी होते हैं।

३। मत्वा तथा गत्वा प्रत्यय त्वा के जोड़ने से बने हैं।

नी—नीत्वा—(लेजाकर)	गम्—गत्वा—(जाकर)
श्रु—श्रुत्वा—(सुनकर)	नम्—नत्वा—(प्रणाम कर)
कृ—कृत्वा—(कर)	रम्—रत्वा—(खेलकर)
	म का लोप हुआ है।

आचार (आचारः) पु — व्यवहार सम्बन्धी आचार।

आज्ञा (स्त्री)—आदेश

आर्या (स्त्री)—प्रतिष्ठित स्त्री

आसन (आसनम्) न —आसन

औषध (औषधम्) न —दवा

कङ्कण (कङ्कणम्) न —कङ्कण

कौन्तेय (कौन्तेयः) पु —कुन्तीका पुत्र, युधिष्ठिर

क्षत्रिय (क्षत्रियः) पु —क्षत्रिय

घृत (घृतम्) न —घी

चकोर (चकोरः) पु —एक पक्षी जिसके विषयमें कहा जाता है कि वह चान्दनी खाता है।

चक्रवाकी (स्त्री) चकवी (यह रातको अपने सहचरसे वियुक्त रहती है)

चन्द्रिका (स्त्री)—चान्दनी

छात्र (छात्रः) पु —शिष्य

जात (स्त्री जाता जन् [जा] + त) प्रिय बालक

ज्ञान (ज्ञानम्) न —ज्ञान

दन्तधावन (न)—दांत धोना (मसूढ़)

दान (दानम्) न —देना

दुर्ग (दुर्—गम्) पुं, न —कठिनाई

दुर्नीति (स्त्री)—अनीति

द्विज (द्विजः) पुं —दो बार उत्पन्न, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनका दो बार जन्म होता है। यज्ञोपवीत संस्कार इनका द्वितीय जन्म है।

नृपति (पु)—राजा

पाणि (पुं)—हाथ

पार्थिव (पार्थिवः) पु —राजा

पुनर्दर्शन (पुनर्दर्शनम्) न —(पुनर् अव्यय फिर, दर्शन न)—दूसरी भेंट

प्रकृति (स्त्री)—स्वभाव

प्रतीकार (प्रतीकारः) पुं —(प्रतिकार भी पुं)—उपाय

ब्राह्मण (ब्राह्मणः) पु —ब्राह्मण

भक्ति (स्त्री)—भक्ति

भवत् (भवान्)—आप

भागीरथी (स्त्री)—गङ्गा

भ्रम (भ्रमः) पु —भ्रम

मति (स्त्री)—बुद्धि

मुक्ति (स्त्री)—मोक्ष

मृगया (स्त्री)—शिकार

मैत्र (पु)—किसीका नाम।

रज्जु (स्त्री)—डोरी

विकार (विकारः) पु —रोग, स्वाभाविक स्थितिमें परिवर्तन

वेदना (स्त्री)—पीड़ा

शस्त्र (शस्त्रम्) न—शस्त्र

सर्प (सर्प) पु—साँप

विशेषण ।

अनपराध (बहु०)—निर्दोष ।

असन्तुष्ट (नञ्समा०, अ—नहीं + सन्तुष्ट सम्+तुष्+त)—अप्रसन्न

नीरुज् (बहु०, निर्=निष्क्रान्त= निकला+रुज् स्त्री =रोग, जिसका रोग चला गया वह

आर्त[1] (आ+ऋत, ऋ+त)—पीड़ित

ईश्वर—धनी

उपस्थित (उप+स्था+त)—प्राप्त

उपासनीय (उप+आस्+अनीय) —पूजाके योग्य

घोर—भयानक

चल—चञ्चल

जड—सुस्त, मन्द

दरिद्र—गरीब

नष्ट (नश्+त)—नष्ट

पटु—चतुर

पथ्य—हितकारी

प्राज्ञ—बुद्धिमान्

लोल—चञ्चल

वृत्त (वृत्+त)—हुआ

व्याधित—(व्याधि पु रोग)—रोगसे पीड़ित

सन्तुष्ट—प्रसन्न

सहचर—साथी

स्नातव्य—(स्ना+तव्य) स्नान करने योग्य

धातु ।

अभि+वाद् (अभिवादयते) (चु आ)—प्रणाम करना

अव+गाह् (अवगाहते) (भ्वा आ)—नहाना

आ+मन्त्र् (आमन्त्रयते) (चु आ)—विदा माँगना

उप+विश् (उपविशति) (तु पर)—बैठना

१। इसमें आ+ऋ आर के बराबर है, अर के बराबर नहीं। इस प्रकार सन्धि अनियमित है।

क्लृप् (कल्पते) (भ्वा आ—यह चतुर्थीके साथ आता है)—समर्थ होना, उत्पन्न करना, लिये समर्थ होना

क्षम (क्षमते, क्षाम्यति) (भ्वा आ दि पर)—सहन करना

पुष् (पुष्यति) (दि पर)—पुष्ट करना, बढ़ाना

प्रति+नि+वृत् (प्रतिनिवर्तते) (भ्वा आ) लौटना

प्रति+पद् (प्रतिपद्यते) (दि आ)—स्वीकार करना, अभ्यास करना

प्र+दा [यच्छ्] या प्र+यम् [यच्छ्] (प्रयच्छति) (भ्वा पर)—देना

प्र+सद् (प्रसीदति) [सीद्] (भ्वा पर)—प्रसन्न होना

भज् (भजति-ते) (भ्वा उ)—भजन करना

भृ (भरति) (भ्वा पर)—भरना

मन् (मन्यते) (दि आ)—सोचना

वि+तॄ (वितरति) भ्वा प—देना

शुभ् (शोभते) (भ्वा आ)—शोभना, चमकना

सेव् (सेवते) (भ्वा आ)—सेवा करना

अव्यय ।

अनाज्ञाय (अ+आज्ञा—ल्यप् कृत् अव्यय)—न जानकर

उत्थाय (ल्यप् कृत् अव्यय)—उठकर

कर्तुम् (कृ+तुमुन्)—करनेके लिए

ततः—उसके अनन्तर

तथा—उस प्रकारसे

तावत्—१ तबतक, २ प्रथमतः, ३ यह वाक्यकी शोभाके लिए भी प्रयोग किया जाता है

त्रातुम् (त्रै+तुमुन्—भ्वा आ)—रक्षाके लिये

परस्तात्—पश्चात्, सम्मुख (¹तस्—प्रायः पञ्चमीके अर्थमें और कभी २ सप्तमीके अर्थमें आता है।)

प्रातर्—प्रातःकालमें, सुबह

१। सार्वविभक्तिकस्तसिः—तस् सब विभक्तिके अर्थमें आता है। तथापि प्रायः यह पञ्चमीके और कभी २ सप्तमीके अर्थमें आता है।

मा—नहीं (यह निषेधके अर्थमें लोट् लकारके मध्यम पुरुषके साथ आता है)	यथा—जैसे, जिस प्रकारसे शीघ्रम्—जल्दी श्रोतुम्—(श्रु+तुम्) सुननेके लिये

पाठ १५।

विधिलिङ् (विध्यर्थ), आत्मने०।

प्रज्वलेरन्नमी अग्नयः = प्रज्वलन्ताममी अग्नयः —ये अग्नि जलते हैं।

य असौ (योऽसौ) चोर स गृहीत —जो वह चोर, वह पकड़ा गया (योऽसौ स —यह प्रसिद्ध) = यह प्रसिद्ध चोर पकड़ा गया है।

सर्वे अमी (सर्वेऽमी) इम पण्डितमाद्रियन्ते—ये सब इस पण्डितका आदर करते हैं।

अमीषां प्राणानां कृते किं न व्यवसितम् एभिः (व्यवसितमेभिः)—इन प्राणोंके लिये इन्होंने क्या नहीं किया?

अपि नामानुरूपं वरं लभेय—क्या (अपि नाम—क्या ऐसा मैं चाहती हूँ) योग्य पति पाऊंगी?

सम्पत्तौ न हृष्येत् विपत्तौ (हृष्येद्विपत्तौ) च न विषीदेत् प्राज्ञः —बुद्धिमान् सम्पत्तिमें प्रसन्न न हो, और न विपत्तिमें खिन्न हो।

दुर्बलः युद्धे वैतसीं वृत्तिम् आश्रयेत् (वृत्तिमाश्रयेत्)—दुर्बल पुरुष लड़ाईमें बेतसे व्यवहारका आश्रय ले (अर्थात् नम्र होकर या झुके)।

न्यायशास्त्रं शिक्षेवहि इतीच्छामि (शिक्षेवहीतीच्छामि)—मैं चाहता हूँ कि हम दोनों न्यायशास्त्र पढ़ें।

ऋषीन् मा कदापि त्व (त्व) अवधीरये—ऋषियोंका कभी अनादर न करो।

प्रवासाज्झटिति न प्रतिनिवर्तेथा चेत् म्रियेय (प्रतिनिवर्तेथाश्चेन्म्रियेय)—यदि प्रवाससे शीघ्र न लौटोगे तो मैं मर जाऊंगी।

इस पाठमें विधिलिङ् (विध्यर्थ) के तथा अदन्तके रूप लिखे गये हैं।

१ ऊपर लिखे हुए वाक्योंको देखनेसे यह मालूम होगा कि लिङ्लकार —सम्भव, आज्ञा, इच्छा, आशीर्वाद, आशा, तथा शक्ति—इन अर्थोंमें आता है। इसके कई अर्थ लोट् लकारके से हैं। यह अप्रधान वाक्योंमें भी प्रयोग किया जाता है।

विधिलिङ्।

	भू—भ्वा पर			वृत्—भ्वा आ		
	ए व।	द्वि व।	ब व।	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र पु	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः	वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्
म पु	भवेः	भवेतम्	भवेत	वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्
उ पु	भवेयम्	भवेव	भवेम	वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि

	पुष्—दि पर।			मृ—तुदा आ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र पु	पुष्येत्	पुष्येताम्	पुष्येयुः	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्

चुर्—चु० पर।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः

अभिमनु—त आ।

प्र पु	अभिमन्वीत	अभिमन्वीयाताम्	अभिमन्वीरन्

विधिलिङ्के प्रत्यय इस प्रकार हैं —

	(पर)।			(आत्म)।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	ईत्	ईताम्	ईयुः	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म पु	ईः	ईतम्	ईत	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ पु	ईयम्	ईव	ईम	ईय	ईवहि	ईमहि

वर्त्तेय, वर्तेय, कर्त्ता, कर्ता, वर्त्तमान, वर्तमान, न ह्यस्ति, न ह्य्यस्ति, हर्य्यनुभव, हर्यनुभव इत्यादि दोनों प्रकारके रूप शुद्ध हैं।

२। जब र् या ह किसी स्वरके बाद आते हैं तो उनके बाद रहनेवाले व्यञ्जनको विकल्पसे द्वित्व होता है।

—वर्तमानमें र् स्वरके बाद है, र् के बाद रहनेवाले त् को विकल्पसे द्वित्व होता है।

	अदस्—पु।			अदस्—स्त्री।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र,	असौ	अमू	अमी	असौ	अमू	अमूः
द्वि	अमुम्	,,	अमून्	अमूम्	,,	,,
तृ	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
च	अमुष्मै	,,	अमीभ्यः	अमुष्यै	,,	अमूभ्यः
प	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	,,	अमुष्याः	,,	,,
ष	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्	,,	अमुयोः	अमूषाम्
स	अमुष्मिन्	,,	अमीषु	अमुष्याम्	,,	अमूषु

अदस्—न।

प्र, द्वि	अदः	अमू	अमूनि

शेष पुंलिङ्गके समान।

चेत्+म्रियेय=चेद् म्रियेय, वा चेन्म्रियेय।

नियम—

३। (अ) वाक्+हरि=वाग्घरि, तत्+आसनम्=तदासनम्—पदके अन्तमें अनुनासिकके सिवा कोई व्यञ्जन हो और उसके बाद कोई स्वर या घोष वर्ण हो तो वह अपने वर्गके तृतीय वर्णमें बदल जाता है।

(ब) चेत्+म्रियेय=चेद्म्रियेय वा चेन्म्रियेय, तत्+मरणम्=तद्मरणम् वा तन्मरणम्—परन्तु यदि आगे कोई अनुनासिक हो तो पदके

अन्तके अनुनासिकसे भिन्न कोई व्यञ्जन आगे रहने पर अनुनासिकमें विकल्प से बदल जाता है।

(क) तद्+मात्रम्=तन्मात्रम् (केवल वह), चित्+मयम्=चिन्मयम् (ज्ञानमय), वाक्+मयम्=वाङ्मयम् (शास्त्र),—मात्र और मय प्रत्यय हैं। पदके अन्तका अनुनासिकसे भिन्न कोई व्यञ्जन नित्य अपने वर्गके अनुनासिकमें बदल जाता है—यदि उसके बाद प्रत्यय-सम्बन्धी अनुनासिक हो। जैसे—तद्+मरणम्=तन्मरणम् या तद्मरणम् परन्तु तद्+मात्रम्=तन्मात्रम्, चित्+मयम्=चिन्मयम्, वाक्+मयम् वाङ्मयम्।

अदस् के रूप इस प्रकार बनते हैं —

पु तथा स्त्रीलिङ्गके एकवचनमें असौ। इतर रूप बनानेके लिये इसको अमु रूप समझना चाहिये, जो सबसे ऐसा चलता है। द्को म् होता है, और उसके बादवाले स्वरको यदि वह ह्रस्व हो, उ होता है, यदि वह दीर्घ हो तो ऊ होता है। पुंलिङ्गमें द्वितीयाको छोड़ और सब विभक्तियों के बहुवचनमें ऊ या उसके ई होता है। पलिङ्गमें तृतीयाके एकवचनमें मुके बादवाले स्वरका उ होता है, ऊ नहीं।

४। अमी प्रगृह्य, इसकी संज्ञा—अमीके ईकारकी प्रगृह्य है, अर्थात् यह अग्रिम स्वरके साथ नहीं मिलता।

धिङ् मूढ।
*नारायणमिम मोरयामास।
स्वागतं देवौ।
नेत्रे इव भातः। कर्णौ बधिरौ। पाणी यन्त्रे।
गौरीव कौशिकोऽसि।
चिर जीव। अनुमितो देवाग्नि।
अमी अश्वास्तृणं खादन्ति।

° इन्हादि मवन जाती हैं। ऐसी कोई अवस्था नहीं जहाँ ये नहीं जातीं।

मलीमसां पद्धतिं कदापि नावलम्बेमहि ।
अलमनेनाप्रस्तुतेन । प्रस्तुतमथोपक्रमे ।
यद्यधर्मान्निवर्तेथा शोभनं भवेत् ।
वयस्य ! विरमास्मान्निष्फलाऽऽरम्भात् ।
सन्तापो नाम गुरूणामथ परमं तपस्तत् ।
[1]सखे ! इमे अपि प्रवेशये । न युक्तमनयोरत्र गन्तुम् ।
एता इमाः सख्यः क्व नु गता भवेयुः ।
न्याय्यां वृत्तिं समाचरेत् ।
कथं पुनरमी कथय वत्से रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति ।
न सुहृदं सङ्कटेषु न च धर्मं परित्यजेत् ।
भाषेत सत्यप्रकारेण नोपकारेण दुर्जनः ।
भवतो जयमभिवाञ्छेम पुनरभिवाञ्छेम पराजयम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।

तुमको अपने गुरुकी आज्ञा करनी चाहिये ।
बुरे कामोंसे दूर रहो ।
तुमको कहना चाहिये कि फिर क्या हुआ ।
अच्छा होता यदि तुम झूठ न कहते ।
वे प्रसिद्ध चोर पकड़े गये हैं ।

नयाशब्द ।

अगति (स्त्री)—स्थानका अभाव
अधम (अधमं) पु—बुरा काम
अमृत (अमृतम्) न (अ + मृत = मृ + त)—अमृत
अर्थकृच्छ्र (पु, ष तत्पु०, अर्थ पु, धन + कृच्छ्र पु, न—कष्ट)—धनका कष्ट
आदेश (आदेशः) पु—आज्ञा

१। अब शकुन्तला अपने पतिके घरकी तरफ सखियोंको भी भेजनेके लिये प्रार्थना करती है तब यह बात कहे मुनि कण्व कहते हैं।

आरम्भ (आरम्भ) पुं—काम
ईश्वरेच्छा (स्त्री)—ईश्वरकी इच्छा (तत्पु०)
उत्सव (उत्सव) पुं—उत्सव
उपकार (उपकार) पुं—उपकार
कर्ण (कर्ण) पुं—कान।
कलह (कलह) पु—झगड़ा
जानु (जानुम्) न—घोनु
चोर (चोरः) पु—चोर
क्षय (क्षय) पु—क्षय
दुर्जन (दुर्जन) पु—(तत्पु० प्रादिस०) दुर् उपसर्ग दुरा)—बुरा आदमी
नेत्र (नेत्रम्) न—आंख
न्यायशास्त्र (न्यायशास्त्रम्) न—(तत्पु०, न्याय पु+शास्त्र न) तर्कशास्त्र
पद्धति (स्त्री)—राह
पराक्रम (पराक्रम) पु—हार
अपकार (अपकार) पु प्रति विरुद्ध + उपकार (प)—बुराई बदलेमें की हुई बुराई, अन्यता
प्रयाण (प्रयाण) पु—यात्रा
प्राज्ञ (प्राज्ञः) पु—बुद्धिमान्
मनोरथ (मनोरथ) पु—इच्छा (मनोरथोऽस्यास्तीति —वह स्थान जिसमें इच्छायें न जातीं हों)
मृग (मृग) पु—मृग
युद्ध (युद्धम्) न—लड़ाई
रामचन्द्र (रामचन्द्र) पु—राम
वर (वर) पु—पति
विपत्ति (स्त्री)—आपद्
विष (विषम्) न—विष, जहर
वृत्ति (स्त्री)—चालचलन
सखी (स्त्री)—सहेली
संग्राम (संग्राम) पु—युद्ध
सम्पत्ति (स्त्री)—सम्पद्।

विशेषण।

अलम् (अव्यय) यथेष्ट
अनुरूप—योग्य
अनुष्ठित (अनु+स्थित, स्था+त)—किया हुआ

१ प्र पर इत्यादि उपसर्गादि प्रथम पद है इसलिये ये प्रादि कहाते हैं। कर्मधारय समासमें प्रथमपद रूपि प्रादि की हो तो वह प्रादिसमास कहाता है। दुर् जन,—का व्यक्ति अधम जन।

अप्रस्तुत—अप्रकृत
काण—काना
खञ्ज—लगड़ा
गृहीत—(ग्रह् + त) पकड़ा हुआ
दुर्बल—कमज़ोर
निष्फल (बहु० निस् + फल न (निर्गत फल यस्मात् तत्)—विफल
न्याय्य—ठीक
प्रेय (प्र + इ + य)—विवाहमें दी जानेवाली

प्रस्तुत (प्र + स्तु + त) प्रकृत
बधिर—बहिरा
मलीमस (स्त्री—मलीमसा)—मलिन
युक्त—(युज् + त) योग्य
वेतसी (वेतसिका) बेंतकी
व्यवसित + (वि + अव + सो + त)—निश्चित
शूर—शक्तिमान्
शोभन—अच्छा (शोभन भवेत्—अच्छा होता)

धातु।

अनु + इष् [इच्छ्] (अन्विच्छति) (तु पर)—चाहना
अव + धीर् (अवधीरयति चु पर)—अनादर करना
अवलम्ब् (अवलम्बते—भ्वा आ)—आश्रय लेना, स्वीकार करना
आ + दृ [द्रिय्] (आद्रियते) (दि आ)—आदर करना
आ + श्रि (आश्रयति—ते, भ्वा उ)—आश्रय लेना

उप + क्रम् -(उपक्रमते—भ्वा आ)—आरम्भ करना
खोट (खोटति, भ्वा पर)—खोना
नि + वृत् (निवर्तते, भ्वा आ)—लौटना
परि + त्यज् (परित्यजति—भ्वा पर)—छोड़ना
प्र + ज्वल् (प्रज्वलति—भ्वा पर)—जलना

१। अत्र यति—दिवादिगणके ओकारान्त धातुओंको विकरण य के पहिले लुप्त हो जाता है जैसे—सो—स्यति ...

मुह् (मुह्यति) (दि० पर०)—मूर्छित होना

मृ [म्रिय] (म्रियते) (तु० आ०)—मरना

लभ (लभते) (भ्वा० आ०)—पाना

¹वि + रम् (विरमति—भ्वा० पर०)—विराम करना

वि + भिद् [भिन्द्] (विभिनत्ति)—(रुधा० पर०)—भिन्न होना (फोड़ना

सिध् (सिध्यति) (दिवा० पर०)—

सम् + आ + चर् (समाचरति—भ्वा० पर०)—करना

दुष् (दुष्यति) (दि० पर०)—दूषित होना

अव्यय।

इति—निम्नोक्त वाक्यावलीमें प्रयोग किया जाता है

अपि नाम १ क्या, जैसा कि चाहता हूँ (इच्छा दिखाता है) २ हो सकता है (सम्भव दिखाता है)

कुतो—किस लिए

क्व—कहाँ

क्वचित्—कहीं

च—और

झटिति—शीघ्र

नु—१ प्रश्नमें आता है २ अनुमान दिखाता है

पुनर् १ फिर, २ परन्तु, ३ वाक्य मध्यमें निरर्थ प्रयोग किया जाता है

उत—अथवा

मध्यतः—(मध्य + तस् पञ्चमीके अर्थमें)—बीच तरफसे

स्वागतम्—स्वागत (सु—अच्छा, आगत आ + गम् + त आया)

१। रम्—आत्मनेपदी है पर जब इसके पहिले वि, आ, परि, उप लगते हैं तो यह परस्मैपदमें भी आता है।

पाठ १६।

लङ् लकार या अनद्यतनभूत, अस्मद् और युष्मद्।

अयम् अहम् आगतोऽस्मि = अयमहमागतोऽस्मि—यह मैं आया।

इदं नः गृहं = इदं नो गृहं—यह हमारा घर है।

तस्मै ते नमः ईश्वराय—उस तुम परमेश्वरको प्रणाम।

एते वयम्_अ (आ) योध्यां प्राप्ताः—ये हमलोग अयोध्या पहुंचे।

शिवं ते मे अपि मित्र यच्छतात् = शिवं तेऽपि मित्र यच्छतात्—मित्र तुम और हमको सुख दे।

ईशः त्वा अवतु मा अपि इह = ईशस्त्वावतु मापीह—यहां ईश्वर तुमको बचावे और हमको भी।

मन्त्र मामनु ते—तुम्हारा मन्त्र हमारे पीछे है (अनुके योगमें द्वितीया होती है।)

अनु हरिं सुराः—देव लोग हरिसे कम हैं।

वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्—पेड़की ओर बिजली चमकती है।

अद्य प्रातर्मम वाम नयनम्_अ (स) स्फुरत् अपशकुनं हि तत्—आज प्रातःकाल मेरी बांई आंख फड़की। निश्चय, यह बुरा शकुन है।

सूर्योऽस्तम्_अ (ग) गच्छत्—सूर्य अस्तको गया।

अजां ग्रामम्_अ (न) नयाम—हमलोग बकरीको गांव ले गये।

संसारमपारम्_अ (म) मन्यत—उसने संसारको अपार समझा।

चन्द्रस्य प्रकाशेन निशीथे दीपा निष्प्रभाः अभवन् (निष्प्रभदीपोऽभवन्)—चन्द्रमाके तेजसे आधीरातको दिये प्रकाशहीन हुए।

इस पाठमें अस्मद्, युष्मद् तथा लङ् या अनद्यतन भूतके रूप दिये गये हैं। अस्मद् तथा युष्मद् शब्द तीनों लिङ्गोंमें समान रूप रहते हैं।

	अस्मद्। (पु, स्त्री, न)			युष्मद्। (पु, स्त्री, न)		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	अहम्	आवाम्	वयम्	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वि	माम् मा	,,—नौ	अस्मान् न	त्वाम् त्वा	,,—वाम्	युष्मान् व
तृ	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च	मह्यम् मे	,,—नौ	अस्मभ्यम् न	तुभ्यम् ते	,,—वाम्	युष्मभ्यम् व
प	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
ष	मम मे	आवयो नौ	अस्माकम् न	तव ते	युवयो वाम्	युष्माकम् व
स	मयि	आवयो	अस्मासु	त्वयि	युवयो	युष्मासु

(क) शब्दों के नाम इत्यादि—यहाँ न का प्रयोग किया गया है, क्योंकि शब्दों से यह मालूम होता है कि इसपर पहिले कहा जा चुका है।

१ (क) अस्मद् और युष्मद्के वैकल्पिक रूप, जैसे मा, नौ, न, तथा त्वा, वाम्, व, जहाँ अन्वादेश रहता है, नियमसे प्रयोग किये जाते हैं, और अन्यत्र विकल्पसे। जो एक बार कहा जा चुका उसको पुनः कहनेको अन्वादेश कहते हैं।

(ख) हरिस्त्वां मां च रक्षतु—यहाँ त्वा तथा मा का प्रयोग नहीं हो सकता, क्योंकि वे चसे जोड़े गये हैं—

(ग) अस्मद् और युष्मद्के वैकल्पिक रूप वाक्यके आरम्भमें प्रयोग नहीं किये जाते, और न च, वा, एव से जोड़े जानेपर।

अनेन व्याकरणं पठितमेनं काव्यमपि पाठय—इसने व्याकरण पढ़ा, इसको काव्य पढ़ाओ।

२। इसी प्रकार एतद् के एनम् इत्यादि वैकल्पिक रूप अन्वादेशमें प्रयोग किये जाते हैं।

लङ् लकार।

	भू—भ्वा पर।			वृत्—भ्वा आ।		
	ए व।	द्वि व।	ब व।	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र पु	अभवत्	अभवताम्	अभवन्	अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त
म पु	अभवः	अभवतम्	अभवत	अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्
उ पु	अभवम्	अभवाव	अभवाम	अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि

	पुष्—दि पर।			मृ—दि आ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अपुष्यत्	अपुष्यताम्	अपुष्यन्	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त

इन रूपोंको देखनेपर यह मालूम होगा कि धातुके पहिले अ (आगम) लगा हुआ है।

	इष—तु पर।			ऋछ् (ऋच्छ्) भ्वा पर।		
उ पु	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम इ०	आर्च्छम्	आर्च्छाव	आर्च्छाम इ०

जिन धातुओंके आरम्भमें स्वर होता है उनके पहिले अ को आ हो जाता है, जिसको आगेके स्वरके साथ वृद्धि आदेश होता है—गुण नहीं। इस प्रकार आ+इ या ई=ऐ, आ+उ या ऊ=औ, आ+ऋ या ॠ=आर्, तथा आ+ऌ=आल्।

लङ् लकारके प्रत्यय ये हैं —

	(परस्मै)			(आत्मने)		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	त्	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
म पु	स्	तम्	त	थाः	इथाम्	ध्वम्
उ पु	अम्	व	म	इ	वहि	महि

पाटलिपुत्रं नगरम् ।
हेय पाप जेय मनश ।
कुमार त्वमस्य कृते आज्ञां दातुं नार्हसि ।
मेघेभ्यो जलबिन्दवोऽपतन् ।
हरकण्ठेन पद्मान्युन्मीलन् कुसुमानि च आमोदन्त ।
अहो कथमद्यापि सा सत्या न प्रतिपद्यते ।
धर्माभिधानैरेनामसान्त्वयन् ।
भरतो रामस्य वियोगेन प्राणानत्यजत् ।
पितुर्या चन्द्र इव राम सीतया सहाजत ।
अधुना * भवन्तो मा प्रमाणमित्युक्त्वा आरमत् ।
हन्त ! न ते मङ्गलकाले रामिनुपस्थितम् ।
प्रवृत्ते सत्र ।
श्रीमत्स्वामिनु मापोद ।
वैरस्येषु यवश्लोऽस्मात् कृपा भजदाऽस्तु ।
विना मलयमन्यत्र चन्दनं न प्ररोहति ।
इय मयक्त ने कान्ता मतिरखाइत्थया धृता ।

अत्र कालिदासाद्या कवयो वयमप्यमी ।
पर्वते परमाणौ च पदार्थत्वं प्रतिष्ठितम् ॥
पान्थानां भय जातात् पद्मानां शिशिरात् भयम् ।
पक्वानां भय वृद्धात् साधूनां दुर्जनात् भयम् ॥

सज्जनोंकी प्रकृति कभी नहीं बदलती (वृत्) ।
मनुष्यको आपत्तिमें भी कर्तव्य न छोड़ना चाहिये (अर्ह् का प्रयोग करो) ।

---

* । भवन्तो मा प्रमाणम्—आपका आज्ञा मानने किया जाय ।

पापोंसे दुःख उत्पन्न हुए (उद्+भू)।
गुरुको प्रणाम।
क्या ऐसा होगा कि (अपि नाम) मैं गङ्गा नहाऊँ?

शब्दार्थ।

अजा (अजका स्त्री) बकरी
अपशकुन (अपशकुनम्) न—बुरा शकुन
अयोध्या (स्त्री)—अयोध्या
ईश (ईश) पु—प्रभु
कान्ता (स्त्री)—प्रिया
काल (काल) पु—समय
कुमुद (कुमुदम्) न—रात्रिविकासि कमल
कृष्ण (कृष्ण) पु—कृष्ण
गति (स्त्री)—गमन
गृह (पु) (यह नपुंसकमें भी आता है)—घर
ग्राम (ग्राम) पु—गांव
चित्रा (स्त्री)—एक नक्षत्र
जन (जन) पु—जन
जीव (जीव) पु—जीव
निशीथ (निशीथ) पु—आधीरात
पशुत्व (पशुत्वम्) न (पशु पु+त्व—भाववाचक प्रत्यय) पशुका धर्म
पद्म (पद्मम्) न—कमल
परमाणु पु—(कर्मधा॰ परम—बड़ा,+अणु पु कण) सबसे छोटा कण
पर्वत (पर्वतः) पु—पहाड़
पादप (पादप) पु तत्पु॰ पाद पु॰ पैर+प (पा—पीना) जड़ जो पैरसे पानी पीता है, पेड़ (पादेन पिबतीति)।
प्रकाश (प्रकाश) पु—प्रकाश
प्रमाण (प्रमाणम्) न—यथार्थ ज्ञानका कारण
बिन्दु पु—बूंद
मङ्गल (मङ्गलम्) न—शुभ
मलय (मलय) पु—एक पहाड़का नाम
मेघ (मेघ) पु—मेघ
वज्र (वज्रम्) न—इन्द्रका वज्र
वाक्य (वाक्यम्) न—वाक्य
वात (वात) पु—हवा
विद्युत् (स्त्री)—बिजली
वियोग (वियोग) पु—विरह
शिव (शिव) पु—महादेव

शिव (शिवम्) न—कल्याण
शिशिर (शिशिरम्) पुं न—ठंढा
श्रीश (श्रीश) पु (तत्पु०, श्री—स्त्री धनकी देवता, + ईश—पु लक्ष्मीका पति, विष्णु
सभा (स्त्री)—सभा
कुमार (कुमार) पुं—कुमार
सुर (सुर) पु—देव
मृग (मृग) पु—मृग
हंस (हंस) पु—हंस

विशेषण ।

अशेष (बहु० नास्ति शेषो यस्य)—जिसमें शेष नहीं, सब
अपार (बहु० अ-नहीं + पार—पुं तट) जिसमें कोई तट नहीं
अस्मद् (सर्वनाम)—हम
आढ्य—श्रीमान्
उचित—योग्य
कालिदासाद्य (बहु०, कालिदास—पु + आद्य विशे० = प्रथम) कालिदाससे आरम्भ कर
पेय (क्रिया कृत्यकृदन्त)—पान करने योग्य
जेय (क्रिया कृत्यकृ) जीतने योग्य
सुन्दर
निर्बीजम् (बहु०, निर् + बीजम्) जिसका सब निकल गया,
प्रतिष्ठित (प्रति + स्था—ठहरना का भूत कृ) स्थिर
प्रसन्न (प्र + सद् [सीद्] बैठना का भूत कृ)—शुद्ध, निर्मल, निर्दोष
प्राप्त (प्र + आप + त) पहुंचा
युष्मद् (सर्वनाम)—तुम
श्राव—श्रोता
संवेद्य (सम् + विद् + य)—जो ठीक जाना जाय
[1] हुता (हुत (हु + त) का स्त्री)—दे डाली गयी

धातु ।

अर्ह (अर्हति—भ्वा पर)—योग्य होना (त्वमर्हसि वोढुम्—तुमको उठाना योग्य है, तुमको उठाना चाहिये)

१। क्त—क्तवत् धनवत् धनवती—भूत कृदन्तका आ जोड़नेसे स्त्रीलिङ्ग बनता है और उसके समान कोनवाले विशेषणोंका स्त्री ई जोड़नेसे बनता है।

अव् (अवति—भ्वा पर)—बचाना
उद्+मील् (उन्मीलति—भ्वा पर)—खिलना, फूलना
दा (यच्छ्) (यच्छति) (भ्वा पर)—देना
नि+मील् (निमीलति—भ्वा पर)—बन्द होना, मुकुलित होना
प्रति+पद् (प्रतिपद्यते—दि आ)—पाना
प्र+दा (यच्छ्) (भ्वा पर)—देना
प्र+रुह् (प्ररोहति—भ्वा पर)—उगाना
मन् (मन्यते—दि आ)—सोचना
वि+द्युत् (विद्योतते—भ्वा आ)—चमकना
वि+राज् (विराजति—रा—भ्वा उभ)—चमकना
सान्त्व् (सान्त्वयति—चु पर)—शान्त करना
स्पन्द् (स्पन्दते—भ्वा आ)—फड़कना

अव्यय ।

अनु (यह द्वि वि के साथ आता है)
इव—यथा
इसके अर्थ हैं—१ सदृशता, २ हीनता ३ सामीप्य, ४ व्यापकता
अन्यत्र—और कहीं
अयि—सम्बोधनमें आता है
अलम् (गत्यर्थक धातुओंके साथ आता है)—अलं गम्—व्यस्त होना
इव—तरह (सदृशता दिखलाता है
(उपमान तथा उपमेय एक विभक्तिमें आते हैं)
अवरुह्य (अव्+रुह्)—उतरकर
रोदितुम् (रुद्+तुम्)—रोनेके लिये
विना—बिना (यह द्वि तृ या पं के साथ प्रयोग किया जाता है)
वोढुम् (वह्+तुम्)—उठानेके लिये
सपदि—तत्काल

पाठ १७

ऋकारान्त शब्द।

कन्यकायाः पिता नप्ता —कन्याका पिता नप्ता है।
पितरं मातरं च पूजय—पिता और माताकी पूजा करो।
पितृभ्यः स्वधा—पितरोंको स्वधा।
मातुः [illegible] —[illegible] नाती पिलाता है।
[illegible] —[illegible] बैठ जाते हैं।
[illegible] —[illegible] पहिनी हुई है।

सीता भर्त्रा लक्ष्मणेन च साकं वनं गता—सीता पति और लक्ष्मणके साथ वनको गई।

[illegible] —भाई, इन नातियों को पालो।
रामः स्वमातॄः प्रणनाम —रामने अपनी माताओंको प्रणाम किया।
इस पाठमें ऋकारान्त पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके शब्द दिये गए हैं।

कर्तृ—पुं।

	ए० व०।	द्वि० व०।	ब० व०।
प्र	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
द्वि	कर्तारम्	,,	कर्तॄन्
तृ	कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च	कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः
प	कर्तुः	,,	,,
ष	,,	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
स	कर्तरि	,,	कर्तृषु
सं	कर्तः	कर्तारौ	कर्तारः

कर्त्री—स्त्री ।

यह नदीके समान चलता है। ऋकारान्त विशेषणोंका स्त्रीलिङ्गका रूप ई के जोड़नेसे बनता है।

पितृ—पुं । मातृ—स्त्री ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	पिता	पितरौ	पितरः	माता	मातरौ	मातरः
द्वि	पितरम्	,,	पितॄन्	मातरम्	,,	मातॄः
तृ	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
च	पित्रे	,,	पितृभ्यः	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पं	पितुः	,,	,,	मातुः	,,	,,
ष	,,	पित्रोः	पितॄणाम्	,,	मात्रोः	मातॄणाम्
स	पितरि	,,	पितृषु	मातरि	,,	मातृषु
सं	पितः	पितरौ	पितरः	मातः	मातरौ	मातरः

इन रूपोंके विषयमें निम्नलिखित बातें ध्यानमें रक्खो —

१। पहिले पांच रूपोंमें ऋको आर् होता है, और प्रथमाके एक वचनमें स (प्रत्यय) के साथ आर्का र् निकल जाता है।

२। सम्बन्धबोधक पितृ, मातृ इत्यादि शब्दोंमें तथा नृ शब्दमें ऋको अर् होता है, आर् नहीं (नृशब्दके रूपोंको देखो)।

स्वसृ—स्त्री ।

स्वसा स्वसारौ स्वसारः

नप्तृ—पुं ।

नप्ता नप्तारौ नप्तारः

भर्तृ—पुं ।

भर्ता भर्तारौ भर्तारः

३। मातृ — माता (जननी), भर्तृ — पति (स्वामी), स्वसृ — बहिन (भगिनी), इन शब्दों के रूप [illegible] हैं।

मातृ — शब्द।

	एक व	द्वि व	ब व
प्र	माता	मातरौ	मातरः
द्वि	मातरम्	"	मातॄः
तृ	[illegible]	मातृभ्याम्	मातृभिः
च	[illegible]		[illegible]
प	[illegible]	"	"
ष		[illegible]	[illegible]
स	मातरि		मातृषु
सं	मातः	मातरौ	मातरः

३। [illegible] विभक्ति समान [illegible] हैं। [illegible] में [illegible] होता है।

४। पुत्रादि, कन्यादि — [illegible] इत्यादि शब्दों [illegible] आदि, फिर इत्यादि रूपान्तर समझना चाहिए।

[illegible] माता पितुः मम।
भ्रातुः पुत्रः भ्रातृव्यः भ्रात्रीयो वा।
स्वसुः पुत्रः स्वस्रीयः स्वसृजो वा।
[illegible] मातापितरौ च पितरौ।
भर्तुः शासने तिष्ठ।
[illegible] श्रेयः।
[illegible] पुत्रः मातुः [illegible]।
अयं देवो रघुपतिर्लिखति [illegible]
[illegible]।

अनभ्यन्तर आचारस्य वृत्तान्तस्य ।
भगवति वसुन्धरे ! साध्वी दुहितरमवेक्षस्व जानकीम् ।
वत्स राजाज्ञाम्भ्यपतङ्गलक्ष्यम् ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।
अथ भ्रातः अपि नृपा भवन्तीह समागमा ।

मातृ पितृ स्वसृ पुत्री मातुर्मातृ स्वसृ सुता ।
मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबन्धवः ॥
काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥
भद्रं कृतं कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे ।
दर्दुरा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि शोभनम् ॥
आपन्नामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥
का तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
कस्य त्वं वा कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः ॥

ब्राह्मण लोग प्रातःकाल वेदका पाठ करते हैं (पठ्)।
प्राय जहां लक्ष्मी रहती है वहां सरस्वती नहीं रहती।
शकुन्तलाको दो सखियां उसपर प्रेम करती थीं।
अब तुम राजाका अनादर (अवधीर्) मत करो।
धनिकोंको चाहिये कि वे दीनोंके रक्षक हों।
सेवकने कहा, ‘महाराज, जो आपकी आज्ञा”।
क्या ऐसा होगा कि मैं समझमें न आऊं ।

शब्दार्थाः ।

आपद् (स्त्री)—विपद्
ऋण (ऋणम्) न—ऋण
कलह (कलहः) पु—झगड़ा
कोकिल (कोकिलः) पु—कोयल
जलदागम (जलदागमः) पु—तत्पु० (जलद—पु तत्पु० जल ददाति यः मेघ+आगम पु आना)—मेघों का आना
जानकी (स्त्री)—जनक की लड़की, सीता
तत्त्व (तत्त्वम्) न यथार्थता (तत् सर्वना+त्व)
दर्दुर (दर्दुरः) पु—मेंढक
देव (देवः) पु—१ देवता, २ राजा, प्रभु
देवृ (पु)—देवर
ननान्दृ (स्त्री)—ननद
निद्रा (स्त्री)—नींद
नृ (पु)—मनुष्य
पितृ (पु)—पिता
बन्धु (पु)—सम्बन्धी
भर्तृ (पु)—पति
भ्रातृ (पु)—भाई
भ्रातृव्य (भ्रातृव्यः) पु—भतीजा
भ्रात्रीय (भ्रात्रीयः) पु—भतीजा
मद्गु (मद्गुः) पु—डोम्फ मद्गु
मातुल (मातुलः) पु—मामा
मातृ (स्त्री)—मा
मौन (मौनम्) न—चुप रहना
रघुपति (तत्पु० रघूणां पति—प) राम
लोक (लोकः) पु—लोग
वसुन्धरा (स्त्री)—पृथ्वी
विनोद (विनोदः) पु—दिल बहलाना
वृत्तान्त (वृत्तान्तः) पु—वृत्तान्त
व्यसन (व्यसनम्) न—बुरी आदत
शासन (शासनम्) न—आज्ञा
शास्त्र (शास्त्रम्) न—शास्त्र
सत्सङ्गति (स्त्री तत्पु० सत् पु सज्जन+सङ्गति—स्त्री सङ्ग) सज्जनों का साथ
सुनिश्चय (सुनिश्चयः) पु—खातिरजमा
सुत (सुतः) पु—पुत्र
सृष्टि (स्त्री)—सृष्टि
स्वस्रीय (स्वस्रीय)—पु (स्वसृ से)—भानजा
स्वस्रीय (स्वस्रीय) पु भाञा

विशेषण।

अनभ्यस्त—अपरिचित
अपहर्तृ—लेजानेवाला, दूर करने या हटानेवाला
अप्रिय (नञ्स०)—अप्रिय
अभिराम—सुन्दर
असम्भाव्य (नञ्स०) जिसका सम्भव नहीं
आद्य—प्रथम
उपदेष्टृ—उपदेश करनेवाला
कर्तृ—करनेवाला
गजस्थ (तत्पु०, गज पु हाथी + स्था से)—हाथी पर सवार, महावत
ज्येष्ठ—बड़ा
दातृ—दाता
दुर्लभ—दुर्लभ
द्रष्टृ—देखनेवाला
धीमत्—बुद्धिमान्
प्रणत (प्र+नम+त)—नम्र
भद्र—शुभ
यन्तृ—हाँकनेवाला, नायक
रक्षितृ—बचानेवाला
वक्तृ—बोलनेवाला
विचित्र—अद्भुत
विज्ञेय—(वि+ज्ञा+य) जानने योग्य
विरल—कम
श्रोतृ—सुननेवाला
श्लाघ्य—स्तुत्य
सम—बराबर
सृष्टृ—सृष्टिकर्ता

धातु।

अभि+पत् (अभिपतति) (भ्वा पर)—रोकना
अव+ईक्ष् (अवेक्षते) (भ्वा आ)—निरीक्षण करना
उत्+कण्ठ् (उत्कण्ठते) (भ्वा आ)—उत्सुक होना
नि+ली (निलीयते) (दि आ)—छिपना
व्यध् (विध्यति) (दि पर)—छेद करना (मछलीके साथ आता है।)

शब्दार्थ।

अतीव—अत्यन्त
पुनः पुनः—फिर फिर बार बार
सार्धम्—साथ (यह शब्द समास तृतीयाके साथ आता है)

स्वधा—यह शब्द पितृगणोंको प्रदान कालमें प्रयुक्त किया जाता है और चतुर्थीके साथ आता है।

पाठ १८।

इ, उ तथा ऋकारान्त नपुंसक शब्द।

पाण्डु मधु रोगं शमयति—पीला मधु रोगको शमित करता है।

इकारस्य तालु स्थानम्—इ चवर्ग, य् और श् का तालु स्थान है।

भ्रमरा मधुने अलुभ्यन्—भ्रमर मधुके लिये लुब्ध हुए।

बालोऽश्रूणि मुञ्चति नयनाभ्याम्—लड़का आंखोंसे आंसू छोड़ता है।

समुद्रो वारीणां निधिः—समुद्र जलोंका निधि (खजाना) है।

औषधं प्रायेण अस्वादु भवति (प्रायशस्स्वाद्वेव) स्वादु हितं च सुदुर्लभं वस्तु—औषध प्राय बेमज़ा होता है। स्वादु तथा हितकारी औषध निश्चयही दुर्लभ है।

इस पाठमें इकारान्त, उकारान्त, तथा ऋकारान्त नपुंसक शब्दोंके रूप दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं —

	वारि—न।			मधु—न।		
	ए० व०।	द्वि० व०।	ब० व०।	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वि०	,,	,,	,,	,,	,,	,,
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः

च	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
प	वारिणः	,,	,,	मधुनः	,,	,,
ष	,,	वारिणोः	वारीणाम्	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
स	वारिणि	,,	वारिषु	मधुनि	,,	मधुषु
सं	वारि वारे	वारिणी	वारीणि	मध मधु	मधुनी	मधूनि

	लघु—न।			कर्तृ—न।		
	एक व।	द्वि व।	बहु व।	एक व।	द्वि व।	बहु व।
प्र	लघु	लघुनी	लघूनि	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
द्वि	,,	,,	,,	,,	,,	,,
तृ	लघुना	लघुभ्याम्	लघुभिः	कर्तृणा कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः
च	लघुने लघवे	,,	लघुभ्यः	कर्तृणे कर्त्रे	,,	कर्तृभ्यः
प	लघुनः लघोः	,,	,,	कर्तृणः कर्तुः	,,	,,
ष	,, ,,	लघुनोः लघ्वोः	लघूनाम्	,,	कर्तृणोः कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
स	लघुनि लघौ	,,	लघुषु	कर्तृणि कर्तरि	,,	कर्तृषु
सं	लघो लघु	लघुनी	लघूनि	कर्तः कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि

ऊपर लिखे हुए रूपोंसे यह मालूम होगा कि इ, उ, तथा ऋकारान्त शब्दोंके नपुंसक लिङ्गके प्रथमा, सम्बोधन, तथा द्वितीयामें प्रत्ययोंका लोप हो जाता है, तृतीयासे लेकर सब स्वरादि विभक्तियोंमें न् लगता है, और सम्बोधनके एकवचनमें अन्तिम स्वरको विकल्पसे गुण होता है।

गुरु शब्दके स्त्रीलिङ्गकी प्रकृति गुरु या गुर्वी है और लघुके स्त्री में लघु या लघ्वी होता है।—

१। उकारान्त विशेषणोंके स्त्रीलिङ्गमें रूप विकल्पसे ई के जोड़नेसे बनते हैं।

गुरु—स्त्री, लघु—स्त्री, इत्यादि शब्दोंके रूप धेनुके समान होते हैं, और गुर्वी लघ्वी इत्यादिके नदीके समान होते हैं।

सच् तथा कप् क्र न इए हुआ । ड, ढ, तथा णकारान्त नपुं विशेष्य शब्दोंके इ, उ तथा ऋकारान्त नपुंसकलिङ्ग समान होते हैं, परन्तु इ, उ ऋ ए तथा मनसोंके रूपभेद हैं, और ष तथा मनसोंके द्विवचनमें, इ, उ तथा नकारान्त पुंलिङ्गके समान भी रूप होते हैं ।

श्रान्त महीपाल तव श्रमेण ।
त्रिशपतो देव ।
नास्ति भक्ष्यं ।
काय नव ममाप्नन तु गुर्वेव ।
पिपासा सद्य जल्पित निरयासे ॥ पीतोऽम्बुसाधना ।
सज्जना त्रिशशिरेन पश्य पश्य स मानव हरति ।
विनाया मम मानात् किञ्चि ॐ स्थापयितु त्रियते ।
श्रीप प्रकृतिमापद्यते न नाशो ।
प्रथमपरो । गण्डस्योपरि स्फोट ।
शुचि मना यद्यस्ति तीर्थेन किम ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम् ।
अथवा मदु यस्त शिशिरु मृदुनैवारभो प्रतापवान ।
गुणाङ्गनाया वास त्रिभुवनम् ।

दीनो वा राजहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरु ।
स नियमनुरक्तास्मि यथा सूर्य सुवर्चला ॥

---

* । सत्+शिव=सच्+शिव=सच्छिव या सच्शिव । सत्+श्लोक—सच्+श्लोक—सच्छ्लोक या सच्श्लोक । परन्तु वाक्+श्च्योतति—वाक्श्च्योतति—जब श् वर्गके प्रथम चार वर्णोंमें किसीके बाद रहता है और उसके बाद कोई स्वर अनुनासिक या अन्तःस्थ रहता है तो उसको छ होता है । वाक्श्च्योतति में यह नियम नहीं लगता । क्योंकि शकार बाद च है जो न स्वर न अनुनासिक, और न अन्तःस्थ है ।

† । मक्=खड़ि दूसरा=सर्व ।

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा ।
पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥

स्मृति (स्मृति स्त्री) श्रुतिके (श्रुति स्त्री) अर्थका अनुसरण करती है ।
उसने भूमिपर स्वर्गका सुख अनुभव किया ।
शिष्योंको चाहिये कि वे गुरुकी आज्ञा मानें ।
गङ्गाका जल सफेद है, और यमुनाका काला ।
वाह ! चन्द्रिकाकी सुन्दरता !
यदि मन शुद्ध है तो तपका क्या काम ?
हाय ! मैं धन्य हूं । यह शोकमें आ रहा है ।

शब्दार्थ ।

अङ्गना (स्त्री) -स्त्री	* जल्पित (जल्पितम्) न (जल्प +त)—अस्पष्ट बोलना
अश्रु (न)—आंसू	शिराग्र (शिराग्रम्) न तत्पु०, शिरा—स्त्री + अग्र—न) शिराका अग्रभाग
आगमन (आगमनम्) न—आना	तालु (न)—तालु
उद्यम (उद्यम) पु—उद्योग	तीर्थ (तीर्थम्) न पवित्र स्थान
कार्य (कार्यम्) न—काम	त्रपा (स्त्री)—लज्जा
गण्ड (गण्ड) पु—एक राग	दक्षिण (दक्षिणम्) न—दहिना भाग
चिन्ता (स्त्री)—चिन्ता	नारायण (नारायण) पु—नारायण
जनकात्मजा (तत्पु, जनक—पु०, + आत्मजा—(स्त्री) जनककी कन्या, सीता	

* संस्कृतमें बहुतसे भूतकृदन्त भाववाचक अर्थोंमें प्रयोग किये जाते हैं। इनमें से का यह भाव है।

निधि (पु)—खजाना
प्रकृति (स्त्री) स्वभाव स्वाभाविक स्थिति
प्रभाकर (प्रभाकर) पु (प्रभा० प्रभां करोति (प्रभाकर पु)— प्रकाशका कारक, सूर्य
प्राङ्गण (प्राङ्गणम्) न आँगन, {आँगन
प्रिया (स्त्री)—प्रिया
भवानी (भवस्य भवका स्त्री)—
भ्रमर (भ्रमर) पु — भौंरा
मधु (न)—शहद
मनोरथ (मनोरथ) पु — इच्छा
महीपाल (महीपालः) पु —पृथ्वीके रक्षक, राजा
मानस (मानसम्) न — मन
मारुति (पुं)—हनुमान
मृग (मृगः) पु —हरिण
रघुनन्दन (रघुनन्दन) पु (रघु० रघु पु रघुवंशीय नन्दन पु आनन्द देनेवाला, पुत्र)—रघु

त्रिलोकी—की त्रयाणां लोकानां समाहार, संसार
दीप (दीप) पु —दीया
दर्शन (दर्शन) न —सुख
दाम (दामन्) न —रस्सी माला
द्वार (न)—द्वार
निकेत (निकेतनम्) न (नि+कित+अ)—मकान
त्रिभुवन (त्रिभुवनम्) न —भुवन, जगत्
पृथिवी (स्त्री)—धरा
मनुज (मनुज) पु —मनुष्य
पुत्रवधू (स्त्री)—पुत्रकी स्त्री बहू
ध्यान (ध्यानम्) न —ध्यान
व्याघ्र (व्याघ्रः) पु —बाघ, चीता
स्मृति (स्त्री)—याददाश्त
मित्र (मित्र) पु —मित्र
वनालय (वनालयम्) न —निवास
हृदय (हृदयम्) न —हृदय

विशेषण।

अनुरक्त (अनु+रञ्ज्+त)— अनुरक्त
अपर (सरला) दूसरा
अल्पायु (अल्पायु०)—कमउम्र
गुप्त—छिपा

गौर—गोरा
दुर्लभ—दुराप्य
परम—बड़ा
पवित्र—पावन
पीत—(पी+क्त)—प्रसन्न

मञ्जु—मधुर
मृदु—कोमल
लघु—हलका
वल्गु—सुन्दर
सम—तुल्य (यह तृतीया वा षष्ठी के साथ आता है)
सुप्त (स्वप्+त)—सोया हुआ
स्वादु—स्वादयुक्त
हित—हितकारी
हीन—(हा+त)—छोड़ा हुआ, रहित।

धातु।

आ+पद् (आपद्यते) (दि आ)—पाना
आ+रभ् (आरभते) (भ्वा आ)—आरम्भ करना
मुञ्च् (मुञ्चति) (तु पर)—छोड़ना
वि+जि (विजयते) (भ्वा आ)*—जीतना, सर्वोत्तम होना
सिध् (सिध्यति) (दि पर)—सिद्ध होना
सूच् (सूचयति) (चु पर)—सूचना करना

अव्यय।

अथवा—वा (पक्षान्तरे—दूसरे पक्षमें)
इव—सदृश
ज्ञात्वा (ज्ञा+त्वा) जानकर
नु—परन्तु (भेद बताता है)
नित्यम्—सर्वदा, प्रतिदिन
निशम्य—(नि+शम्+य) सुनकर
पुरतः—सामने
हिंसितुम् (हिंस्+तुम्)—मार डालनेके लिये

---

* जब वि या परा पहिले आता है, जि आत्मनेपदी होता है।

पाठ १७ ।

नकारान्त शब्द ।

अपि कुशली भवान्—क्या आप प्रसन्न हैं ?

ग्राम काम एव (मा) तिरिक्तम्—काम ग्रामसे अधिक बड़ा है ।

केऽपि शशिनः कलङ्कं सारङ्गम् इति शङ्कन्ते—कोई लोग शङ्का करते हैं कि चन्द्रमाका कलङ्क मृग है ।

आत्मा त्वं गिरिजापते !—हे पार्वतीके पति, शिव, तुम (हमारे) आत्मा हो ।

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था—आत्मा एक नदी है, जिसमें संयम (इन्द्रियोंका जय) रूपी पवित्र तीर्थ (तट) है ।

ऋटुरषाणां मूर्धा—ऋ, टवर्ग, र, तथा ष का मूर्धा स्थान है ।

तव वचनं मे मर्माणि निकृन्तति—तुम्हारी बात मेरे मर्मोंको काटती है ।

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु—गुण प्रेममें रहते हैं, वस्तुओंमें नहीं ।

अत्यगतीय हरितो हरींश्च वर्तन्त एते वाजिनः—मघवन् ये घोड़े सूर्य तथा इन्द्रके घोड़ोंको भी लांघ कर (उनसे बढ़कर) हैं ।

यद्भावि तद्भवति नात्र विचारणीयम्—जो होनहार है वह होता है, इसमें कुछ विचार करने योग्य नहीं है ।

इस पाठमें नकारान्त शब्दोंके रूप दिये गये हैं । वे इस प्रकार हैं —

	राजन्—पु ।			नामन्—न ।	
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र	राजा	राजानौ	राजानः	नाम	नाम्नी—नामनी	नामानि
द्वि	राजानम्	,,	राज्ञः	?	■ ,,	,,

तृ	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
च	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः	नाम्ने		नामभ्यः
प	राज्ञः	,,	,,	नाम्नः	,,	,,
ष	,,	राज्ञोः	राज्ञाम्	,,	नाम्नोः	नाम्नाम्
स	राज्ञि—राजनि	,,	राजसु	नाम्नि नामनि	,,	नामसु
स	राजन्	राजानौ	राजानः	नाम नामन्	नाम्नी नामनी	नामानि

सीमन्—स्त्री । ब्रह्मन्—पु ।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
प्र	सीमा	सीमानौ	सीमानः	ब्रह्मा	ब्रह्माणौ	ब्रह्माणः
द्वि	सीमानम्	,,	सीम्नः	ब्रह्माणम्	,,	ब्रह्मणः
तृ	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभिः	ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः
च	सीम्ने	,,	सीमभ्यः	ब्रह्मणे	,,	ब्रह्मभ्यः
प	सीम्नः	,,	,,	ब्रह्मणः	,,	,,
ष	,,	सीम्नोः	सीम्नाम्	,,	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्
स	सीम्नि सीमनि	,,	सीमसु	ब्रह्मणि	ब्रह्मणोः	ब्रह्मसु
स	सीमन्	सीमानौ	सीमानः	ब्रह्मन्	ब्रह्माणौ	ब्रह्माणः

पन्थन्—पुं० । शर्मन्—न० ।

	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।	ए व	द्वि व	ब व
प्र	पन्था	पन्थानौ	पन्थानः	शर्म	शर्मणी	शर्माणि
द्वि	पन्थानम्	,,	पथः	,,	,,	,,
तृ	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	शर्मणा	शर्मभ्याम्	शर्मभिः

मूर्धन्—पु

	ए व	द्वि व	ब व
द्वि	मूर्धानम्	मूर्धानौ	मूर्ध्नः

7+6

	शशिन्—पु।			भाविन्—न।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व।	द्वि व।	ब व।
प्र	शशी	शशिनौ	शशिनः	भावि	भाविनी	भावीनि
द्वि	शशिनम्	,,	,,	,,	,,	,,
तृ	शशिना	शशिभ्याम्	शशिभिः	भाविना	भाविभ्याम्	भाविभिः
च	शशिने	,,	शशिभ्यः	भाविने	,,	भाविभ्यः
पं	शशिनः	,,	,,	भाविनः	,,	,,
ष	,,	शशिनोः	शशिनाम्	,,	भाविनोः	भाविनाम्
स	शशिनि	,,	शशिषु	भाविनि	,,	भाविषु
सं	हे शशिन्	हे शशिनौ	शशिनः	भावि भाविन्	भाविनी	भावीनि

ऊपर दिये हुए रूपोंसे यह मालूम पड़ेगा कि प्रत्यय तीन भागोंमें विभक्त हैं।

राजा, राजानौ, राजानः, राजानम्, राजानौ, सीमा सीमानौ, सीमानः, सीमानम्, सीमानौ, तथा नामानि को मिलाकर देखो। इन सभोंमें एकसा परिवर्तन हुआ है और ये अन्य रूपोंसे बिलकुल भिन्न हैं।

(अ) पहिले भाग पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके पहिले पांच प्रत्यय और नपुं [illegible] प्रथमा तथा द्वितीयाके बहुवचनके प्रत्यय आते हैं। इन प्रत्ययोंको सर्वनामस्थान कहते हैं।

१। सर्वनामस्थानके आगे रहनेपर इनमें समाप्त होनेवाले शब्दोंका उपान्त्य अक्षर दीर्घ होता है।

राजा, राजानौ, राजानः इत्यादि, तथा नामानि को मिलाकर देखो।

(ब) दूसरे भाग में पुं तथा स्त्री के द्वितीयाके बहुवचनसे लेकर सप्तमी प्रत्यय, तथा नपुं के प्रथमा तथा द्वितीयाके द्विवचनके प्रत्यय आते हैं। इन प्रत्ययोंके आगे रहनेपर पूर्वको—भ—कहते हैं।

राज्ञः, ब्रह्मणः, तथा यज्वनः, राज्ञि राजनि, नाम्नी—नामनी—को मिलाकर देखो।

राज्ञः—इसमें उपान्त्य अका लोप हुआ है। राजन्+अस्=राज्+न्+अस=राज्+ञ्+अस=राज्ञ्+अस्=राज्ञः। ब्रह्मण और यज्वन में उपान्त्य अका लोप नहीं हुआ है। इससे यह नियम निकलता है —

५। यदि अन्तके अन् के पहिले मकारान्त वा वकारान्त संयोग हो तो भी उपान्त्य अका लोप नहीं होता। यदि उस अन्‌के पहिले ऐसा संयोग न हो तो भी उपान्त्य अका लोप नित्य होता है, और सप्तमीके एकवचनमें तथा नपुं॰ के प्रथमा और द्वितीयाका द्विवचनमें विकल्पसे लोप होता है।

राजभ्याम्, राजसु, यज्वभ्याम्, यज्वसु, नाम, आदि—

(क) तीसरे वर्गमें पुंलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्गके तृतीयाके द्विवचनसे लेकर व्यञ्जनादि प्रत्यय, तथा नपुंसक लिङ्गके प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनके प्रत्यय आते हैं। इन प्रत्ययोंके पूर्व अङ्गको पद कहते हैं। ऊपर दिये हुए रूपोंको देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि पदके अन्तके न् का लोप हुआ है।

६। राजभ्याम्, राजभिः, राजसु, शशिभ्याम्, शशिषु, शशी, इत्यादि—

इन्नन्त शब्दोंका प्रथमाके एकवचनमें अन्तके नुका लोप होता है और उनके पूर्वके स्वरको दीर्घ होता है। पदके अन्तिम न् का लोप होता है।

राजपत्र, राजपुरुष, सुधन्वानम्—इन समासोंको देखो। इनके देखनेसे यह मालूम पड़ेगा कि नकारान्त शब्दोंके नुका लोप होता है यदि ये समासके उत्तरपद न हों।

राजन्‌का स्त्री रूप राज्ञी, और मालिन्‌का मालिनी है। इस प्रकार नकारान्त शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग ई के जोड़नेसे बनता है। जिस अङ्गको यह प्रत्यय लगाया जाता है, वह भ अङ्ग कहाता है।

---

[1] राम उमि मत सते।
कुमार [1] नाना[illegible]नाइयति।
[illegible] [1] कतवाति न भगानम्।
[illegible] मत। सकृथा [illegible] यत प्रविष्टपूर्व।
[illegible] साप [illegible] माक मद्यपानि [illegible]।
[illegible] मुखमनद।
[illegible] कन्द यत्रो का गता।
[illegible] धातिया मता।
[2] किमिश हि मधुराणां [illegible] माङ्गलीयाम।
[illegible] न नाति न हरि [illegible] सावपि मो ति।
[illegible] मुद्रि [illegible] त।
[illegible] मुरभिता [illegible] विद्वा।
मृदि [illegible]।

[illegible] ।
कुसुमाला [illegible] ।।
[3] [illegible] अत्याय्यहम्।
[illegible] कुठे [illegible] मोकवम।
कोऽतिभार [illegible] कि तूर [illegible]।
को [illegible] पर [illegible] ।।
माता यस्य [illegible] नास्ति भार्या [illegible]।
[illegible] तथा प्रहम ।।

१। [illegible] की सति के। कौतुक उसने [illegible]
२। [illegible] किमित्र—कोमली वस्तु।
३। [illegible] कब भी उक्ति है। [illegible] की [illegible]
[illegible]।

क्या यह प्रमृष्ण पवन है ? ('ऋषि' का प्रयोग करो)
ऋषि लोग हिमालयकी चोटीपर रहते हैं ।
तुमको सर्वदा सच बोलना चाहिए । सत्यमार्गसे कभी न हटो (चल्)
जो लोग अच्छी तरह (साधु) काम नहीं करते, दुःखी होते हैं ।
उपन प्रसुत हुए सदैव ।
बुद्धिमान् लोगोंको कुछ कठिन नहीं है ।
मैं चाहे जो हूँ, दरिद्र या नीच, गुण हमारा बल है ।
('यत्' या 'को' का प्रयोग करो)
हम लोग उसका प्रणाम करें, वह तुम्हारा गुरु है और हमारा भी ।

शब्दार्थ ।

अतिभार (अतिभार) पु —बड़ा बोझ
अध (अध) पु —उक्ष
अवताडन (अवताडनम्) न —पीटना
आकृति (स्त्री)—सुन्दरता
आत्मन (पु)—आत्मा
कपालमालन् (न तत्पु० कपाल—पु खोपड़ी, मालन्—न माला) —खोपड़ियोंकी माला ।
कर्मन (न)—काम ।
कलङ्क (कलङ्क) पु दाग, धब्बा
गिरिजा (स्त्री)—पार्वती
चक्रवर्तिन (पु)—सार्वभौम
चरण (चरण) पु —पैर
जन्मन् (न)—जन्म
तात (तात) पु पिता
नैत्र (ईक्षम्) न —भाग्य
नामन् (न)—नाम
पौरुष (पौरुषम) न —बल
प्रेमन् (पु)—प्रेम
ब्रह्मन (पु) ब्रह्मा , (न) परब्रह्म
मण्डन (मण्डनम्) न —भूषण
मर्मन (न)—मर्म
मूर्धन्—(पु)—सिर
यज्वन (पु)—यज्ञ करनेवाला
राजन (पु)—राजा
वर्मन (न)—१ कवच , २ क्षत्रियों के नामके आगे आता है
वस्तु (न)—वस्तु
वाजिन (पु)—घोड़ा
विश्वेश (विश्वेश) पु —परमेश

सैन्य (सैन्य) पु—सैन्य
शर्मन् (न) ब्राह्मणोंके नामके आगे आता है
शशिन् (पु)—चन्द्र
शूद्र (शूद्र) पु—शूद्र
संयम (संयम) पु—इन्द्रियोंका दम
सारङ्ग (सारङ्ग) पु—हरिण
सीमन् (स्त्री)—सीमा
सूत (सूत) पु—सारथि
स्थिति (स्त्री)—अवस्था
स्वामिन् (पु)—प्रभु
हरि (पु) १ इन्द्रका घोड़ा, २ विष्णु
हरित (पु)—सूर्यका घोड़ा

विशेषण।

अणु—सूक्ष्म
अतिरिक्त (अति + रिच् + त)——अधिक
अप्रियवादिन् (स्त्री अप्रियवादिनी)—कर्कश बोलनेवाला
अशुचि—अपवित्र
आयत्त—अधीन
आयुष्मत्—चिरञ्जीवी
इन्द्रशर्मन्—पु (बहु०, इन्द्र पु—इन्द्र, शर्मन्—न सुख, यह ब्राह्मणोंके नामके आगे लगाया जाता है)—इन्द्र नाम का ब्राह्मण
कुशलिन्—सुखी
चतुरशर्मन्—पु (बहु०, चतुर—पु चातुर्य शर्मन्—न सुख) चातुर्यसे उत्पन्न
ग्रन्थिन्—ग्रन्थोंमें पण्डित
गुप्तात्मक (गुप्त=गुप—आय [गोपायति] + त = रक्षित, आत्म—पु होकर, आत्मन् प आत्मा, क एक प्रत्यय है जो बहु० समासके अन्तमें लगाया जाता है) गुप्त और आत्मक
दुरात्मन् (बहु०)—दुष्ट
दूर—दूर
धारिन्—जो वस्तुओंको धारण कर सकता है
नैसर्गिक (स्त्री नैसर्गिकी)—स्वाभाविक
पक्षपातिन्—पक्षपाती
पर (सर्वना)—दूसरा
पुण्य—पवित्र

प्रशस्त—(प्र+शंस+त)—प्रशंसा किया गया
प्रियवादिन्—प्रिय बोलनेवाला
भाविन्—होनहार
भूत—सत्य
वर—अच्छा
विचारणीय—विचार करने योग्य
विभु—व्यापक, सर्वव्यापी
विषयिन्—विषयी
व्यवसायिन्—उद्योगी
समर्थ—शक्तिमान
सविद्य (बहु०, स—सह—साथ, विद्या ज्ञान)—पण्डित
सहाध्यायिन्—साथ पढ़नेवाला
सिद्ध (सिध्+त, स्त्री सिद्धा)—सिद्ध, निश्चित, प्रमाणित
सुरभि—सुगन्ध

धातु ।

आ+ह्वे (आह्वयति) (भ्वा पर)—पुकारना
नि+कृत् [कृन्त] (निकृन्तति) (तु पर)—काटना
पा (पाति) (अ पर)—रक्षा करना
ऊह् (ऊहते) (भ्वा आ)—ऊहा या सन्देह करना

अव्यय ।

प्रतीत्य (प्रति+इ+य)—लाँघ कर, पार कर
इव—सदृश (सम्भावना दिखाता है)
तथा—वैसा
नु—संशय दिखाता है
यथा—जैसे
यदि—यदि, अगर
स्वयम्—खुद
सर्वथा—सब प्रकारसे

पाठ २० ।

कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग ।

देवदत्तः पत्रकं लिखति—देवदत्त पुस्तक लिखता है ।

देवदत्तेन पत्रकं लिख्यते—देवदत्तसे पुस्तक लिखी जाती है ।

भद्र ! गच्छ त्वमधुना—भद्र ! अब तू जा तू ।

भद्र ! गम्यतामधुना त्वया—भद्र ! अब तुझसे जाया जाता है ।

सखे ! इहागच्छ (आ) आसने (भव) उपविश—मित्र यहां आओ, यहां आओ, आसनपर बैठो ।

सखे ! इहागम्यताम् त्वया (आ) आसने (भव) उपविश्यतां त्वया । मित्र आपसे ! यहां यहां आया जाय, आसनपर बैठा जाय ।

नृपाः पण्डितैः सह भाषन्ते—राजा लोग पण्डितोंके साथ बोलते हैं ।

नृपैः पण्डितैः सह भाष्यते—राजाओंसे पण्डितोंके साथ बोला जाता है ।

बुधाः कस्मात्क्रोधम्—पण्डितोंने क्रोध किया ।

बुधैः कस्मात्क्रुध्यत—पण्डितोंसे क्रोध किया गया ।

सज्जना न कदाप्यनृतं वदन्ति—साधु लोग कभी झूठ नहीं बोलते ।

सज्जनैः कदाप्यनृतं नोद्यते—साधु लोगोंसे कभी झूठ नहीं बोला जाता ।

तूष्णीं तिष्ठतु भवान्—आप चुप बैठें ।

तूष्णीं स्थीयतां भवता—आपसे चुप बैठा जाय ।

वनदेवता नृपाणां कीर्ति गायन्ति—वनदेवताएं राजाओंका यश गाती हैं ।

वनदेवताभिर्नृपाणां कीर्तिर्गीयते—वन देवताओंसे राजाओंका यश गाया जाता है ।

विजयतां भवान्—आप जीतें ।

विजीयतां भवता—आपसे जीता जाय ।

राज्ञां यशः स्तूयताम्—राजाओंके यशकी स्तुति की जाय ।

यद्भवता इ (ते) ष्यते तत्सर्वं क्रियते मया—जो आपसे चाहा जाता है वह सब मुझसे किया जाता है ।

तद्धि (तत्+हि) काननमतीव रमणीयम्—सचमुच वह जंगल बहुत सुन्दर है ।

इस पाठमें कर्मणि प्रयोग तथा भावे प्रयोगका वर्णन किया गया है । कर्तरि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्ताका बोध कराते हैं, कर्ताको आगे तृतीया छोड़कर कर्ताकी पुनरुक्ति करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती । इस लिये कर्ता प्रथमान्त रहता है । कर्मणि प्रयोगमें धातुके रूप ही कर्मका बोध कराते हैं । कर्मको आगे द्वितीया छोड़कर कर्म बतानेकी आवश्यकता नहीं रहती, इस लिये कर्म प्रथमान्त रहता है । देवदत्तेन पुस्तकं लिख्यते—में लिख्यते कर्म है अर्थात् कर्मका बोध कराता है । इसलिये कर्म पुस्तकं प्रथमामें प्रयोग किया गया । 'लिख्यते' से कर्ताका बोध नहीं होता इस लिये कर्ता देवदत्त तृतीयामें प्रयोग किया गया है । देवदत्तः पुस्तकं लिखति—में कर्म अनभिहित है, अर्थात् लिखति इस रूपसे इसका बोध नहीं होता, जो कर्तरि है, इसलिये 'पुस्तक' का द्वितीया में प्रयोग हुआ ।

सकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग होता है, क्योंकि उनको कर्म होता है, अकर्मक धातुओंका कर्मणि प्रयोग नहीं होता, क्योंकि उनको कर्म नहीं होता । परन्तु उनका भावे प्रयोग होता है अर्थात् उनके धातुका रूप क्रियाका बोध कराता है । सुखे तिष्ठामि—कर्तरि प्रयोग है, सुखे स्थीयते मया—भावे प्रयोग है । सकर्मक तथा अकर्मक धातुओंका कर्तरि प्रयोग होता है । भावे प्रयोग प्राय केवल प्रथम पुरुषके एक वचनमें प्रयोग किया जाता है ।

नी—कर्मणि प्रयोगके रूप।

	वर्तमान, लट्।			अनद्यतन भूत, लङ्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	नीयते	नीयेते	नीयन्ते	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म पु	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे	अनीयथाः	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
उ पु	नीये	नीयावहे	नीयामहे	अनीये	अनीयावहि	अनीयामहि

	आज्ञार्थ—लोट्।			विध्यर्थ—लिङ्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
म पु	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्	नीयेथाः	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
उ पु	नीयै	नीयावहै	नीयामहै	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि

	चि—वर्तमान।			स्तु—आज्ञा।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चीयते	चीयेते	चीयन्ते	स्तूयताम्	स्तूयेताम्	स्तूयन्ताम्

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके रूप धातुको य लगाकर उसके आगे आत्मने पद प्रत्यय जोड़नेसे बनते हैं। य के पूर्व कोई विकरण नहीं लगता।

कर्मणि तथा भावे प्रयोगमें यके पहिले अधोलिखित परिवर्तन होता है —

चीयते, स्तूयते—

१। अन्तिम इ तथा उ को दीर्घ होता है।

स्थीयते, दीयते, पीयते—

२। कुछ आकारान्त धातुओंके आको ई होता है। ये धातु ये हैं— स्था, दा, धा, मा, गा, पा (पीना), हा (छोड़ना), तथा सा।

गै—गीयते, सो—सीयते—

३। ए, ऐ, ओ, तथा औकारान्त धातुओंको आकारान्त समझना चाहिये।

कृ—हृ—क्रियते, ह्रियते—

४। ऋकारान्त धातुओंके ऋ को रि होता है।

यज्—इज्यते, वच्—उच्यते, वद्—उद्यते, ग्रह्—गृह्यते, ह्वे—हू—हूयते, ह्वे=ह् व् ए=ह् उ ए=हु उ=हु=हू (वको उ हुआ, अन्तिम स्वरका लोप हुआ और प्रथम नियमानुसार उको दीर्घ हुआ)।

५। कुछ धातुओंके य्, व्, र्, तथा ल्को इ, उ, ऋ, तथा लृ होते हैं इनको सम्प्रसारण कहते हैं।

६। वह्—उ अह्—उह्—सम्प्रसारणके आगे रहनेवाले स्वरका लोप होता है।

७। अञ्ज्—अज्यते—कुछ धातुओंके अनुनासिकका लोप होता है, पर नन्द्का नन्द्यते होता है।

अर्यते, स्मर्यते—

८। ऋ धातुको तथा संयोगके अन्तमें रहनेवाले ऋको गुण होता है।

तीर्यते, कीर्यते, पूर्यते—

९। जब ॠको गुण या वृद्धि नहीं होती और वह ओष्ठ्यस्थानीय वर्णसे बाद होता है तो उसका इर् तथा उर् होता है। किसी व्यञ्जनके आगे रहने पर इर् तथा उर्‌को उनका दीर्घ होता है।

चुर्—चोर्यते, तड्—ताड्यते—

१०। चुरादिगणके धातुओंमें णिकरणके पहिले होनेवाले गुण या वृद्धि आदेश ज्योंके त्यों रहते हैं।

कारयति=वह कराता है, कार्यते=उससे कराया जाता है।

११। प्रेरणार्थक बनानेके लिये धातुओंके आगे अय लगाया जाता

है। सकर्मक धातुओंके कर्मणि रूप से कर्तरि का परिवर्तन होता है। ये सब प्रेरणार्थकमें भी होते हैं।

मूल धातुओंके समान प्रेरणार्थकमें भी सब लकारोंमें रूप होते हैं।

प्रेरणार्थकके कर्मणि प्रयोग तथा भाव प्रयोगके रूप मूल के कर्मणि तथा भाव प्रयोगके रूपोंके समान होते हैं।

१२। पाठ + इति = पाठयति या पाठयति, सन्धि विषय = सन्धिविषय या सन्धिविषय — इन शब्दोंमें प्रथम पद अकारान्त होने से, सो उसकी इस प्रकार सन्धि दो विकल्पसे होती है।

इत्यादि सूत्र।

शिष्य कृपया शिक्षय।

भो! भगवन्! किमिति न पाठयसे।

मम राजा कारागृहे बन्धयत।

धर्म हि बलम् गुरोर्निबोधत।

सन्ध्या आकाशमुपैति।

सूर्य इव प्रतिभासयति प्रतिभाषते।

धर्म तव! अतिदर्शयतस्तथा च।

सेनापतिरानुयात राजा।

न मर्षयिष्यति यावत् हि सः।

कुमार! तथा प्रकाशय यथा लोकास्त्वमेव सिद्धेयानितुं विषय न विक्रीणीत राजमार्गेषु पाषाणम्।

धियो यावदेकोऽपि शिशुभावन् गुरु सुकृतम्।

मा बाला परजनैर्निन्दितम्।

आयुष्मान् अत्र आगच्छति बालस्य विशेषोऽभिज्ञाने।

भरत प्रकृति कार्येषु विकृतिर्विदित्वा बुधे।

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुनागमनं तु किम् ।
सशोक इव कस्मात् त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥
किं पुष्पैः किं फलैस्तस्य करीरस्य दुरात्मनः ।
येन वृद्धिं समासाद्य न कृतः पत्रसंग्रहः ॥
प्रत्यहं लयमायाति प्रत्यहं जायते पुनः ।
अद्यापि हतपापाया नान्तोऽस्या अवसानतः ॥
काम क्रोध मोह लोभ पञ्चात्मानं भावय कोऽहम् ।
आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥

उस अधिकारिकी (अधिकारिन्) प्रजाओंसे स्तुति की जाती है ।
देखो, पेड़ लताओंसे घेरे जाते हैं (परिवृ) ।
हम लोग प्रतिदिन दुष्टोंसे जलाये जाते हैं ।
लड़कोंसे पिता तथा माताकी सेवा की जानी चाहिए ।
पृथ्वी ब्रह्मासे उत्पन्न की गयी है ।
अब भी आप चुप क्यों नहीं होते ?
जबतक एक भी रोग है, तबतक शरीरको सुख नहीं ।
मैं जानता हूँ (अव+गम्) कि लोभ उससे अभीतक छोड़ा नहीं गया है ।

शब्दार्थ

अभिवादन (अभिवादनम्) न—प्रणाम करना
अस्त्र (अस्त्रम्) न—अस्त्र [यन्त्र]
अश्वमेध (अश्वमेधः) पु—अश्वमेध
आगमन (आगमनम्) न—आना
करीर (करीर) पु—एक काँटेदार पेड़, जिसमें पत्ते नहीं होते
काम (काम) पु—इच्छा
क्रतु (पु)—यज्ञ
घात (घात) पु—नाश
जीवित (जीवितम्) न—जीवन
तृण (न)—घास
पत्र (पत्रम्) न—पत्ता
प्रकृति (स्त्री)—स्वाभाविक

मारउ (मारय)व —मारो
माह (माह) व —मुझ
रउ (रघु) पुं —रव
राम (राम) पु [illegible]
रिउ (रिपु)—शत्रु
लउ (लघु) पु —[illegible]
दसरहसुआ (स्त्री तत्स०, दसरह + सुआ —स्त्री)—दशरथ की
विश्वास (स्त्री)—[illegible] [illegible], [illegible]
[illegible]
सिव (शिव) पु —प्राणवल

विवय (विषय) पु —[illegible]
([illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible])
मुत्ति (मुक्ति)—[illegible]
आश्रमुदगा ([illegible]) (पु०,
तत्स० आश्र—पु + अनुदगा
—पु —[illegible] [illegible])—
[illegible] [illegible] [illegible]।
धम्मिग (स्त्री)—[illegible]
मनुअ (मानव) पु —[illegible] [illegible]
मज्जन (मज्जन) प (स्नान [illegible])
—[illegible]
सनाथि (प)—[illegible]

विवरण ।

[illegible] ([illegible])—[illegible]
[illegible] ([illegible] + त)—[illegible]
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
—[illegible]
नरकनिग्गह (नरक—पु + निग्गह
नि + ग्रह [गृह्णाति स] + त=
छिपा हुआ) नरक में डूबा
हुआ
परवस (स्त्री —परवशो)—पराधीन
पुच्छ (पच्छ [पृच्छ] [नि पा]+
त—पूछा गया
मुक्क (मुच + त) -मुक्त

[illegible]—[illegible] [illegible]
[illegible] ([illegible] + त) [illegible]
[illegible] ([illegible] + [illegible] + त)—[illegible]
[illegible] [illegible]
पतोत (बहु० [illegible]
[illegible]—[illegible], यह [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] है,
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] है।
[illegible] (स्त्री —[illegible] बहु०,
[illegible]—([illegible] + त) + [illegible])
[illegible] [illegible]।

■ [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible] जाता है।

धातु।

अनु + इष् (अन्विष्यति) (दि पर) —खोजना
अव + हृ (अवहरति) (भ्वा पर) —ले जाना
आ + क्षिप् (आक्षिपति) (तु पर) —फेंकना
आ + या (आयाति—अ पर)—आना
आस् (कर्मणि प्र आस्यते) बैठना
आ + ह्वे (आह्वयति—भ्वा पर) —पुकारना
उप + आ + लभ् (उपालभते) (भ्वा पर)—निन्दा करना
कृ (कर्म प्र क्रियते)—करना
गै (गायति) (भ्वा पर)—गाना
जन् (जायते) (दि आ)—उत्पन्न होना
धृ (ध्रियते) (दि आ)—होना
नि + धा (कर्म प्र निधीयते)—रखना

पच् (पचति—ते) (भ्वा उभ) —पकाना
परि + हृ (कर्म प्र परिह्रियते)—छोड़ना
प्रति + बन्ध् (कर्म प्र प्रतिबध्यते) —रोकना
प्र + यत् (प्रयतते) (भ्वा आ)—यत्न करना
भावय (प्रेर भू)—सोचना
मृग् (मृग्यति, मृगयते) (दि पर, चु आ)—खोजना
लिख् (तु पर)—लिखना
वच् (कर्म प्र उच्यते)—बोलना
वि + कृष् (विकर्षति) (भ्वा पर) —खींचना
सं + हृ (संहरति) (भ्वा पर)—बटोरना
स्तु (कर्म प्र स्तूयते) —स्तुति करना

अव्यय।

किमिति—क्यों?
जोषम्—चुप
तूष्णीम्—चुप

प्रत्यहम्[1] (अव्य प्रति + अहन् से बना)—प्रतिदिन
समासाद्य (प्रेर सम् + आ + सद् + य)—पाकर

---

१ प्रत्यह दूसरा रूप

पाठ २१।

वर्तमान कृदन्त।

हरिं पश्यन् मुच्यते—हरिको देखता हुआ मुक्त होता है।

अवसरं प्रतीक्षमाणो वर्तते—वह समयकी प्रतीक्षा कर रहा है, बाट जोह रहा है।

लङ्कायां पशव इव हताः पश्यतो रामस्य—रामके देखते २ लङ्कावासी पशुओंकी तरह मारे गये। (पश्यतः रामस्य—अनादरषष्ठी है।)

दिनेषु गच्छत्सु सा कान्तिमपुष्यत्—ज्यों २ दिन बीतने लगे वह कान्तिको बढ़ाने लगी (दिनेषु गच्छत्सु—सतिसप्तमी है)।

पत्तने विद्यमाने ग्रामे रत्नपरीक्षा—नगरके रहनेपर गाँवमें रत्नकी परीक्षा (पत्तने विद्यमाने—सतिसप्तमी है)।

सा राज्ञी सखीभिः पर्युपास्यमाना तिष्ठति—वह रानी भी सखियोंसे सेवित होती हुई बैठी है।

अभ्युन्नतिमिच्छद्भिरुद्यमः सर्वथा सेव्यः—उन्नति चाहनेवालोंको सब प्रकारसे उद्योगका सेवन करना चाहिये।

चिन्तयन्नपि अहं नास्य कारणमवगच्छामि—सोचते हुए भी मैं इसका कारण नहीं समझता।

परस्मैपदी धातुओंका वर्तमान कृदन्त इस प्रकार बनता है —

भ्वादि—भू—भवत्, भू+अ=भो+अ=भव, भव+त्=भवत्, दिवादि—पुष्—पुष्यत्, पुष्+य=पुष्य, पुष्य+त्=पुष्यत्, तुदादि—विश—विशत्, विश+अ=विश, विश+त्=विशत्, चुरादि—चुर्—चोरयत्, चुर्+अय=चोर्+अय=चोरय, चोरय+त्=चोरयत्

अदादि—अस—सत्, अस + अत = स (वर्तमानके प्र पु के ब व की प्रकृति) + अत = सत्, अदादि—या—यात्, या + अत् = या (वर्त प्र पु ब व की प्रकृति) + अत = यात्।

धातुको विकरण लगाओ यदि प्रकृति अकारान्त हो तो त लगाओ, और यदि वह अकारान्त न हो तो वर्तमानके प्रथमपुरुषके बहुवचनकी जो प्रकृति होती है उसमें अत् लगाओ।

आत्मनेपदी धातुओंके वर्तमान कृदन्तके रूप इस प्रकार बनते हैं —

भ्वादि—वृत—वर्तमान, वृत + अ = वर्त + अ = वर्त, वर्त + मान = वर्तमान, भ्वादि—सेव—सेवमान, सेव + अ = सेव, सेव + मान = सेवमान, दिवादि—विद्—विद्यमान, विद् + य = विद्य विद्य + मान = विद्यमान, मृ—म्रियमाण, मृ + अ = म्रिय + अ = म्रिय, म्रिय + मान = म्रियमाण, चुरादि—आमन्त्र्—आमन्त्रयमाण, आमन्त्र् + अय = आमन्त्रय, = आमन्त्रय + मान = आमन्त्रयमाण।

वर्तमान यह शब्द स्वयं वर्तमान कृदन्त है और अब यह सिखाता है कि वृत् इत्यादि धातुओंसे वर्तमान कृदन्त किस प्रकार बनाये जाते हैं।

धातुको विकरण लगाओ। यदि प्रकृति अकारान्त हो तो मान लगाओ, और यदि वह अकारान्त न होतो वर्तमानके प्र पु के बहुवचन में जो प्रकृति रहती है उसे आन लगाओ। इनके उदाहरण आगे आवेंगे। (२५ वां पाठ कर्मणि वर्त० कृ० देखो।)

भू—भूयमान	चुर्—चोर्यमाण
कृ—क्रियमाण	तड—ताड्यमान।
पुष—पुष्यमाण	कृ (प्रेर)—कार्यमाण

कर्मणि तथा भावे प्रयोगके वर्तमान कृदन्त कर्मणि तथा भावे प्रयोगकी प्रकृतिको मान लगानेसे बनते हैं।

	गच्छत्—पुं।			गच्छत्—न।		
	एक	द्वि	बहु	एक	द्वि	बहु
प्र	गच्छन्	गच्छन्तौ	गच्छन्तः	गच्छत्	गच्छन्ती	गच्छन्ति
द्वि	गच्छन्तम्	,,	गच्छतः	,,	,,	,,
तृ	गच्छता	गच्छद्भ्याम्	गच्छद्भिः	शेष रूप पुंलिङ्गके समान।		
च	गच्छते	,,	गच्छद्भ्यः			
पं	गच्छतः	,,	,,			
ष	,,	गच्छतोः	गच्छताम्			
स	गच्छति	,,	गच्छत्सु			
सं	गच्छन्	गच्छन्तौ	गच्छन्तः			

ये रूप भवत् या वत् में समाप्त होनेवाले शब्दोंके समान होते हैं। केवल पुंलिङ्गके प्रथमाके एकवचनमें भेद है। उदाहरण ध्यान दो।

भ्वादि गच्छत्—न्ती—गच्छन्ती।
दिवादि, कुप्यत्—न्ती—कुप्यन्ती।
चुरादि, चालयत्—न्ती—चालयन्ती।
प्रेर भावयत्—न्ती—भावयन्ती।
तुदादि, क्षिपत्—न्ती—क्षिपन्ती ती।
अदादि, यात्—ती—याती न्ती।

वर्तमान कृदन्तके स्त्रीलिङ्गके रूप ई को जोड़नेसे बनते हैं। भ्वादि, दिवादि, चुरादि, तथा प्रेरणार्थक धातुके रूपमें इस ईके पूर्व न् लगता है और तुदादिगणके तथा अदादि आकारान्त धातुओंमें न् विकल्पसे लगता है।

गच्छत् नपु प्र, द्वि, सं—गच्छत् गच्छती-न्ती गच्छन्ति
यात् [redacted], ,, ,,—यात् याती-न्ती यान्ति

नपुंसकके [redacted], द्वि तथा सम्बोधनके द्विवचनके रूप स्त्रीलिङ्गकी प्रकृतिके समान होते हैं।

वसमाने—स्त्री—वसमाना—आत्मनेपदके वर्तमान कृदन्तके स्त्रीलिङ्ग-के रूप आप पाठमेंसे बनते हैं।

तस्य पश्यत एव हता पश्यतो राक्षसस्य—यह अनादरषष्ठी या भाव षष्ठी का उदाहरण है। इसका अर्थ है— राक्षसके देखते२ 'पश्यतो राक्षसस्य' का अर्थ—'राक्षसस्य पश्यतः सतः' है। यह भाव षष्ठी इस लिये कहाती है कि इसका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये सत्‌का षष्ठीका एकवचन सतः— प्रयोग किया जाता है।

सत्सु विद्यमाने और निदेषु गच्छत्सु—सतिसप्तमीका उदाहरण है। इनका अर्थ है—सत्में विद्यमान सति, निदेष गच्छत्सु सत्सु।

पश्य पितृव्य प्रहरन् कथं न लज्जसे।
कथमेतत् प्रलपता च सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया।
अपि कुशलं तातस्य? क्षेममस्माकम्। कुत्रास्ति च कुशलम्?
इदानीं विरमतो भवत्कथनात्।
अद्य यदा कोटिमधिरोहति प्रमोदः पौराणाम्।
नाद्य कुलस्याभ्युदय प्रजानाम्।
उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यो भूतिमिच्छता।
समे शिवो दण्ड कथं प्रकाशयति।
यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवति।
सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।
सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः
कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा।
त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।

[illegible] ।
[illegible] ३
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible] ॥

— —

क्या [illegible] कि मैं [illegible] [1]
को [illegible] अपना [illegible] नहीं [illegible] है ।
इन [illegible] [illegible] किया ।
इस [illegible] का काम है ?
राम ने कहा, 'रानी, क्या यह [illegible] जा सकता है ?
क्या तुमको झूठ कहना अच्छा नहीं लगता ?
तब यह राजा था अभी तक दूसरोंको नहीं सताता था ।
([illegible]) ।
यद्यपि गुरु [illegible] था तथापि शिष्यने अपराध किया गया ।
([illegible]) ।

[illegible] ।

अङ्ग (अङ्गम्) न — शरीर	अवसर (अवसर) पु — योग्य समय
अभ्युदय (अभ्युदय) पु — उन्नति	आयास (आयासम्) न — दुःख
अशुभ (अशुभम्) न — अशुभ	कविताशाखा (कमधा०, कविता—

१। [illegible] यद्यपि [illegible] है ।
[illegible]

स्त्री, शाखा स्त्री)—कविता—की शाखा

कान्ति (स्त्री)—सुन्दरता

कारण (कारणम्) न—हेतु

कुशल (कुशलम्) न—सुख

कोटि (स्त्री और कोटी)—चरम सीमा

कौमुदी (स्त्री)—चाँदनी

क्षीर (क्षीरम्) न—दूध

क्षेम (क्षेम—मम) पु, न—कुशल

गुण (गुण) पु गुण, उपयोग

चन्द्रकान्त (चन्द्रकान्त) पु—एक मणि, जो चन्द्रकिरणोंके सम्पर्कसे पसीजता है।

तमिस्रा (स्त्री)—रात

तातपाद (तातपाद) पु (तात, पु पिता,+पाद—पु चरण, यह एक आदरवाचक शब्द है, जो बहुवचनमें प्रयोग किया जाता है)—पूज्य पिता।

तापस (तापस) पु—तपस्वी

दर्शन (दर्शनम्) न—देखना

दार (दारा—पु यह सर्वदा बहुवचन में प्रयोग किया जाता है)—स्त्री

द्विज (द्विज) पु—द्विज

दृष्टि (स्त्री)—दृष्टि, नजर

देवी (स्त्री)—रानी

नन्द (नन्द) पु—पाटलिपुत्रका राजा। नन्द नौ भाई थे

नाथ (नाथ) पु—प्रभु

पतङ्ग (पतङ्ग) पु—सूर्य

परीक्षा (स्त्री)—परीक्षा

पशु (पु)—पशु [कमल

पुण्डरीक (पुण्डरीकम्) न—सफेद

पुण्य (पुण्यम्) न—पुण्य

पौर (पौर) पु—नगरवासी

प्रमोद (प्रकृष्टवाची मोद, प्रादि समा०, प्र=बड़ा+मोद—पु=हर्ष)—पु बड़ा हर्ष

भूति (स्त्री)—ऐश्वर्य

भोजन (भोजनम्) न—भोजन

राक्षस (राक्षस) पु—नन्द राजाका मन्त्री

वह्नि (पु)—अग्नि

वाल्मीकिकोकिल (वाल्मीकिकोकिल) पु वाल्मीकि मुनि +कोकिल पु कोयल—वाल्मीकिरूपी कोयल

विधि (पु)—परमेश्वर, ब्रह्मा, दैव

शिशिर, (शिशिर रम) पु, न—जाड़ेका ऋतु, माघ तथा फागुन मास

सखी (स्त्री) सहेली
मद्य (मद्य) न शराब
मण्डप (मण्डप) न बिछावा
मकान (मकान) न घर
दारा (स) पत्नी
हिमालय (पु) पहाड़, हिम, म हिम, हि० ठंडा + आलय पु जिसका घर जिसमें ठिकाना ठंड है, पहाड़

विशेषण।

अपकारिन् — अपकार या बुराई करनेवाला
उपकारिन् — भलाई करनेवाला
अपथ्य — अनारोग्यद
विद्यमान (कर्म बताता है विद् ध)—जिसकी विद्या की जाती है
शीत (श्यै + त या + क)—ठंडा हुआ
नूतन नया, नूत—नया
पर (प्रथम)—१ दूसरा २ बड़ा
अधीयमान (शु० पढ़ा जाता हुआ,
पर्याप्त (परि + अव + आप् या प्राप्त हुए) सिद्धि हासिल हुआ
प्रत्युत्पन्न (प्रति + उत् + पद्—पैदा या का अर्थ में) बाद में पैदा हुआ अथवा देखता हुआ
बहु—बहुत
भवत् (अथवा भवान् पुरुष) आप
सर्व—सब
गत (गम—जा का अर्थ में) बीता हुआ, गया
आयु—अवस्था
सेव्य (सेव् + य)—सेवा योग्य

धातु।

अधि + रुह् (अधिरोहति) (भ्वा पर)—चढ़ना
अनु + स्था (तिष्ठ्) (तिष्ठति) (भ्वा आ)—उद्यत होना
कृष् (कर्षति) (भ्वा पर)—हल चलाना
क्लृप् (कल्पते (भ्वा आ)—यह चतुर्थी के साथ आता है)—समर्थ होना।

द्रु (द्रवति) (भ्वा पर)—गलना, पिघलना

प्र+लप् (प्रलपति) (भ्वा पर)—अस्पष्ट बोलना

लस्ज् (लज्जते) (तु आ)—लजाना

वि+कस् (विकसति) (भ्वा पर)—खिलना

अव्यय ।

एवम्—ऐसा

कथमपि—किसी प्रकार, बड़ी कठिनतासे

निर्घृणम् (बहु०, निर्=निकल गया हुआ+घृणा स्त्री दया, निर्गता घृणा यस्मात् कर्मणो यथा स्यात्तथा)—जिससे दया निकल गयी है, निर्दय

मधुराक्षरम्—(बहु०, मधुर विशे० मीठा+अक्षर—न ऋषु, मधुराणि अक्षराणि यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा)—मीठे शब्दोंमें

विशेषतः—अधिक

सहस्रधा—हजार प्रकारसे

पाठ २२ ।

वस् तथा ईयस् में अन्त होनेवाले शब्द ।

विद्वान् लिखति=विद्वाँल्लिखति—पण्डित लिखता है ।

न किमपि विदुषामगम्यम्—पण्डितोंको कोई वस्तु अगम्य नहीं है ।

मतिरेव बलाद् गरीयसी—बुद्धि ही बलसे बड़ी है ।

*द्वारकामध्युषुषो कृष्णस्य या सम्पदासीत् मनसाऽप्यसुलभा —द्वारकामें

१। मधुर आदि एकवचनान्त विशेषणका रूप क्रियाविशेषणकी तरह प्रयोग किया जाता है। विग्रह दिखानेमें यस्मात् कर्मणो यथा स्यात्तथा, या यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा कहा जाता है, जिससे इसका क्रियाके साथ सम्बन्ध मालूम होता है।

* उप, अनु, अधि, आङ् पूर्वक वस् धातुका आधार कर्म होता है।

[illegible] लोगोंकी जो सम्पत्तियां थीं वे मनको भी अगम्य हैं (अर्थात् उनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती) (जन बहुवचन आये हैं)।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यः।—विद्वान् सब ठौर पूजित होता है।

विद्वद्भिरत्र निर्णयः कार्यः—इस विषयमें पण्डितोंसे निर्णय किया जाना चाहिये।

इस पाठमें वस् तथा ईयसन्त शब्द दिये गये हैं।

विद्वस्—पुं। सेदिवस्—पु०।

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः	सेदिवान्	सेदिवांसौ	सेदिवांसः
द्वि०	विद्वांसम्	,,	विदुषः	सेदिवांसम्	,,	सेदुषः
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	सेदुषा	सेदिवद्भ्याम्	सेदिवद्भिः
च०	विदुषे	,,	विद्वद्भ्यः	सेदुषे	,,	सेदिवद्भ्यः
प०	विदुषः	,,	,,	सेदुषः	,,	,,
ष०		विदुषोः	विदुषाम्	,,	सेदुषोः	सेदुषाम्
स०	विदुषि	,,	विद्वत्सु	सेदुषि	,,	सेदिवत्सु
स०	विद्वन्	विद्वांसौ	विद्वांसः	सेदिवन्	सेदिवांसौ	सेदिवांसः

विद्वस्—न० सेदिवस्—न०।

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०, द्वि०, स०	विद्वत्	विदुषी	विद्वांसि	सेदिवत्	सेदुषी	सेदिवांसि

शेष पु० के समान। शेष पु० के समान।

विदुषी स्त्री (नदीके समान) सेदुषी स्त्री (नदीके समान)

श्रेयस्—पु०।

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र०	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
द्वि०	श्रेयांसम्	,,	श्रेयसः

	ए व	द्वि व	ब व
तृ	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
स	श्रेयसि	श्रेयसोः	श्रेयःसु—श्रेयस्सु

श्रेयस्—न०।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र, द्वि, स	श्रेयः	श्रेयसी	श्रेयांसि

तत् + लिखति = तल्लिखति ग्रन्थान् + लिखति = ग्रन्थांल्लिखति — जब दन्तस्थानीय वर्णके बाद ल् होता है तो उसको ल होता है, और यदि वह दन्तस्थानीय अनुनासिक हो तो उसको अनुनासिक ल् होता है।

लघु छोटा—लघुतर—लघीयस् = उससे छोटा—लघुतम—लघिष्ठ = सबसे छोटा।

गुरु—बड़ा—गुरुतर—गरीयस् = उससे बड़ा—गुरुतम गरिष्ठ = सबसे बड़ा।

— (ईयस् और इष्ठके पूर्व गुरुको गर् होता है)

महत्—महीयस्—महिष्ठ।—

विशेषणोंको ईयस् तथा इष्ठ प्रत्यय लगानेसे आपेक्षिक रूप बनते हैं। तर तथा तम भी इसी अर्थके दूसरे प्रत्यय हैं। ईयस् तथा इष्ठ पर रहनेपर अन्तिम स्वर या उपान्त्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता है।

स्त्री गरीयसी, गरिष्ठा, गुरुतरा, गुरुतमा।

बलवत् बलिन्, बलीयस् बलिष्ठ—ईयस् तथा इष्ठके लगनेपर वत् तथा इन् इत्यादि मत्वर्थीय (स्वामित्वज्ञापक) प्रत्ययोंका लोप हो जाता है।

ऊपरके रूपोंके देखनेसे ये नियम निकलते हैं —

विद्वस् + स् = विद्वन्स् स् = विद्वान्स् = विद्वान्—

१। अन्तिम व्यञ्जनसे पूर्व सर्वनामस्थानमें न् आता है और इस न् के पूर्वका स्वर दीर्घ होता है।

विद्वस् + औ = विद्वन्स् + औ = विद्वान्स् + औ = विद्वांसौ।

२। स् के पश्चात् सर्वनामस्थान न हो, और उसके आगे अ, ए, या स् हो, तो सम्प्रसारण होता है।

विद्वस् + अस् = विदुस् + अस् = विदुषः

सन्निवस् + अस् = सन्निवस् + अस् = सदुस् + अस् = सिदुषः

३। भ अङ्ग के अन्तमें वसुका वद् होता है। वसुसे पूर्वके इ का लोप होता है।

विद्वस् + भ्याम् = विद्वद् + भ्याम् = विद्वद्भ्याम्,

विद्वस् + सु = विद्वत् + सु = विद्वत्सु।

४। यदि कोई अघोष वर्ण आगे हो, तो पदके अन्तमें दको त् होता है, और यदि कोई घोष वर्ण आगे हो तो पदके अन्तमें दको द् होता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि पुंलिङ्गकी प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन के ए. व. की प्रकृति पद है, पुंलिङ्गकी प्रथमा, द्वितीया, तथा सम्बोधन की द्वि. व. की प्रकृति भ अङ्ग है, तथा पुंलिङ्गकी प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनके बहुवचनका प्रत्यय सर्वनामस्थान है। वह प्रकृति जिसको स्त्री प्रत्यय ई लगाया जाता है, भ अङ्ग है।

एते पथप्रबोधा मार्गाः।

आर्य! श्रूयताम्। श्रूयमेतत्।

आर्य! यदि वेदविद्याध्ययनमिच्छसि तर्हि तस्याध्ययनं गम्यताम्।

हे विद्वन्! किं वस्तु त्वया गुरवे प्रदर्शितं तत्पृच्छ्यताम्।

कुशलं विहाय प्रमादात् अथ बुद्धिरेव नास्ति।

अथ मा तनुमतो किमायस्य राजर्षे पत्नी?

नमं याष्ट्रे सिता मलिना मुहूर्त अपि नावतिष्ठन्त ।
श्रेयांसि सर्वाण्यधिगच्छन्ति सुपस्ते क्रियाप्राखम् ।
पुण्येनैव हि लभ्यते सुकृतिभि सत्सङ्गतिर्दुर्लभा ।
यो यस्य चित्ते न कदा स दूरे ।
नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुण ।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा ॥
सत्यमेव व्रतं यस्य दया दीनेषु सर्वदा ।
कामक्रोधौ वशे यस्य स साधु कथ्यते बुधै ॥
१ आहूतस्याभिषेकाय प्रस्थितस्य वनाय च ।
न मया लक्षित कश्चित् स्वल्पोऽप्याकारविभ्रम ॥
प्रायो नाम तप प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते ।
तपोनिश्चयसंयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते ॥
विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

जो २ दिन बीतते गये, वह लड़का सब कलाओंमें कुशल हुआ ।
पूज्य गुरुजी ! मैं आपको प्रणाम करता हूं ।
आयु प्रतिदिन क्षीण होती है ।
विपत्तिमें हमलोगोंको धीरज धरना चाहिये ।
सज्जन सदाचारको आधार समझते हैं ।
पण्डितोंकी सभामें मूर्खोंको न जाना चाहिये ।
हमलोगोंको हमारे मङ्गलके लिये उद्योग करना चाहिये ।
किसी प्रकार तुमको आगसे बाहर निकल जाना चाहिये ।

१। यह उक्ति रामके विषयमें कही गयी है ।

कृदन्त ।

अधिकार (स्त्री) —भाग

✓ अभिषेक (अभिषेक) न राज्यारोहण

अनुबन्ध (स्त्री सम्बन्ध,)—आसक्ति (समवायोत्पत्ति —समका भी आसक्ति)

आकार (आकार) पु —आकृति

आभरण (आभरणम्) न —भूषण

कल (कल) पु —[illegible]

ग्रामा (स्त्री)—शालि

चित्त (चित्तम्) न —मन

द्वारका (स्त्री)—द्वारका

निश्चय (निश्चय) पु —निश्चय

✓नेपथ्य (नेपथ्यम्)न —वस्त्र, सजावट, वेष, रङ्गभूमि में इसका भाग, जहाँ नट लोग वेष बनाते हैं ।

पट्टिका (स्त्री)—कुटनता

प्रवेशक (प्रवेशकम्) न (प्र + विश् धातु + णिच् —क = इसका अर्थ समझा विशेष) न नाटक विशेष, प्रस्तावना (जिस नाटकीय रूप का न उल्लेख नाटका आरम्भ हो जाता है ।)

धातु (धातु पुम्)० न धातु । बुद्धि

पुष्प (पुष्प न)पु,—न फूल

मधु (स्त्री)—मधु, शहद

✓विषय (विषय) पु —दोषमय

✓विचार (विचार धम) न करना, प्रश्न

विश्रम (विश्रम) पु —श्रम समका शोभ

शयन (शयनम्) न —मङ्गल

शम (शमम्) न —मङ्गल

सौभाग्य (न)—कल्याण

✓सम्पद् (न)—सभा

विशेष ।

स्मरण—कामका भाव

✓अधिकारियम —जो था सुख

✓अध्यवसाय—जो रह सुखा

✓अवसित (अव + सो + त)—समाप्त

✓आयास—शारीरिक मानसी श्रम

✓आहत (आ + हन् धातु पर + त)—लगाया हुआ

क्रियायास (बहुव्रीहि, क्रि + आयास— स्त्री —नाम,का आयास जिस क्रियायास)—क्रिया नामका

तत (तन—धातु पर + त)—फैला

त्वरा (त्वर् का भाव)—जल्दी स्पष्ट

✓प्रेरित (प्र + ईर्—धातु पर + त) —भेजा हुआ

प्रेषित (प्र+इष्—इष् पर+त)—भेजा हुआ

प्रश्न (प्रच्छ् का रूप)—पूछ वाक्य

महात्मन् (बहु०, महत्+आत्मन् पु)—जिसका मन बड़ा है, उच्चाशय, धार्मिक

दर्शित (दृश् पर+त)—दिखाया गया

प्रथम—अधिक प्रमाणवाला वाक्य

स्वल्प (सु—बहुत+अल्प)—बहुत छोटा

धातु।

ईह् (इह—प्र आत्म कर्म० ईहते)—बोलना

ग्रह् (कर्म०, गृह्यते)—पकड़ना

स्था (तिष्ठति—स्था पर)—* अव के साथ (आत्म)—खड़ा रहना

अव्यय।

अन्यत्र—दूसरी जगह

तर्हि—तो

विहाय (वि+हा का अव्यय भूत कृदन्त)—छोड़कर, सिवा

पाठ २३।

संख्यावाचक।

(१ से १० तक।)

विधवायाः पुनरुद्वाहः शास्त्रसम्मतः इत्येके मन्यन्ते, अपरे पुनः शास्त्रप्रतिषिद्ध इति—

कोई लोग विधवाका पुनर्विवाह शास्त्रसम्मत है ऐसा कहते हैं, और लोग तो वह शास्त्रसे निषिद्ध है ऐसा कहते हैं।

ऋग्यजुःसामानीति त्रयो वेदाः त्रयाणां वेदानां बहवः शाखाः सन्ति—

ऋग्, यजु और साम ऐसे तीन वेद हैं तीन वेदोंकी बहुतसी शाखाएं हैं।

---

* सम्, अव, प्र, वि इन उपसर्गोंके साथ स्थाधातु आत्मनेपदी होता है।

गच्छतः सूर्याणि चत्वारि त्रीणि द्वयम्, कति संख्या तु षट्—इत्यादि प्रकार, जिनका बोध या कालिमा का हुआ पृष्ठ है।

इन शब्दोंके संख्यावाचक रूप तीनों लिङ्गोंमें होते हैं। एकसे चारतक संख्याओंके रूप इस प्रकार हैं —

एकः, द्वि, त्रयः, चत्वारः, पञ्च, षट्, सप्त, अष्ट, नव और दश।

एकशब्दके रूप सर्वशब्दके समान होते हैं। बहुवचनमें इसका अर्थ है—कुछ लोग या कोई लोग।

द्वि।

	पु०	स्त्री तथा नपु०।
प्र०	द्वौ	द्वे
द्वि०	,,	,,
तृ०	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
च०	,,	,,
पं०	,,	
ष०	द्वयोः	द्वयोः
स०	,,	,,

द्विशब्द केवल द्विवचनमें होता है, इसको पु० तथा नपु० में द्वा, तथा स्त्री० में द्वा समझना चाहिए।

त्रि और चतुर् शब्दके संख्यावाचकोंके रूप केवल बहुवचनमें होते हैं।

	त्रि।			चतुर्।	
	पु०	स्त्री०	न०	पु०	स्त्री०
प्र०	त्रयः	तिस्रः	त्रीणि	चत्वारः	चतस्रः
द्वि०	त्रीन्	,,	,,	चतुरः	,,
तृ०	त्रिभिः	तिसृभिः	शेष पु० के समान	चतुर्भिः	चतसृभिः

च	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
पं	,,	,,	,,	,,
ष	त्रयाणाम्	तिसृणाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
स	त्रिषु	तिसृषु	चतुर्षु	चतसृषु

षष् पञ्चन् अष्टन् (तीनों लिङ्गोंमें समान)

	चतुर् न	षष्	पञ्चन्	अष्टन्
प्र	चत्वारि	षट् षड्	पञ्च	अष्ट अष्टौ
द्वि	,,	,,	,,	,,
तृ	शेष रूप पु॰ व॰	षड्भिः	पञ्चभिः	अष्टभिः अष्टाभिः
च	समान	षड्भ्यः	पञ्चभ्यः	अष्टभ्यः अष्टाभ्यः
पं		,,	,,	,, ,,
ष		षण्णाम्	पञ्चानाम्	अष्टानाम्
स		षट्सु-षट्त्सु	पञ्चसु	अष्टसु अष्टासु

षट्सु या षट्त्सु पर ध्यान दो। ट तथा स् के बीचमें विकल्पसे त् आता है।

सप्तन्, नवन्, तथा दशन्के रूप पञ्चन्के समान होते हैं।

पहिले दस पूरणप्रत्ययान्त या क्रमिकसंख्यावाचक इस प्रकार हैं —

प्रथम मा-न्त्री, अग्रिम मा, अन्तिम मा, द्वितीय या, तृतीय या, चतुर्थ थी, तुरीय या, पञ्चम मी, षष्ठ ठी सप्तम मी, अष्टम मी, नवम मी, दशम मी।

प्रथम शब्दके प्रथमाके बहुवचनमें प्रथमे प्रथमाः रूप होते हैं।

द्वितीयस्मै द्वितीयाय, द्वितीयस्मात् द्वितीयात्, द्वितीयस्मिन्-द्वितीये, एवं द्वितीयस्यै द्वितीयायै इत्यादि। इसी प्रकार तृतीय तथा तृतीयाके रूप होते हैं।

द्वितीय तथा तृतीय के च॰ प॰, ष॰ तथा सप्तमीके एकवचनमें विकल्पसे सर्वनामके समान रूप होते हैं।

प्रकारवाचकोंसे क्रियाविशेषण इस प्रकार बनते हैं —

एकधा एक प्रकारसे, द्विधा द्वेधा, त्रिधा त्रेधा, षड्धा षोढा इत्यादि।

धा लगानेसे (विभाग अथवा प्रकार है)।

एकत्र—एक जगह। सुच् शस् कृत्व संख्याका बोध कराता है।

एकशः—एक एक, द्विशः—दो २ (शस्के लगानेसे, यह पुनरुक्तिका बोध कराता है।)

पञ्चकृत्वः—पाँच बार, षट्कृत्वः—छः बार (कृत्वः लगानेसे, जो क्रियाकी पुनरुक्ति बताता है।)

पर एकका सकृत् होता है (एकबार), द्वि—द्विः (दो बार), त्रि—त्रिः, चतुर्—चतुः।

एकका तर तथा तम लगाये जाते हैं—

एकतर दोमें एक, एकतम (बहुतोंमें एक) एकतरस्मै एक-तमस्मिन् इत्यादि—एकतर तथा एकतमके रूप सर्वके समान होते हैं, परन्तु एकतर का नपुं के प्रथमा तथा द्वितीयाके एकवचनमें एकतरम् होता है। अन्यका अन्यतर होता है (दोमें एक)। अन्यतरस्मै अन्यतरत् इत्यादि—सर्वनामके समान रूप होते हैं पर अन्यतम (बहुतोंमें एक) के अन्यतमाय, अन्यतमम् इत्यादि अकारान्त शब्दोंके समान रूप होते हैं।

दशरथस्य तिस्रो भार्याः कौसल्या सुमित्रा कैकेयी च।

भ्रमरशब्दे द्वौ रेफौ तस्मात् द्विरेफ इत्युच्यते।

न्याय वैशेषिक सांख्य योग मीमांसा वेदान्त इति षट् दर्शनानि।

जानुभ्यां पाणिभ्यां पादाभ्यामुरसा बुद्ध्या शिरसा वचसा दृशा प्रणाम साष्टाङ्ग प्रणाम कथ्यते।

अमीषां चतुर्णां फलानां मध्ये यत्ते रोचते तद् गृह्यताम्।

हृदये रोचते भक्तिः।

देवश्चाप रोचते योऽर्क ।
तिस्रपु कन्याश्चिय लावण्य श्रेष्ठा ।
ऋग्वाभिस्तुभि प्रवन्न शिवोऽग्रताद्व ।
अपि वरम १ उचित रत्नया प्रथम आश्रमे * द्वितीयमध्यार्धितुभिन्नाभी
समय ।
मध्योपयो देवगर्भोऽरेच्छा ।

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातय ।
समाः विप्रस्तुत्य हु एव रसअरफल ।
काव्यामृतरसास्वाद मद्भय सुपर्ण षट ॥
अध्यापनमध्ययन यजन याजन तथा ।
दान प्रतिग्रहश्चैव षट् कर्माण्यग्रजन्मन ॥
शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दसा चय ।
ज्योतिषामयन चैव वेदाङ्गानि षडेव तु ॥
स्वर्ण राप्य च ताम्रञ्च रङ्ग यशदमेव च ।
सीस लोह रसश्चेति धातवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।
अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥

सूर्य के सात घोड़े है ।
सत्त्व, रजस, और तमस् तीन गुण हैं।
तापीसे नर्मदा बड़ी है ।
शिवके तीन नेत्र हैं।

---

१ आस् आत्मका आधार कर्म होता है ।

प्राय इसको सर्वत्र ही व्यवहार है।
मैं कर्मोंका योग कर लिखनेके लिये यहाँ कहा।
रघुवंशका प्रथम अधिक पर्व है।
यहाँ मैं वर्णन चार प्रश्न थ।

शब्दार्थ।

अग्रजन्मन् पुं (बहु० अग्र प्रिग०, प्रथम, जन्मन् न जन्म)— जिसका जन्म प्रथम है, ब्राह्मण
अध्यापन (अध्यापनम्) न —पढ़ाना
अयन (अयनम्) न —मार्ग
अपराजिता (स्त्री)—पराजय
आश्रम (आश्रम) पुं —जीवनको एक अवस्था। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास जीवनकी चार अवस्थायें हैं।
आस्वाद (आस्वादः) पु —स्वाद
उरस् (न) छाती, हृदय
ऋच (स्त्री) ऋग्वेद
कल्प (कल्प) पु —एक वेदका अङ्ग
कार्त्तिकेय (कार्त्तिकेय) पु —शिवपुत्र, जिनको छः मुख हैं।
काव्य (काव्यम्) न —कविता
कैकेयी (स्त्री) दशरथकी स्त्री, भरतकी माता
कौसल्या (स्त्री) दशरथकी स्त्री रामकी माता

गण (गण) पु —समूह
गण्डकी नदी—गण्डक नदी
गुरु (अ) मुश्किल
गोपाल (गोपालक) पुं, गाय०, गोप पुं ग्वाले, गाय पु गाय) जातियोंका नाम
ज्योतिष (न) शास्त्र (ज्योतिषामयनम् —ज्योतिष शास्त्र, जिसमें ताराओंका गति वर्णित है)
तनु तनू (स्त्री) शरीर
ताम्र (ताम्रम्) न —तांबा
दर्शन (दर्शनम्) न —शास्त्र
दान (दानम्) न —देना
देवदत्त (देवदत्त) पुं —किसीका नाम
देश (देश) पुं —देश
द्विजाति (पु बहु० द्वि दो, जाति स्त्री, जन्म) जिसके दो जन्म हैं —ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य
द्विरेफ (द्विरेफः—पु बहु० द्वे रेफौ यस्य स । भ्रमर शब्दमें दो रकार हैं) भ्रमर

षड्दर्शन —

निरुक्त (निरुक्तम्) न —शब्द— व्युत्पत्तिशास्त्र

न्याय (न्याय) पु —गौतमकृत एक शास्त्र

पुनरुद्वाह (पुनरुद्वाह) पु पुनर् फिर, उद्वाह पु -विवाह)—पुनर्विवाह

प्रणाम (प्रणाम) पु —नमस्कार

प्रतिग्रह (प्रतिग्रह) पु —लेना

बल (बलम्) न —१ शक्ति, २ सेना

मीमांसा (स्त्री) जैमिनिकृत, षड्दर्शनोंमें एक दर्शन

मोदक (मोदक) पु —एक प्रकारकी मिठाई

यजन (यजनम्) न —याग

यजुष् (न) यजुर्वेद

यशस् (यशस्म्) न —कीर्ति

योग (योग) पु —षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, पतञ्जलिकृत

रङ्ग (रङ्ग रङ्गम्) पु, न —रंग

रस (रस) पु —स्वाद

रूप्य (रूप्यम्) न —चांदी

लावण्य (लावण्यम्) न—शोभा, अङ्गकान्ति

लोह (लोहम्) न —लोहा

वर्ण (वर्ण) पु —१ जाति, २ अक्षर

विधवा (स्त्री, बहु०, वि उपसर्ग बिना, धव पु पति) स्त्री, जिसका पति मृत है

विषवृक्ष (विष न + वृक्ष पु, तत्पु०) विषयुक्त पेड़

वेदाङ्ग (वेदाङ्गम्) न —(तत्पु०, वेद पु वेद + अङ्ग न भाग) वेदका एक भाग

वेदान्त (वेदान्त) पु —वेदान्त-दर्शन, षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, व्यासकृत

वैशेषिक (न) षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, कणादकृत

व्याकरण (व्याकरणम्) न —शब्दशास्त्र

शाखा (स्त्री)—वेदकी एक शाखा

शिक्षा (स्त्री)—वर्णोच्चारणशास्त्र

शिरस् (न)—सिर

सर्प (सर्प) पु —सांप

सांख्य (सांख्यम्) न —षड्दर्शनोंमें एक दर्शन, कपिलकृत

सामन् (न)—सामवेद

सौध (सौधम्) न —कोठा

सुजन (सुजन) पु, प्रादिसमास, सु + जन)—सज्जन

सुमित्रा (स्त्री)—लक्ष्मणकी माता

स्वर्ण (स्वर्णम्) न —सोना

विशेषण।

अपकर (स्त्री अपकरी) दुःख उत्पन्न करनेवाला	यथा—यथार्थ वहनवाला
एक एक, (बहु व में) कुछ	विद्वस्—जाननेवाला, पण्डित
गरीयस्—(अधिक बड़ा)	शास्त्रप्रतिषिद्ध (तत्पु०, शास्त्र न+ प्रतिषिद्ध = प्रति+ निध षिध् + त)—शास्त्रसे निषिद्ध
प्रपन्न (प्र+पद्—गि जा+त) प्राप्त	सशास्त्र (बहु०, स=साथ, शास्त्र न)—शास्त्रसहित
प्रियवादिन् (स्त्री प्रियवादिनी)—मधुर बोलनेवाला	साष्टाङ्ग (बहु०, स+अष्टन्+अङ्ग, न)—आठ अङ्गोंके साथ
बलीयस् (स्त्री बलीयसी) अधिक शक्तिमान्)	सेदिवस्—जो बैठ चुका
रसवत्—स्वादयुक्त	

धातु।

रुच् (रोचते—भ्वा आ)—पसन्द करना (यह चतुर्थीके साथ आता है) पसन्द करनेवालेमें चतुर्थी होती है। तुभ्यं रोचते—तुमको पसन्द है।

अव्यय।

अध्यासनम् (अधि+आस्+ल्युट्)—बैठना	केवलम्—केवल
इदानीम्—अब	नित्यम्—सदा

पाठ ७४।

अनियत सम्बन्धवाचक।

अपना काम—आपसे काम।

तस्मात् सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव—इस लिये तुम मित्र हो, जो मेरा है वह तुम्हारा ही है।

दध्नो भावेन परिणतं क्षीरमेतत्—दहीके रूपमें बदला हुआ यह दूध है ।
पत्युः सेवा स्त्रीणां परमो धर्मः—पतिकी सेवा स्त्रियोंका परम कर्तव्य है ।
कन्यका रूपगर्वितायाः श्रियः प्रत्यादेशः—कन्या रूपसे गर्वित लक्ष्मीको दबानेवाली है ।
साधूनां कीर्तिः सर्वासु दिक्षु प्रसरति—सज्जनोंका यश सब दिशाओंमें फैलता है ।
शिवास्ते पन्थानः सन्तु—तुम्हारे मार्ग सुखजनक हों ।
इस पाठमें पति, सखि, श्री, स्त्री, अक्षि, पथिन्, तथा दिश् शब्दके रूप दिये गये हैं ।

१। पति शब्दके तृ, च, प, ष, तथा सप्तमीके एकवचनके रूप क्रमसे—पत्या, पत्ये, पत्युः, पत्युः, तथा पत्यौ होते हैं, शेष रूप हरिके समान होते हैं ।

२। भूपतये, भूपते इत्यादि—भूपति सेनापति, इत्यादिमें समासके अन्तमें रहनेवाले पतिशब्दके रूप नियमरूपसे होते हैं ।

सखि—पुं ।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	सखा	सखायौ	सखायः
द्वि	सखायम्	,,	सखीन्
तृ	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
च	सख्ये	,,	सखिभ्यः
प	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
ष	,,	सख्योः	सखीनाम्
स	सख्यौ	,,	सखिषु
सं	सखे	सखायौ	सखायः

३। सखिके पहिले पाँच रूप—सखा, सखायौ, सखायः, सखायम्, सखायौ हैं, शेष रूप पतिके समान होते हैं ।

स्त्री—स्त्री।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय
द्वि	स्त्रीम्—स्त्रियम्	,,	स्त्री—स्त्रिय
तृ	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि
च	स्त्रियै	,,	स्त्रीभ्य
प	स्त्रिया	,,	,
ष		स्त्रियो	स्त्रीणाम
स	स्त्रियाम्	,,	स्त्रीषु
स	स्त्रि	स्त्रियो	स्त्रिय

४। स्वरादि प्रत्यय आगे रहनेपर स्त्रीके ईको इय् होता है। इसमें द्वितीयाके एकवचनमें स्त्रीम् वा स्त्रियम्, तथा बहुवचनमें स्त्री वा स्त्रिय होता है।

श्री—स्त्री। भ्रू—स्त्री।

	ए व	द्वि व	ब व।	ए व	द्वि व	ब व
प्र	श्री	श्रियौ	श्रिय	भ्रू	भ्रुवौ	भ्रुव
द्वि	श्रियम	,,	,	भ्रुवम्	,	,
तृ	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि	भ्रुवा	भ्रूभ्याम	भ्रूभि
च	श्रिय श्रियै	,,	श्रीभ्य	भ्रुव भ्रुवै	,,	भ्रूभ्य
प	श्रिय श्रिया	,,	,	भ्रुव भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्य
ष	,, ,,	श्रियो	श्रियाम्-श्रीणाम्	,, ,,	भ्रुवा	भ्रुवाम् भ्रूणाम्
स	श्रियि श्रियाम्	,,	श्रीषु	भ्रुवि भ्रुवाम्	,,	भ्रूषु
स	श्री	श्रियो	श्रिय	भ्रू	भ्रुवो	भ्रुव

५। *धी, श्री, ह्री, भ्रू तथा सू इत्यादि शब्दोंके रूपोंमें अधोलिखित परिवर्तन होते हैं।

(अ) प्रथमाके ए व में स् का लोप नहीं होता।

(उ) स्वरादि विभक्तियोंके पूर्व ई को इय् तथा ऊ को उव् होता है।

(ऋ) च, प, ष, तथा सप्तमीके एकवचनमें और ष के बहुवचनमें दो २ रूप होते हैं। एक नियतरूपसे प्रत्ययोंके जोड़ने पर बनते हैं, और दूसरे नदी तथा वधूके समान चलते हैं।

अक्षि—न। श्री—स्त्री।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वि	,,	,,	,,	श्रियम्	,	,
तृ	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
च	अक्ष्णे	,,	अक्षिभ्यः	श्रिये	,,	श्रीभ्यः
पं	अक्ष्णः	,,	,	श्रियः	,	,,
ष	,,	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्		श्रियोः	श्रीणाम्
स	अक्ष्णि अक्षणि	,	अक्षिषु	श्रियि	,,	श्रीषु
सं	अक्षि अक्षे	अक्षिणी	अक्षीणि	श्रीः	श्रियौ	श्रियः

६। तृतीयाके एकवचनसे लेकर स्वरादि प्रत्यय पर रहनेपर अस्थि, दधि, सक्थि, तथा अक्षिको अस्थन्, दधन्, सक्थन् तथा अक्षन् समझना चाहिये।

---

*अवीलक्ष्मीतरीतन्त्रीधीह्रीश्रीणामुणादितः।
सप्तानामपि शब्दानां सुलोपो न कदाचन॥

इसकारण लक्ष्मी अवी (रजस्वला स्त्री) लक्ष्मी तरी (नौका) तन्त्री (एक बाजा) श्री, तथा धीके प्रथमाके एकवचनमें स का लोप नहीं होता।

भिक्ष्, भिक्षाम् भिन्नु, दृन्, दृशु—

७। भिन्न् तथा सान्तम्, त्वान्तम्, इत्यादि हलन्ते समाप्त होनेवाले शब्दोंका अन्तिम ऋ व्यञ्जनादि प्रत्यय पर रहनेपर, कमें बन्द जाता है।

पथिन्—पु ।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र	पन्था	पन्थानौ	पन्थान
द्वि	पन्थानम्	,,	पथः
तृ	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि
च	पथे	,,	पथिभ्य
पं	पथः	,,	,,
ष		पथो	पथाम्
स	पथि		पथिषु
सं	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थान

८। पथिन् के पहिले पांच रूप—पन्था, पन्थानौ, पन्थान, पन्थानम्, पन्थानौ—हैं। इसका अङ्ग पथ् है।

९। अमापथ—अमाका मार्ग। समासके अन्तमें पथिन्‌को पथ होता है।

क्षुधातुर क्रोध मुपयति।
अथ पन्था साकेतमुपतिष्ठते।
स्तौमि कथं न खण्डित भुवि मन ।
न्याय्यात्पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा ।
अनिर्वेद श्रियो मूलम्।

दुग्ध च शर्करा चैव घृत दधि तथा मधु इति पञ्चामृतमिदम्।

आ पाप! कथमेव गन्तो साधुत्वमाह न ते निपतित वज्रमशनीणा वा सहमधा न जिह्वा विदलता गता वा न वाणी नष्टानि वा नाक्षराणि।

एकस्मिञ्जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात् सूनुरभवम् ।

परिहासविजल्पितं सखे परमार्थेन न गृह्यतां वचः ।

नानाभङ्गं वहन्ति कुत्र भवतामस्मादृशा भाग्यभीमाः ।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव तु ॥
संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥
त्वदनुगुणं निरीक्ष्य पात्रीं कुलियुक्ता किमु वक्तुमीश मा ।
मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम् ॥
काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः ।
वसन्ते समुपायाते काकः काकः पिकः पिकः ॥
स्वभावं नैव मुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।
न त्यजन्ति रुतं मञ्जु काकसम्पर्कतः पिकाः ॥
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥

उनके समान सज्जन इस संसारमें कम हैं ।

रघुने सब दिशाओंके राजाओंको जीता ।

'अब क्या करना चाहिये यह तुम मुझसे अच्छा समझते हो' (एतावत्) यह कहता हुआ वह चुप हुआ ।

मैं नहीं जानता कि उस स्त्रीने क्या कहा ।

पति पर सती स्त्रियोंकी भक्तिका भाव होना चाहिये ।

मित्र ! मेरे शब्दोंको अन्यथा न समझो ।

[illegible] है । ऐसे उदाहरण महाभारतमें बहुत हैं ।

जैसे प्यासा कि उस माताका दूध पीनेको चला गया।
हिन्दूमें जो मित्र वही यथार्थ मित्र है।

शब्दार्थ।

अनिर्वेद (अनिर्वेद पु नञ्स०, अ + निर्वेद पु वैराग्य)—वैराग्यका अभाव, उत्साह
अमृत (अमृतम्) न —अमृत
उत्तमाङ्ग (उत्तमाङ्गम्) न (उत्तम विश० + अङ्ग-न) उत्तम अवयव, सिर
उपयश (उपयशः) पु —उपयश
उर्वशी (स्त्री)—स्वर्गकी एक अप्सराका नाम
कीर्ति (स्त्री)—यश
कोटर (कोटर रम्) पु न —खोढ़रा
क्षीर (क्षीरम्) न —दूध
घृत (घृतम्) न —घी
छल (छलम्) न —कपट
जाया (स्त्री)—स्त्री
त्वदनुस्मृति† (स्त्री तत्पु, त्वत् + अनुस्मृति)—तुम्हारा स्मरण
दधि (न)—दही
दिश (स्त्री)—दिशा
दुग्ध (दुग्धम्) न —दूध
धी (स्त्री धा)—बुद्धि
धीर (पु)—बुद्धिमान्
पति (पु)—पति
पथिन् (पु)—रास्ता
परमार्थ (परमार्थ पु कर्मधा० परम विश० उत्तम + अर्थ पु वस्तु)—यथार्थ वस्तु
पारमार्थिक—सत्यरूप
परिहास (परिहास) पु —हंसी
पिक (पिक) पु —कोकिल
मधुव्रत (मधुव्रत) पु —फूलका चूसनेवाला
भृङ्ग (भृङ्ग) पु —भंवरा (भूभङ्ग—भाव चढ़ाना)
भू (स्त्री)—पृथ्वी
भ्रू (स्त्री)—भौंह
मेघ (मेघ) पु —मेघ
मूल (मूलम्) न —जड़, कारण
मुख (मुखम् न मु+ख)—मुँह

---

† मस शमी ए व के पहले युष्म, तथा अस्म की त्वत् तथा मत् होता है।

वसन्त (वसन्त) पु —वसन्त ऋतु, चैत्र और वैशाख
वाणी (स्त्री) बोली
विप्रलिप्त (वि प्र+लिप्+त)— अस्पष्ट वाणी
विजिगीषा (स्त्री) —जीतनेवालेकी इच्छा
विह्वलता (स्त्री) व्याकुलता
शर्करा (स्त्री)—चीनी
श्री (स्त्री) लक्ष्मी
सचिव (पु)—मित्र
समाज (समाज) पु —समाज
सार्वभौम (सार्वभौम) पु —सम्राट
साधु (पु)—सज्जन
सितशर्करा (स्त्री) मिसरी
सूनु (पु)—पुत्र
सङ्ग (सङ्ग) पु —साथ
संहिता (स्त्री)—सन्धि या अक्षरोंका जोड़
सम्पर्क (सम्पर्क) पु —साथ
साकेत (साकेत) पु —अयोध्या
सेवा (स्त्री)—सेवा
स्त्री (स्त्री)—स्त्री
स्वभाव (पु)—प्रकृति
ह्री (स्त्री)—लज्जा

विशेषण ।

अध्रुव—अनिश्चित
अनुविद्ध (अनु+व्यध् के यह+त)—मिला हुआ
अन्वित (अनु+इ+त)—युक्त
अवदीर्ण (अव+दॄ+त)—फटा हुआ
असत्—बुरा
काण—काना
कीदृश—किस प्रकारका
कृष्ण—काला
खण्डित—टूटा हुआ
गलत् (गल्—धातु पर का शतृ कृ)—गीलता हुआ
गर्जित (गर्ज+त) गर्जित
जीर्ण (जॄ-कि प + त)—पुराना
त्वादृश—तुम्हारे जैसा
ध्रुव—निश्चित
निपतित—(नि+पत्+त)—गिरा हुआ
निवसत् (नि+वस्‌का शतृ कृ)—रहता हुआ

नित्य—आवश्यक
परिणत (परि+नम्+त)—झुका हुआ
पश्चिम—अन्तिम (पश्चिम वय वृद्धता)
पाप—पापी
पावन (स्त्री पावनी)—पवित्र
मञ्जु—मनोहर
युत (युज्+त)—मिला हुआ
वृद्ध (वृध्—भ्वा आ + त)—बढ़ा
शिव—कल्याणकर
समुपागत (सम्+उप+आ+गम् भ्वा पर+त)—आया हुआ

धातु।

अप+ईक्ष् (अपेक्षते—भ्वा आ)—चाहना, आशा करना, भरोसा करना
उप+स्था (उपतिष्ठते—भ्वा आ)—सेवना
प्र+सृ (प्रसरति—भ्वा पर)—फैलना
प्र+वि+चल् (प्रविचलति—भ्वा पर)—हिलना
परि+षेव् (परिषेवते—भ्वा आ) (परिषेव)—सेवन करना आश्रय लेना

अव्यय।

कियत्—कितना अधिक?
वक्तुम् (वच्+तुम्)—बोलना
विधिवशात्—दैववश

पाठ २५।

स्वादि तथा तनादिगणके धातु।

एवं चक्रवर्तिनं पुत्रमाप्नुहि—इस प्रकारसे सार्वभौम पुत्रको पाओ।

शृणु मे सावशेषं वचः—मेरी बात (जिसमें शाप है) सारा सुनो।

सखि! अत्रागच्छ पुष्पाणि चिनवावहै—सखी! यहाँ आओ हम दोनों फूल बटोरें।

जगन्नाथ! न वयं ते महिमानं स्तोतुं शक्नुमः—हे जगन्नाथ! हम लोग तुम्हारे महिमाकी स्तुति नहीं कर सकते।

अध्वर्यवो यज्ञे सोममसुन्वन्—अध्वर्युओंने यज्ञमें सोमको कूटा।

त्वमपि स्वं नियोगमशून्यं कुरु—तुम भी अपने कामको अशून्य बनाओ।—तुम भी अपना काम करो। (अशून्यं कुरु=पूरा करो)।

क्रमेण च तस्या वपुषि यौवनं पदमकरोत्—क्रमसे यौवनने उसके शरीरमें स्थान किया।

ईश्वरकृपया विना दुष्कराणि कार्याणि जनाः कथं साध्नुयुः—ईश्वरकी कृपाके बिना लोग कठिन कामोंको कैसे सिद्ध करें!

इस पाठमें स्वादि तथा तनादि गणके रूप दिये गये हैं।

	चि—चुनना पर० लट्।			आप्—पाना पर०।		
	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
म० पु०	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
उ० पु०	चिनोमि	चिनुवः-चिन्वः	चिनुमः-चिन्मः	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः

	तन्—तानना पर० लोट्।			आप्—पाना पर० लोट्।		
	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	तनु	तनुतम्	तनुत	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

तन्—तना पर लङ्। आप्—स्वा पर लङ्।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म पु	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत
उ पु	अतनवम्	अतनुव, अतन्व	अतनुम, अतन्म	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम

चि—स्वा पर विधि। चि—स्वा आ विधि।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
म पु	चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात	चिन्वीथाः	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ पु	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

तन्—आ लङ्। चि आ लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
म पु	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्			

तन्—लट् आ तना। तन्—आ लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	तनुते	तन्वाते	तन्वते	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म पु	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ पु	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

इन रूपोंको देखनेसे ये नियम तुम्हारे ध्यानमें आवेंगे —

१। नु स्वादिका तथा उ तनादिगणका विकरण है।

गण दो वर्गोंमें विभक्त हैं। पहिलेमें भ्वादि, दिवादि, तुदादि, तथा चुरादि ये गण आते हैं, जिनमें प्रकृति अकारान्त होती है (क्योंकि अ, य,

थ, तथा अय इनके विकरण हैं), और दूसरे वर्गमें अन्य गणके धातु आते हैं, जिनमें प्रकृति अकारान्त नहीं होती।

२। कुछ प्रत्यय ऐसे हैं कि जो पर रहनेपर अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण या वृद्धि होती है, और कुछ ऐसे हैं, कि जिनके पूर्व कोई परिवर्तन नहीं होता। इनमें पहिले प्रकारके विकारक, तथा दूसरे प्रकार के अविकारक प्रत्यय कहाते हैं।

३। परस्मैपद—विधिलिङ्के एकवचन, तथा लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनके सिवा और सब एकवचन विकारक हैं। लोट्के उत्तम पुरुषके द्विवचन तथा बहुवचनके सिवा और सब द्विवचन तथा बहुवचन अविकारक हैं।

४। आत्मनेपद—लोट्के उत्तमपुरुषके एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचन—विकारक, तथा शेष अविकारक हैं।

५। केवल विधिलिङ्के सिवा इतर दूसरे वर्गके परस्मैपदके प्रत्यय प्रथम वर्गके गणोंके समान होते हैं। विधिलिङ्के प्रत्यय इस प्रकार हैं —

प्र पु	यात्	याताम्	युः
म पु	याः	यातम्	यात
उ पु	याम्	याव	याम

६। तनु—आप्नुहि—हि लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका प्रत्यय है। तनादिगणके सब धातुओंमें तथा स्वादिगणके स्वरान्त धातुओंमें इसका लोप होता है।

७। आत्मनेपदमें प्रथमपुरुषके बहुवचनके अनुनासिकका लोप होता है, और इथे, इते, इथाम्, तथा इताम् को आथे, आते, आथाम्, तथा आताम् होता है।

८। चिनव न्व, आप्नुव—वकार तथा मकारादि प्रत्ययोंके पूर्व

विकरणके उ का विकल्पसे लोप होता है, यदि इसके पूर्व कोई संयुक्त न हो।

९। नित्यमपि आत्मनेपदि—यदि विकरणके पूर्व कृ धातु प्रयुक्त हो तो उसका मकारादि प्रत्ययोंके पूर्व लोप होता है।

कृ—धातु।

	पर वर्तमान।			आत्म वर्त।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म पु	करोषि	कुरुथः	कुरुथ	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ पु	करोमि	कुर्वः	कुर्मः	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

	पर—लोट्।			आत्म—लोट्।		
प्र पु	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म पु	कुरु	कुरुतम्	कुरुत	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ पु	करवाणि	करवाव	करवाम	करवै	करवावहै	करवामहै

	पर लङ्।			आत्म लङ्।		
प्र पु	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म पु	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ पु	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

	पर विधिलिङ्।			आ विधिलिङ्।		
प्र पु	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्

१०। कृको विकारके प्रकृति कर्, तथा अविकारक प्रकृति कुर् है।

११। यकारादि तथा सकारादि प्रत्ययोंके पूर्व, तथा विधिलिङ् परस्मैपद प्रत्ययोंके पूर्व कृका विकरण अर्थात् उका लोप होता है।

साधु कृतमनेन विद्यापरिग्रहार्थं पुत्रान् काशीं प्रहिण्वता ।

तात ! अकुन्तलाविरहितं शून्यमिव वनं प्रवेष्टुं न शक्नुमः ।

विदुषां यशांसि दिक्षु कवयः प्रतन्वन्ति ।

अहो ! देवी भानुमती सखीभ्यां किमपि मन्त्रयमाणा तिष्ठति । भवतु लताजालेनान्तरितः शृणोमि तावदासां विस्रम्भालापम् ।

अद्य पौषमासीति मया चन्द्रपूजा सायं कर्तव्या । तस्मात् पूजाय वत्सा उद्याने पुष्पाण्यवचिन्वाताम् ।

दुष्टध्याना परं न दृष्टं मयातश्चस्तु फलं नैवाप्तम् ।

एकदा पुत्रमाहूय अमूं हस्त्यपरिमितबलानुयातं हस्तिनैरमात्यैश्च सामन्तैश्च कृत्वा साभिसारमुत्तरापथं प्राहिणवम् ।

) निर्बला बलिना युद्धं न कदापि धृष्णुयुः ।

भगवति सरस्वति ! तव चरणं शरणं करवाणि ।

विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

कुलीनैः सह सम्पर्कं पण्डितैः सह मित्रताम् ।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो न विनश्यति ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात्कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥

यह लडकी बगीचेमें पेड़ोंसे फूल चुनती है ।

उद्योगसे कौन अपना कार्य सिद्ध नहीं कर सकता ?

उधारि लोचन लागत नित्य बात कहौ मिलत।
जु काहु कहत है वदन उपालम्भ वम दास है।
सब सुमन न रहत सहज पृथ्वी।
सम्पति हो ता तब सुख पावा भाखिए तर हा बनै।
देह धर मैं आवत प्राण पाया है नहीं राखा कीजिये।
पद्यांश इस प्रकार का, तथापि सुबक अभ्य अभी पुस्तका सकल याहि
समुझन निज समझाय कर यांत्रिक हुआ।

शब्दार्थ।

आतंक (प — दक्ष भी यह
अयात्र (अयात्र) प म पु (अथवा
—प्र०, भाव, अ—दण्ड)
उपालम्भ (उपालम्भ) पु —उलाहना
बात
उद्यान (उद्यानम्) न — बगीचा
कृपा (स्त्री)—दया
कुलीन (कुलीन) पु —अच्छे कुलमें
उत्पन्न
क्रम (क्रम) प क्रम
दान (दान) प —दान, पुण्य
गज (गज) पु —हाथी
चतुःफल (चतुःफलम् न न पु
चतुर्णां न फल+फल —न)
—चारोंका फल, धर्म अर्थ मोक्ष
कामका समूह

चन्द्रमुखी (स्त्री समा०, चन्द्र+
मुख)—चन्द्रमाकी मुखी
प्राणि (पु)—प्राणधर
मधुकर (मधुकर) पु —मधुपायी
नियम (नियम) पु —समय नियम
(निमेषात्—तात्पर्य)
निमेष (पु)—निमेष पलक
गिरा पुनः भाव
कीर्ति (स्त्री)—कीर्ति, यशप्रचार
पादोदक (पादोदकम्) न समा०, पद-
विशे० अथवा + पं इस न)—
चरणका जल
पद (पद) पु —चरणका पग,
चरण
पौर्णमासी (स्त्री)—पूर्णिमा
मान (मानम्) न —मान

ब्रह्मपद (ब्रह्मपदम्) (न ब्रह्मन्—न ब्रह्म + पद न स्थान)—ब्रह्मका स्थान

भानुमती (स्त्री)—दुर्योधनकी रानीका नाम

भूति (स्त्री)—ऐश्वर्य

मद (मद) पु—गर्व

मनीषिन् (पु)—बुद्धिमान

मेल (मेल) पु—साथ

यज्ञ (यज्ञ) पु—याग

योगेश्वर (योगेश्वर) पु—योगके प्रभु, कृष्ण

लताजाल (लताजालम्) न (लता स्त्री + जाल न) लताओंका समूह

वपुस् (न)—शरीर

विजय (विजय) पु—जय

विश्रम्भालाप (विश्रम्भालाप) पु सं०पु, विश्रम्भ पु विश्वास + आलाप—पु कथन) विश्वासकी बातचीत

विवाद (विवाद) पु—वाद

सरस्वती (स्त्री)—वाणी

सामन्त (सामन्त) पु—माण्डलिक राजा

सोम (सोम) पु—सोमरस

विशेषण।

अनुयात (अनु + या—जा पर + त)—अनुगत

अन्तरित (अन्तर् + इ + त)—छिपा हुआ

अपरिमित (न॰तत्पु० अ + परिमित = परि + मा + त)—बहुत

चक्रवर्तिन्—सार्वभौम

चिरन्तन—पुराना

दुष्कर—करनेको अशक्य

दृश्य—देखने योग्य

निर्बल (बहु)—जिससे बल निकल गया, अशक्त

*पर (सर्व ना)—दूसरा

बलिन्—शक्तिमान्

मायामय—(माया—स्त्री अविद्या, मय प्रत्यय है जिसका अर्थ—बना हुआ है)—असत्य

विपरीत (वि + परि + इ + त)—उलटा

विरहित (वि + रह् + त)—हीन

---

* जब यह नाकारान्त होता है तब इसके दो रूप होते हैं—परे—परा, परस्मात्—परात्, परस्मिन्—परे।

सानुचर (बहु०, स + अनुचर—पुं सेवक)—सेवकोंके साथ

सावशेष (बहु०, स + अवशेष—पुं)—सशेष, पूर्ण

धातु ।

अनूनम् + कृ (तना उभय)—पूर्ण करना

आप् (आप्नोति स्वा पर)—पाना, प्र या अवके साथ—पाना

कृ (करोति कुरुते—तना उभ)—करना

चि (चिनोति चिनुते—स्वा उभ) चुनना, इकट्ठा करना, वि, सम्, या अवके साथ—इकट्ठा करना

तन् (तनोति, तनुते) (तना उभ)—फैलाना, प्र, वि, या समुके साथ—फैलाना

धृष् (धृष्णोति) (स्वा पर)—ललकारना

मन्त्र् (मन्त्रयते) (चु आ)—सलाह करना, विचार करना

शक् (शक्नोति—स्वा पर)—सकना

शरण कृ (तना उभ)—शरणागत होना

श्रु (शृ) (शृणोति—स्वा पर)—सुनना

साध् (साध्नोति—स्वा पर)—सिद्ध करना

सु (सुनोति, सुनुते—स्वा उभ)—कूटना

हि (हिनोति—स्वा पर)—भेजना, प्र के साथ—(प्रहिणोति)—भेजना

अव्यय ।

आहूय (आ + ह्वे का ल्यप् भू कृ)—पुकारकर

सकृत्—एकबार

प्रवेष्टुम् (प्र + विश् + तुम्)—प्रवेश करने के लिये

विदित्वा (विद् + क्त्वा)—जानकर

विद्यापरिग्रहाय (तत्पु, चतुर्थी के अर्थमें चतुर्थीके साथ अन्य शब्दका समास होता है। यह चतुर्थीतत्पुरुष है। यह

[1]नित्य होता है विकल्पसे नहीं। विद्यायाः परिग्रहः विद्यापरिग्रहः विद्यापरिग्रहाय (इदं यथा स्यात्तथा)—विद्याप्राप्तिके लिये

साधु—अच्छा

सायम्—सायङ्कालमें

स्तोतुम् (स्तु+तुम्)—स्तुति करनेके लिये

हन्तुम् (हन्+तुम्)—मारनेके लिये

हित्वा (हा का अथवा भू कृ)—छोड़कर

पाठ २६।

क्र्यादिगणके धातु।

प्रायः आकृतिमनुगच्छन्ति गुणाः—प्रायः गुण आकारका अनुसरण करते हैं।

त्वदर्थं मयानश्वमश्वमक्रीणाम्—तुम्हारेलिये मैंने बहुत तेज घोड़ा खरीदा है।

प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रः—जो अपने सच्चरित्रोंसे पिताको प्रसन्न करता है वह पुत्र है।

पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे—हम लोग पवित्र आश्रमके दर्शनसे अपनेको पवित्र करें (तावत् वाक्यालङ्कारके लिये है)।

इतः शिलातलैकदेशमनुगृह्णातु वयस्यः—इस शिलाकी एक ओर मित्र कृपा करें (बैठें)। इतः=इमम्।

शतं मुष्णाति देवदत्तम्—वह देवदत्तसे सौ रुपया चुराता है (मुष् को दो कर्म होते हैं)। यह द्विकर्मक धातु है।

हे राजन्! एतां क्षितिधेनुं दुधुक्षसि चेद्वत्समिवामुं लोकं पुषाण—हे महाराज! यदि आप इस पृथ्वीरूपी गौको दुहा चाहते हैं तो बछड़ेके समान इस लोकका पोषण करो।

इस पाठमें क्र्यादिगणके रूप दिये गये हैं।

१। नित्य समासके विषयमें इस पुस्तकके अन्तमें शब्दसंग्रहकी टिप्पणियोंमें दशमाध्यायकी टिप्पणी, या १२ वें पाठमें देखो।

क्री—क्रय करा।

	पर लट्।			आत्म लट्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म पु	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ पु	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

	पर लोट्।			आत्म लोट्।		
प्र पु	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म पु	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ पु	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम	क्रीणै	क्रीणावहै	क्रीणामहै

पर लङ्।

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म पु	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ पु	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

आत्म लङ्।

प्र पु	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म पु	अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ पु	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

पर विधिलिङ्।

प्र पु	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
म पु	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ पु	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

आत्म विधिलिङ्।

प्र पु	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
म पु	क्रीणीथाः	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ पु	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

१। ऊपरके रूपोंके देखनेसे यह मालूम होगा कि क्र्यादिगणका विकरण ना है, और अविकारक व्यञ्जनादि प्रत्यय पर रहनेपर ना का नी, तथा अविकारक स्वरादि प्रत्यय पर रहनेपर न् होता है।

२। पुषाण, मुषाण—पुष् मुष, इत्यादि व्यञ्जनान्त धातुओंसे लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका रूप विकरणके बिना आन लगानेसे बनता है।

३। ग्रन्थ्—ग्रथ्नाति, मन्थ्—मथ्नाति—उपान्त्य अनुनासिकका लोप होता है।

४। पू—पुनाति, लुनाति, धुनाति, स्तृणाति, शृणाति—पू, लू धू, स्तॄ शॄ, तथा और कुछ धातुओंके अन्तिम स्वरको विकरण आगे रहनेपर ह्रस्व होता है।

मूल। योऽन्याश्वान्। पुष्पाभरणमनेन तावन्नाहमानं पुनर्मद्दे।
श्रयन्तु वचनमनुक्रमेण। सैन्यमन्तरा प्रतिबध्नीतम्।
मूढ वत्सप दुरात्मा। दुर्योधनो वासुदेवं भगवन्तं एवं रूपेण क्षम जानातु।
अहो कल्याणपरम्परा समाप्य जनमनांसि यद् विवक्षितं सम्यक्सदस्यान् मनुगृह्णाति।
प्रियवयस्यार्थमाधवकाश्यपोऽपि सान्त्वयोरभ्यवहाकारणम्।
अन्तरा त्वां मां च कमण्डलु।
न च प्रणोत्तनमन्तरा बालकः स्वप्नेऽपि चेष्टते।
हरिमन्तरेण न सुखम्।
निलेभ्य प्रतियन्ति साधवः।

सगुम्फितम परिदोषीहृदः ।
यात्रिमया न परिदोषा रम्या क्रमो ।
नारायणाय पद्मसम्बोधाय ।
कनक मणिमा भाव कच विशालोयाम् ।
कान्त पशु प्रदारया फर्न यहाँलि नीलपः ।
मालिक को मरन्नानाममानस्य मधुकाम् ।

इच्छया कुरुते विहितिच्छया विमतुमयम् ।
कोटरा मरणाद्वाक्ते याग कोष्ठमर्कोदिव ॥
[1]सरि प्रधान सुधीर मानकन्द्र मदाम वा ।
प्रमान भरताद् भोगान् लक्ष्मण मधुरोष्ठ वा ॥
सुमनपुष्पिता पृथ्वी शिशिरवलि मराण्य ।
कूच्च कृतविप्राय पश्च कामलि धीजुम् ॥
सुधा दुग्धानां सुर भवन्ति
स निगुल माध्य मवन्ति जीवाः ।
सुधासुतोया प्रभवन्ति मद्याः
समुद्रमाभाग्य भयान्यथेषा ॥
यस्त्रातेऽद्रीन् व्यपरोम समुद्रमतराम च ।
सा हरीति यन्न् रामसुतामिहुण्मवरतुम ॥
मद्वैव सुसद्वपामयान् त्रिनिशद्गारित म यावन्नाक ।
समय कुष रात्राभ् मे गतनीरस्य पुन किमोमधे ॥

ज्ञानकी सम्पत्ति बहुत कल्याणकी बढ़ाती है ।
प्रभुको चाहिये कि वह अपने अच्छे कामोंसे हितको प्रसन्न करें ।
दवोंमे समुद्रसे अमृतको यथा ।

१ । गतदर्क मालके बाद यह रामकी सागरके प्रति उक्ति है ।

मैंने यह पुस्तक बड़े दाममें खरीदी है।

जब वह अपना वृत्तान्त कह रही है, उसे बीचमें मत रोको।

"आपत्तियाँ अकेली नहीं आतीं" इस कहावतकी सचाई आज मुझे मालूम पड़ी।

बलमें भीम दुर्योधनसे कम नहीं था।

तुमको प्रतिदिन क्षीण होते देख मैं खिन्न हूँ।

शब्दार्थ।

अनुक्रम (अनुक्रम) पु—क्रम

अन्तक (अन्तक) पु—यम

अभय (अभयम्) न—निर्भयता

चिन्ताकारण (न) (तत्पु० चिन्ता—स्त्री—चिन्ता + कारण —न)—चिन्ताका कारण

एकदेश (एकदेश) पु—भाग

आजीविका (स्त्री)—रोजी

कमण्डलु (पुं, न)—कमण्डलु

कल्याणपरम्परा (स्त्री तत्पु०, कल्याण—न सुख + परम्परा स्त्री पङ्क्ति)—सुखोंकी पंक्ति

क्रीडनक (क्रीडनकम्) न—खिलौना

क्षिति (स्त्री)—पृथ्वी

क्षीरनिधि (पु तत्पु०)—दुग्ध-समुद्र

चाणक्य (चाणक्य) पु—चन्द्रगुप्तके मन्त्रीका नाम

जनप्रवाद—(पु तत्पु०, जन—पु + प्रवाद—पु उक्ति)—लोगोंकी उक्ति, कहावत

जव (जव) पु—वेग

तिल (तिल) पु—तिल

तोय (तोयम्) न—जल

दोष (दोष) पु—अपराध

भरत (भरत) पु—भरत

भुजङ्गपाश (पु)—कर्मधा०, भुजङ्ग—पुं—सर्प, पाश—पु)—सर्पोंका फन्दा

भोग (भोग) पुं—उपभोग, सुख

मधुव्रत (मधुव्रतः) पु (बहु०, मधु—न शहद + व्रत)—भ्रमर

मरन्द—पुष्परस
मरुत्सुत (ष० तत्पु०, मरुत्—पु० वायु + सुत—पु०—पुत्र)—वायुका पुत्र हनुमान्
मालवक—(मालवक) पु०—किसी पुरुषका नाम (यहां विदूषकका नाम)
माष (माष) पु०—उरदी
मूल्य (मूल्यम्) न०—दाम
राक्षसेन्द्र (राक्षस॰ ष० तत्पु०, राक्षस—पु० + इन्द्र—पु० उत्तम, राजा)—राक्षसोंका राजा विभीषण
लक्ष्मण (लक्ष्मण) पु०—लक्ष्मण
वत्स (वत्स) पु०—गौका बच्चा
वासुदेव (वासुदेव) पु०—वसुदेवका पुत्र कृष्ण
शची (स्त्री)—इन्द्रकी स्त्री
शिलातल—(पु०, ष० तत्पु०, शिला स्त्री—पत्थर + तल—पु०, न०) पत्थरका तल
सुग्रीव (सुग्रीव) पु०—सुग्रीव
सुचरित (न० कर्मधा० सुष्ठु चरितम्) सच्चरित्र
सुधा (स्त्री)—अमृत
सुयोधन (सुयोधन) पु०—दुर्योधन
स्वप्न (स्वप्न) पु०—स्वप्न

विशेषण।

अपथ्य—रोगीके अयोग्य
आरोग्यकाम (बहु०, आरोग्य—न० नीरोगता + काम—पु० इच्छा)—नीरोगता चाहनेवाला
आर्य—पूज्य
कृतविद्य (बहु०, कृत—की हुई + विद्या—स्त्री)—जिसने विद्या प्राप्त की, पण्डित
गतजीव (बहु०, गत = गमु + त + जीव—पु०)—मृत
[1]गुणज्ञ (उपपद०, गुणं जानातीति गुणज्ञः)—गुणोंको जाननेवाला
दुरात्मन् (बहु०, दुर् खराब + आत्मन्—पु०)—दुष्ट
निर्गुण (बहु०, निर्गता गुणा यस्मात् स निर्गुणः)—गुणहीन

---

1 यह एक तत्पुरुषका प्रकार है जो उपपद कहाता है, यह मना गया धातुसे बना होता है।

मलिम्लुच—चान्द्रमासका अधिक मास मलमासवाला

वितनु (बहु०, विगता तनुर्यस्य स वितनु वि+तनु—स्त्री शरीर) शरीरहीन

आ + त)—आरब्ध

सुरभिकुसुमित (तत्पु०)—सुगन्धित फूलोंसे युक्त

सुभ्रातृ—अतिभ्रातृयुक्त

अव्यय।

अनुदिवसम् (अव्य)—प्रतिदिन

अन्तरा—१ बीचमें, २ बिना (यह द्वितीयाके साथ आता है)

अन्तरेण—बिना (यह द्वितीयाके साथ आता है)

आशु—शीघ्र

आसाद्य (आ+सद् का णि०—का ल्यप् प्र०)—पाकर

एव—केवल

वा—या

यत्कृते (तत्पु०, यस्य कृते, यद्—जो + कृते अव्य लिये)—जिसके लिये

सहसा—अकस्मात्

सेवितुम् (सेव्-आ आ + तुम् —सेवा करनेके लिये

धातु।

अय् (अयति आदि पर)—जाना

उप+स्था (उपतिष्ठति—आदि पर)—पास रहना

क्री (¹क्रीणाति,—णीते आदि उभ —खरीदना, विपरि अव (आत्म०)—बेचना

१। विक्रीणीते परिक्रीणीते अवक्रीणीते—परि वि अवपूर्वक क्री धातु आत्मने होता है। उभयपदी धातुओंका जब क्रियाका फल कर्ताको मिलनेवाला हो तब आत्मनेपद, जब वह अन्यको होनेवाला हो तो परस्मैपद होता है। परि वि, अवपूर्वक क्री धा क्रियाका फल अन्यगामी होनेपर भी आत्मनेपदी होता है।

नु पर ।

	लट् ।				लङ् ।	
प्र पु	नौति	नुतः	नुवन्ति	प्र पु	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
उ पु	नौमि	नुवः	नुमः	उ पु	अनवम्	अनुव	अनुम

नियम —

२। नौति, अनवम्—व्यञ्जनादि विकारक प्रत्ययोंके पूर्व नु के उ को वृद्धि होती है।

३। नुवन्ति, अनुवन्—स्वरादि अविकारक प्रत्ययोंके पूर्व अन्तिम उ या ऊ को उव् होता है।

इ—पर ।

	लट् ।				लोट् ।		
प्र पु	एति	इतः	यन्ति	प्र पु	एतु	इताम्	यन्तु
उ पु	एमि	इवः	इमः	उ पु	अयानि	अयाव	अयाम

	लङ् ।			विधिलिङ् ।		
प्र पु	ऐत्	ऐताम्	आयन्	इयात्	इयाताम्	इयुः
उ पु	आयम्	ऐव	ऐम			

आ+इ+अन्=आ+य्+अन् (यन्)=आयन्। आ+इ+अम्=आ+य्+अम्=आ+यम्=आयम्।

नियम —

४। स्वरादि अविकारक प्रत्ययोंके पूर्व इ धातुके इका य् होता है।

अधि इ—आ ।

	लट् ।			लोट् ।		
प्र पु	अधीते	अधीयाते	अधीयते	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
उ पु	अधीये	अधीवहे	अधीमहे	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

लङ् । विधिलिङ् ।

प्र पु अध्यैत अध्यैयाताम् अध्यैयत

उ पु अध्यैयि अध्यैवहि अध्यैमहि अधीयीय अधीयीवहि अधीयीमहि

अधीयते—इ + अते = इयते, अधि + इयते = अधीयते ।

अध्यये—इ + ए = ए + ये = अय, अधि + अये = अध्यये ।

अध्यैयि—आ (आगम) + इ + इ = आ + इयि = ऐयि,
अधि + ऐयि = अध्यैयि ।

अधीयीय—इ + ईय = इयीय, अधि + इयीय = अधीयीय ।

नियम —

५ । स्वरादि अविकारक प्रत्ययके पर अधि + इ के इ को इय् होता है ।

ब्रू—वच वत ।

	पर ।			आत्म ।	
प्र पु	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते

लोट्

	पर ।				आ ।	
म पु	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत	उ पु	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ् ।

	पर ।			आत्म ।		
प्र पु	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत
उ पु	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

विधिलिङ्—प्र पु ए व ब्रूयात्—ब्रुवीत ।

नियम —

६ । ब्रवीति, ब्रवीतु, अब्रवम्—अब्रवीदादि विकारक प्रत्ययके पूर्व ब्रूको ई आगम होता है ।

वर्त ।

प्र पु	आह	आहतुः	आहुः
म पु	आत्थ	आहथुः	

७। एक ब्रुञ् धातु था, जिसका अर्थ 'कहना' है, ऊपर लिखे हुए पांच रूप होते हैं। प्राचीन इनको ब्रूके रूप कहते हैं।

शी—आत्म ।

	लट् ।			लोट् ।		
प्र पु	शेते	शयाते	शेरते	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
उ पु	शये	शयावहे	शेमहे	शयै	शयावहै	शयामहै

	लङ् ।			विधिलिङ् ।		
प्र पु	अशेत	अशयाताम्	अशेरत	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्

नियम —

८। सब सार्वधातुक लकारोंमें शीका ई को गुण होता है, विधिलिङ्को छोड़कर इतर सब सार्वधातुक लकारोंमें प्र पु के बहुवचनमें र् आगम होता है, अर्थात् रते, रताम् तथा रत—ये प्रत्यय हैं।

सू—आत्म ।

	लट् ।				लोट् ।		
	ए व ।	द्वि व ।	ब व ।		ए व ।	द्वि व ।	ब व ।
उ पु	सुवे	सुवहे	सुमहे	उ पु	सुवै	सुवावहै	सुवामहै

	लङ् ।				विधिलिङ् ।		
प्र पु	असूत	असुवाताम्	असुवत	प्र पु	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्

नियम —

९। सुवै, सुवावहै, सुवामहै—सू धातुके लोट्के उत्तमपुरुषके एक वचन द्विवचन तथा बहुवचनके प्रत्यय अविकारक हैं।

हन् पर ।

	वर्त ।			लोट् ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	हन्ति	हतः	घ्नन्ति	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
म पु	हंसि	हथः	हथ	जहि	हतम्	हत
उ पु	हन्मि	हन्वः	हन्मः	हनानि	हनाव	हनाम

	लङ् ।			विधिलिङ् ।		
प्र पु	अहन्	अहताम्	अघ्नन्	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः

नियम —

१०। अनुनासिकादि वा अन्तःस्थादि को छोड़ व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्ययों से पूर्व हन् के न का, तथा स्वरादि अविकारक प्रत्ययों से पूर्व हन् के उपान्त्य अ का लोप होता है। न् से पूर्व ह् को घ् होता है, हन् के लोट् के मध्यम पु के ए व का रूप जहि है।

विद् पर ।

	वर्त ।					
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति	वेद	विदतुः	विदुः
म पु	वेत्सि	वित्थः	वित्थ	वेत्थ	विदथुः	विद
उ पु	वेद्मि	विद्वः	विद्मः	वेद	विद्व	विद्म

	लोट् ।			लोट् ।		
प्र पु	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु	विदाङ्करोतु	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुर्वन्तु
म पु	विद्धि	वित्तम्	वित्त	विदाङ्कुरु	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुत
उ पु	वेदानि	वेदाव	वेदाम	विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

लङ् । विधिलिङ् ।

प्र पु अवेत्, द् अविताम् अविदुः

म पु अवः अवेत्, द् अवित्तम् अवित्त

उ पु अवेदम् अविद्व अविद्म विद्याम् विद्याव विद्याम

११। विद् धातुके वर्तमानमें विकल्पसे लिट् या परोक्षभूतके प्रत्यय लगा कर रूप बनाये जाते हैं। ये प्रत्यय इस प्रकार हैं —

	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	अ	अतुस्	उस्
म पु	थ	अथुस्	अ
उ पु	अ	व	म

इनमें एकवचन विकारक तथा द्विवचन और बहुवचन अविकारक हैं।

१२। विद् धातुके लोट्के रूप विकल्पसे आम् लगाकर उसके आगे कृ धातुके लोट्के रूप जोड़नेसे बनाये जाते हैं।

१३। अवे, अवेत् द्—दकारान्त धातुओंके द् को लङ्के म पु के ए व में स् और विकल्पसे विसर्ग होता है।

१४। अविदुः—विद्के लङ्के प्र पु के ब व का प्रत्यय उस् है।

१५। विद्धि—अनुनासिक या अन्तःस्थको छोड़ किसी व्यञ्जनके बाद आनेवाले लोट्के म पु के ए व हि को, तथा हु धातुके लोट्के म पु के ए व हि को धि होता है (हु—जुहुधि पर)।

नास्ति सन्देहो महाप्रभावोऽयं राजर्षिः ।

यः पृष्टः सन् सत्यं मितं च ब्रूते स भृत्यो महीभुजामर्हः ।

अनेनाङ्गुलीयकेनाभिनवकिरणान्तरेण कुसुमित इव तेऽग्रहस्तो भाति ।

प्रत्यहमुत्थाय ब्राह्मणा वेदमधीयीरन् ।

किं ब्रूथ—कुतोऽप्यायासि तात इति । आः क्षुद्र समरभीरो ! कथमेव प्रलपतां च सहस्रधा न दीर्णमनया जिह्वया ।

तमेव (परमात्मानम्) वि[1]दित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।

अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्
विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम् ॥

महदपि परुषं च शीतलं समगात् ।
क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ।
कपिलो यदि वाञ्छति कणादो नेति का प्रमा ।

यस्याः कुसुमशय्याऽपि कोमलाङ्ग्या रुजाकरी ।
साऽधिशेते कथं देवी ज्वलन्तीमधुना चिताम् ॥
किं नु मे स्यादिदं कृत्वा किं नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा ॥
सरस्वतीं सदा वन्दे यदुपास्ति समुत्थिताः ।
काव्यानि कुसुमानीव सुवते कविपादपाः ॥
कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम् ।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः ॥
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ॥

१। अति एति के साथ अन्वित है, अत्येति=पार करता है मृत्युको लांघता है मुक्ति पाता है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें कभी कभी उपसर्ग धातुसे अलग किये जाते हैं।

विपरीतेषु कालेषु परिक्षीणेषु बन्धुषु।
[1]त्राहि मां कृपया कृष्ण शरणागतवत्सल॥
नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥

यह आश्रम धन्य है जिसका यह प्रभु है।
हे भगवन्! मुझ पापीको भयानक नरकसे छुड़ाओ।
बालकोंको प्रातःकाल उठना चाहिये और शास्त्रोंको पढ़ना चाहिए।
कहिये मुझे किस मार्गसे पञ्चवटीको जाना चाहिये।
मुनिने कहा, 'महाराज, हम लोग घर जानेमें सुखी हैं'।
योग्य समयपर आरम्भ किये गये काम सफल होते हैं।
आह! यह खूब कहा गया है कि दूसरोंका दुःख हम लोगोंका दुःख नहीं है।
तुमने व्याकरण पढ़नेके लिये अपने लड़केको काशी भेजकर अच्छा काम किया।

शब्दकोष।

अङ्गुलीयक (अङ्गुलीयकम्) न—अंगूठी	अङ्क (अङ्कः अम्) पु, न—गोद
अग्रहस्त (अग्रहस्तः) पु—हाथका आगेका भाग (कर्मधा०, अग्रो हस्तश्च अग्रहस्तः)	अयन (अयनम्) न—युक्ति
	अर्जुन (अर्जुनः) पु—अर्जुन
	उपास्ति (स्त्री)—उपासना

१। त्राहि यह आर्षप्रयोग है। यह 'त्रायस्व' के लिये आया है।

कणाद (कणाद) पु—वैशेषिक दर्शनके कर्ता

कपिल (कपिल) पु—कपिलमुनि

कवीन्द्र (तत्पु) कवि पु + इन्द्र पु ०)—कवियोंमें श्रेष्ठ

कारणशासन (तत्पु०, कारण न + शासन—पु विरुद्ध, जिसने कारण वश शासनानुसार धारण किया।

किरणकेसर (किरणकेसर तत् पु न कर्म०, किरणा एव केसराणि, किरण पुं केसर पुं, न)—किरणरूपी केसर

खग (खग) पु—पक्षी

गङ्गा (स्त्री)—गंगा

गृहिणी (स्त्री)—स्त्री

गोचर (गोचर) पु—मार्ग

चक्र (चक्रम्) न—पहिया

नवता (स्त्री)—नयापन

पुरुषोत्तम (पुरुषोत्तम पु तत्पु, पुरुषेषूत्तम, पुरुष—पु + उत्तम)—विष्णु

प्रग्रह (प्रग्रह) पु—लगाम

प्रत्युषस् (न)—प्रात काल

प्रभाव (प्रभाव) पु—बड़प्पन, बल

प्रमा (स्त्री)—यथार्थज्ञान, वस्तु-तत्त्वज्ञान

भृत्य (भृत्य) पु—नौकर

महीभुज् (पु)—पृथ्वीपालक, राजा

मुनि (पु)—ऋषि

रथिन् (पु)—सारथि

राजर्षि (पु) (राजन् पुं + ऋषि)—ऋषितुल्य राजा

विक्रम (विक्रम) पु—पराक्रम

विषय (विषय) पु—इन्द्रियोंका विषय

शय्या (स्त्री)—बिछौना

शरण (शरणम्) न—रक्षक

शार्ङ्ग (शार्ङ्गम्) न—विष्णुका धनु

सन्देह (सन्देहः) पु—संशय

समर (समर) पु—युद्धक्षेत्र

हय (हय) पु—घोड़ा

हेतु (पु)—कारण

विशेषण।

अमित (नञ्ष०, अ + मित = अ + मित)—अपरिमित

अर्ह—योग्य

[illegible]—घोड़ा

आयुष्मत्—चिरजीवी
उद्भिन्न (उद्+भिद्+त) खुला हुआ, प्रकट
कुसुमित—पुष्पित
कोमलाङ्गी स्त्री (बहु कोमल—विशे० + अङ्ग—न कोमल-शरीरवाली
सत्त्व—जीव
ज्वलत् (स्त्री ज्वलन्ती—ज्वल् भ्वा पर का शतृ कृ) जलता हुआ
धर—पकड़नेवाला, धारण करनेवाला
परन्तप—शत्रुओंको ताप देनेवाला
परिक्षीण (परि+क्षि+त)—नष्ट
भीरु—डरपोक
मित (मा+त) परिमित
रामायणी (स्त्री)—रामायणकी
रुजाकर (स्त्री करी) (रुजा स्त्री दुःख) दुःख देनेवाला
वत्सल—प्यारा, प्रेमी
विचारमूढ (तत्पु०)—मूर्ख
व्यतीत (वि+अति+इ+त)—बीता हुआ
शान्त (शम्+त)—जितेन्द्रिय
शीतल—ठंढा, सर्द
समुच्छ्रित (सम्+उद्+श्रि+त) आश्रित
सर्वज्ञ (उपपद स०, सर्वं जानातीति) सब जाननेवाला

अव्यय।

सम्यक्—अच्छीतरह
सुखम्—अनायासही
हा—हाय।
हातुम् (हा+तुम्) छोड़नेके लिये

धातु।

अधि+इ (अधीते अ आ)—पढ़ना
इ (एति अ पर)—जाना, उपके साथ—आना
चिन्त (चिन्तयति—चु पर)—सोचना, सम्के साथ—सोचना
नु (नौति अ पर)—स्तुति करना
ब्रू (ब्रवीति ब्रूते अ उभ)—बोलना
भा (भाति अ पर)—मालूम होना, प्रतिके साथ—मालूम होना
विद् (वेत्ति अ पर)—जानना

¹ शी (शेते—अ आ)—लेटना, अर्थात् सोना

सू (सूते अ आ)—जन्म देना

हन् (हन्ति—अ पर)—मारना, नष्ट करना

पाठ २८ ।

अदादिगणके धातु ।

माणवकं धर्मं शास्ति गुरुः—गुरुजी माणवकको धर्मका उपदेश करते हैं (शास् द्विकर्मक है)।

अद्यपि प्रभृति मङ्गलकाले रोदितुं नोचितं ते—आजसे पीछे मङ्गलके समय तुमको रोना उचित नहीं है।

हे दुराचारेन्द्रजित्! यदि काकुत्स्थं नेडिषे तर्हि न प्राणिषि मायानां च नेशिषे—रे दुष्ट इन्द्रजित्! यदि तुम रामकी स्तुति न करोगे तो न जियोगे और न कपटोंके प्रभु होगे।

किमिति जोषमाध्वे—तुमलोग चुप क्यों बैठे हो?

हे राजन्! भवन्तं सर्वाः प्रजाः स्तुवन्ति—हे महाराज! आपकी सब प्रजायें स्तुति करती हैं।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्—मैं आपका शिष्य हूं, मुझ शरणागतको पढ़ाइये।

वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः—भागुरि अव तथा अपि इन दो उपसर्गोंके अ का लोप चाहते हैं। अत एव अकारका लोप विकल्पसे होता है। एवं [illegible] दोनों प्रकारके रूप मिलते हैं। जैसे [illegible] पिधानम् [illegible] अवगाह वा वगाह (स्नान)।

१। ¹ तथा आम का आधार कम होता है।

इस पाठमें कुछ और इकारान्तादि धातु दिये गये हैं।

	ईश—आ ।			ईड्—आ ।		
	लट			लट् ।		
प्र पु	ईष्टे	ईशाते	ईशते	ईट्टे	ईडाते	ईडते
म पु	ईशिषे	ईशाथे	ईशिध्वे	ईडिषे	ईडाथे	ईडिध्वे
	लङ			लङ् ।		
म पु	ऐष्ठाः	ऐशाथाम्	ऐड्ढ्वम्	ऐट्ठाः	ऐडाथाम्	ऐड्ढ्वम्

नियम,—

१। ईशिषे, ईडिषे, ऐड्ढ्वम्—ईश तथा ईड धातुओंसे स् तथा ध्‌से आरम्भ होनेवाले प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है, पर ध्वम (लङ् म पु ब व) के पूर्व नहीं होता।

ईश्+त=ईष् त=ईष+ट=ईष्ट, ईड+त=ईड+त=ईड्+ट=ईट्ट, ऐश+ध्वम्=ऐष्+ढ्वम्=ऐड्+ढ्वम्=ऐड्ढ्वम्, ईश्+से=ईष्+स=ईष्+षे=ईक्षे, परन्तु ईश्+ध्वे=ईशिध्वे—

(अ) वह्, दुह्, गुह्—वश्, भ्रस्ज्, सृज्, मृज्, यज्, राज्, भ्राज् तथा शकारान्त और छकारान्त धातुओंके अन्तिम वर्णको, अनुनासिक या अन्तःस्थको छोड़ कोई व्यञ्जन आगे रहनेपर, अथवा पदके अन्तमें होनेपर, ष् होता है।

यह एक सामान्य नियम है। ऐसे २ सामान्य नियम बड़े उपयोगी हैं और अनेक रूपोंके बनानेमें सहायता देते हैं। ये (अ), (आ), इत्यादिसे चिह्नित हैं।)

आ+ईश्+ध्वम्=आ+ईष्+ध्वम्=आ+ईड्+ध्वम्=आ+ईड्+ढ्वम्=ऐड्ढ्वम्।

(आ) पदका अनुनासिक वा अन्तःस्थसे भिन्न कोई व्यञ्जन, आगे

तृतीय वा चतुर्थ वर्ण आगे रहने पर, अपने वर्गके तृतीय वर्णमें बदल जाता है, ऐसी अवस्थामें ष् को ड् होता है।

(१२ वे पाठमें दुग्ध इत्यादि रूपोंको देखो।

रुद्—पर लट्।   जक्ष्—पर लोट्।

	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु

स्वप्—पर लङ्।

प्र पु	अस्वपत्, ॰पीत्	अस्वपिताम्	अस्वपन
म पु	अस्वपः ॰पीः	अस्वपितम्	अस्वपित

जक्ष्—पर लङ्।

प्र पु	अजक्षत् ॰क्षीत्	अजक्षिताम्	अजक्षु
म पु	अजक्षः ॰क्षीः	अजक्षितम्	अजक्षित

जक्ष्—पर विधि।   प्र+अन्—पर विधि।

प्र पु जक्ष्यात्—इत्यादि।   प्र पु प्राण्यात्—इत्यादि।

२। रुद्, स्वप्, श्वस्, अन्, तथा जक्ष् धातुमें विधिलिङ्को छोड़कर सब व्यञ्जनादि प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है। जक्ष्में प्र पु के ब व में अनुनासिकका लोप होता है, तथा लङ्के प्र पु के ब व में उस् लगता है।

स्तु—सक।

पर—वर्त।

प्र पु	स्तौति स्तवीति	स्तुतः स्तुवीतः	स्तुवन्ति

आत्म।

प्र पु	स्तुते स्तुवीते	स्तुवाते	स्तुवते

पर लङ् ।

उ पु	अस्तवम्	अस्तुव अस्तुवीव	अस्तुम अस्तुवीम

आत्म लङ् ।

उ पु	अस्तुवि	अस्तुवहि अस्तुवीवहि	अस्तुमहि अस्तुवीमहि

पर लोट् ।

म पु	स्तुहि स्तुवीहि	स्तुतम् स्तुवीतम्	स्तुत स्तुवीत

आ—लोट् ।

उ पु	स्तवै	स्तवावहै	स्तवामहै
विधि प्र पु ए व —	स्तुयात् स्तुवीयात्		स्तुवीत

इसी प्रकार रौति—रवीति इत्यादि ।

६। रु तथा स्तु में व्यञ्जनादि प्रत्ययोंके पूर्व विकल्पसे ई आगम होता है, जब यह आगम नहीं होता तो २० वें पाठके १२ नियमके अनुसार कार्य होता है ।

शास् पर ।

	लट् ।			लोट् ।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	शास्ति	शिष्टः	शासति	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
म पु	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट

लङ् ।

प्र पु	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
म पु	अशाः—अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट

विधि।

प्र पु शिष्यास्—इत्यादि।

चकास् पर।

लट्।

ए व द्वि व ब व ए व द्वि व ब व

प्र पु चकास्ति चकास्तः चकासति उ पु चकास्मि चकास्वः चकास्मः

लोट्।

प्र पु चकास्तु चकास्ताम् चकासतु म पु [1]चकाधि चकास्तम् चकास्त

लङ्।

म पु अचकाः
अचकात्-द् } अचकास्तम् अचकास्त

विधि—चकास्यात्—इत्यादि।

जागृ पर।

लट्।

प्र पु जागर्ति जागृतः जाग्रति म पु जागर्षि जागृथः जागृथ

लोट्।

प्र पु जागर्तु जागृताम् जाग्रतु उ पु जागराणि जागराव जागराम

लङ्। विधि।

प्र पु अजागः अजागृताम् अजागरुः जागृयात्—इत्यादि।

द्विष्—पर लङ्। या—पर लङ्।

प्र पु अद्वेट्-ड् अद्विष्टाम् अद्विषन्-षुः अयात् अयाताम् अयान्-युः

आस्—आत्म लट्। वस्—आत्म लङ्।

म पु आस्से आसाथे आध्वे अवस्थाः अवसाथाम् अवद्ध्वम्

१। कुछ वैयाकरणोंके अनुसार 'चकाद्धि' भी होता है पर भाष्यकार पतञ्जलिके अनुसार चकाधि यही शुद्ध रूप है।

नियम —

४। शिष्ठ, शिष्ट — अनुनासिकभिन्न झलादि कित्कारक प्रत्ययोंके पूर्व शास्‌के आ का इ हो जाता है। शाधि लोट्के मध्यमपुरुषके एकवचनका रूप है।

(क) शिष्ट, उषित — शास्, वस, तथा घस् के स् को ष् होता है यदि अ या आ को छोड़ उसके पूर्व कोई स्वर या कवर्गीय वर्ण हो। घस्‌के उदाहरण परोक्षभूतमें आवेंगे।

५। जाग्रति अजाग्रुः — शास्, जक्ष, चकास्, जागृ, और दरिद्रा धातुके वर्तमान तथा लोट्के प्र पु के बहुवचनमें अनुनासिकका लोप होता है, और लङ्के प्र पु के ब व में उस् होता है।

६। अद्विषन् अद्विषुः, अयान् अयुः — द्विष् तथा आकारान्त धातुओंके लङ्के प्र पु के ब व में विकल्पसे उस् होता है।

७। अजागरुः अयुः — उस्के पूर्व धातुके अन्त्यस्वरको गुण होता है, और आकारान्त धातुओंके आकारका लोप होता है।

(ख) आध्वे, अचकाध्वम् — धकारादि प्रत्यय आनेपर धातुके अन्तिम स्‌का लोप होता है।

(ग) अचकाः — चकाद्, अचकात् — धातुके अन्तिम स्‌को लङ्के म पु के ए व में विकल्पसे तथा लङ्के प्र पु के ए व में नित्य द् या त् हो जाता है।

दरिद्रा — पर।

	वर्त।			लोट्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	दरिद्राति	दरिद्रितः	दरिद्रति	दरिद्रातु	दरिद्रिताम्	दरिद्रतु

	लङ्।			विधिलिङ्।
प्र पु	अदरिद्रात्	अदरिद्रिताम्	अदरिद्रुः	प्र पु दरिद्रियात् — इत्यादि।

नियम —

८। दरिद्राके अन्तिम आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने-पर इ होता है, तथा स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है।

अद्—पर।

	वर्त।				लोट्।	
प्र पु	अत्ति	अत्तः	अदन्ति	म पु	अद्धि	अत्तम्	अत्त

लङ्।

प्र पु	आदत्	आत्ताम्	आदन्	म पु	आदः	आत्तम्	आत्त

विधि।

प्र पु अद्यात्—इत्यादि।

नियम —

९। आद, आदत्—अद्‌को प्र पु तथा म पु के एकवचनमें अ आगम होता है।

वच्—पर। लोट्।

वर्त।

प्र पु	वक्ति	वक्तः	रूप नहीं होता	वक्तु	वक्ताम्	वचन्तु
म पु	वक्षि	वक्थः	वक्थ	वग्धि	वक्तम्	वक्त

लङ्।

प्र पु	अवक्-ग्	अवक्ताम्	अवचन्
उ पु	अवचम्	अवच्व	अवच्म

विधि।

प्र पु वच्यात्—इत्यादि।

१०। वच् एक लोपी धातु है। कुछ लोगोंके अनुसार इसके वर्तमानके प्र पु के ब व का रूप नहीं होता, औरोंके मतके अनुसार सब

लकारोंके प्र पु के म व में इसका रूप नहीं होता, और अन्य लोगोंके मतमें किसी पुरुषके उ व में इसका रूप नहीं होता।

मृज्—प।

	वर्त्त।			लोट्।		
प्र पु	मार्ष्टि	मृष्टः	मृजन्ति मार्जन्ति	मृड्ढि	मृष्टम्	मृष्ट
म पु	मार्क्षि	मृष्ठः	मृष्ठ	मार्जानि	मार्जाव	मार्जाम

	लङ्।			विधि।
प्र पु	अमार्ट्-ड्	अमृष्टाम्	अमार्जन्	मृज्यात् —इत्यादि

नियम —

(क) विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर मृज्के ऋको नित्य वृद्धि आदेश होता है, तथा अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर विकल्पसे।

मृज्+सि=मार्ज्+सि=मार्ष्+सि (ख)=मार्क्+सि (ष नीचे) =मार्क्+षि=मार्क्षि, मृज्+हि=मृष्+हि (पाठ २० वां, नियम १५)=मृष्+धि (ग)=मृड्+धि (घ)=मृड्+ढि=मृड्ढि।

(ख) ष् तथा ढ् को स् आगे रहने पर क होता है।

चक्ष्—आ।

	वर्त्त।			लोट्।		
	ए व	द्वि व	ब व	ए व	द्वि व	ब व
प्र पु	चष्टे	चक्षाते	चक्षते	चष्टाम्	चक्षाताम्	चक्षताम्
म पु	चक्षे	चक्षाथे	चड्ढ्वे	चक्ष्व	चक्षाथाम्	चड्ढ्वम्
उ पु	चक्षे	चक्ष्वहे	चक्ष्महे	चक्षै	चक्षावहै	चक्षामहै

	लङ्।			विधि।
प्र पु	अचष्ट	अचक्षाताम्	अचक्षत	चक्षीत—इत्यादि
म पु	अचष्ठाः	अचक्षाथाम्	अचड्ढ्वम्	

वश्—पर ।

		लट् ।			लोट् ।	
म पु	वक्षि	उष्ठः	उष्ठ	उड्ढि	उष्टम्	उष्ट
		लङ् ।			विधि ।	
प्र पु	अवट्-ड्	औष्टाम्	औशन्	उश्यात्	उश्याताम्	उश्युः

वश्+हि (११ नीचे)=वष्+हि (अ)=उष्+धि (पाठ २७ वां, नियम १५)=उष्+ढि=उड्ढि (आ), वश्+त=उश्+त=आ+वश्+त=आ+उष+त=आ+उष्+ट=आ+उष्ट=औष्ट।

११ अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर वश्के श को ष होता है।

घस्+ध्वे=घष्+ध्वे (१० नीचे)=घड्+ढ्वे (आ)=घड्+ढ्वे=घड्ढ्वे।

घस्+से=घष्+से (१० नीचे)=घक्+से (इ)=घक्+षे=घक्षे।

(१२) जब कोई धातु संयोगान्त होता है जिस संयोगका प्रथम वर्ण स् या क् हो, तो उस स् या क् का लोप होता है, यदि उसके आगे अनुनासिक या अन्तस्थको छोड़ और कोई व्यञ्जनादि प्रत्यय हो, वा वह पदके अन्तमें हो।

दुष्यन्त! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। परित्यक्तमत्सरेणानुकम्पितासि दैवेन। आर्यपुत्र खल्वेष।

देव! समाश्वसिहि समाश्वसिहि। कथमद्यापि नोच्छ्वसिति। हा प्रियसखि सीते! क्वासि? समाश्वासयात्मनो जीवितेश्वरम्।

एष धन्यानामरात् विज्ञायमुदय इति मन्ये नयने समाश्रये प्रसुवन्ति।

हा नाथ! जीवितनिबन्धन! आवेदय क मामेकाकिनीमशरणामः करुणां! त्रिदश यासि?

च यस्यान्यतरविशिष्टः सापेक्षसाकाङ्क्षत्वात् ग्रेति स कुपदोऽयं च यस्यान्यतरविशिष्टता । विशिष्टा ग्रेति स प्राकृत ।

[1]आगमात् पृष्ट कार्षिणशत् व्याचष्टे ।
ब्राह्मणोऽयमहं मौनी ब्रह्मचारी च मे पिता ।
माता तु मम वन्ध्यासीदपुत्रश्च पितामहः ॥—
इत्येव वन्ध्यो व्याघात ।

ज्ञाता ज्ञातो वसुहृत्कृष्ट सर्त्ति रथ प्रचरती ।
धक्ति सन्मान्तामीति मन लिन्दान्कारणम् ॥
शरिद्भुति चियद्धृद् न सुखमकान्तयकारका ।
यन्ध्याभिसमहद्भिर्लाद्धि सौय प्रचरत ।
अर्पानाभौऽपि रथ सपर्भव च भिराभोऽमर्षे वायन्यम् ।
न वृद्धिरगु मन्त्यात्रा या वृद्धि वयमावर्देत ॥
तयोऽपि वहु मन्त्यज्ञो य नया वृद्धिमावहेत् ॥
न च तयो महाराज म तयो वृद्धिमावहेत् ।
तयः स विद्द मन्त्यज्ञो य लब्धा बहु मानयत् ॥
वमहा गुणत केचिद् भजन्ति धनतोऽपरे ।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय ॥

---

१ । भवो गम भवति वजा याम कीर्ते साथवक धम शक्ति सान्धका धम क्रियते साथवक धम पृच्छति भाषवको धम पृच्छति वनि याचते धमवान्, वक्रियाचन वसुधाम् समुद्र भवति सु गम् सभुनी मन्त सुखम्—जो न रूप वह दृष्ट याध पच नच दध भक्ष, चि व याथ जि मस्त मुख यी तया इस कथकी और धातु विक्रम क ह—अर्थात् इनका टीकम लगत हैं। कालवि वा भावप्रयोगमें भी हु रूप तथा कत्ता प्रधानक्रम प्रथमाम रहता है तथा वन्य धातुधोंका गौणक्रम प्रथमामें रहता है दूसरा क्रम सप्तमा विभक्तिमें कहता है।

आगमात् पृष्ट इत्यादि—अर्थात् वह एक वस्तु पूछता है पर वह कहता है दूसरी।

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ॥
उभौ मे दक्षिणौ पाणी गाण्डीवस्य विकर्षणे ।
तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ॥
नलिनीदलगतजलमति तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् ।
विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥
पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे भवदुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ॥

भगवति ! प्रसन्न हो मुझ अनाथकी रक्षा करो ।

हे महाराज ! सब प्रजायें आपकी स्तुति करती हैं ।

हे महाराज ! आप सोचिये, विद्वान् लोग कहते हैं कि सम्बन्धियों-से आप मृतशरीरको जलाते हैं ।

उसने उस स्त्रीसे कहा, "रोओ मत, धीरज धरो"

हाय ! वह अबतक होशमें नहीं आता ।

मैं तुमसे एक बात पूछता हूं और तुम दूसरी कहते हो ।

वह हमारा शिक्षक है । वह सदा हमको योग्य उपदेश देता है और मैं जो कहता हूं उसके विरुद्ध कभी नहीं बोलता ।

राजा प्रजाओंका स्वामी है । उसको चाहिये कि वह अपनी प्रजाओंको अपना कर्तव्य सिखावे ।

शब्दार्थ ।

अतिशय (अतिशय) पु —अधिकता
अभिमान (अभिमान) पु —गर्व
आम्र (आम्र) पु —आमका पेड़
आर्यपुत्र (आर्यपुत्र) पु —पूज्य (श्वशुर) का पुत्र (पतिको सम्बोधनमें स्त्रियां प्रयोग करती हैं)

पूर्ववृत्त (न कर्म०, पूर्व क्रिया० + वृत्, वृत्+त) जो पहिले बीत चुका

परित्यक्त (परि+त्यज्+त)—छोड़ा हुआ

प्रपन्न (प्र+पद्+त)—प्राप्त

ब्रह्मचारिन्—ब्रह्मचर्यव्रत करनेवाला

ब्राह्मण—ब्रह्म या परमात्माको जाननेवाला

भवदुस्तार (तत्पु० भव—पु जन्म + दुस्तार त्रि०)—सतत जन्मके कारण पार करनेमें कठिन

मौनिन्—मौनव्रत करनेवाला

रत (रम्+त)—लगा हुआ

वन्ध्य (स्त्री वन्ध्या)—निष्फल, सन्ततिहीन

समस्त—सब

समन्वित (सम्+अनु+इ+त) अनुगत

समृद्ध (सम+ऋध—दि तथा स्वा पर +त)—पूर्ण

स्निग्ध—(स्निह् दि पर का वर्त कृ) प्रेम करनेवाला

धातु।

आ+वह् (आवहति भ्वा पर)—उत्पन्न करना

आस् (आस्ते अ आ)—बैठना

इ (एति अ पर)—जाना

ईड् (ईट्टे—अ आ)—स्तुति करना

ईश् (ईष्टे अ आ)—अधिकार करना

चक्ष् (चष्टे अ आ)—कहना, आ तथा प्र के साथ—कहना, वि+आ के साथ—व्याख्यान करना

दरिद्रा (दरिद्राति अ पर)—दरिद्र होना

मृज् (मार्ष्टि अ पर)—पोंछना, प्र के साथ—पोंछना

प्र+अन् (प्राणिति अ पर)—जीना

या (याति अ पर)—जाना

रुद् (रोदिति, अ पर)—रोना

वच् (वक्ति अ पर)—बोलना

वि+सृज् (विसर्जयति चु० उभ)—छोड़ना

ईश (आत्मने० पर)—अधिकार करना

श्वस् (श्वसिति अ पर)—साँस लेना, उत् के साथ—(उच्छ्वसिति)—ऊँचा साँस लेना, होशमें आना, सम्+आङ् के साथ—लम्बा साँस लेना, धीरज धरना

प्र+भू (भ्वादि पर)—सामर्थ्य करना, पहुँचना

स्तु (स्तौति स्तवीति स्तुते—स्तुवीते उभ०) स्तुति करना, प्र के साथ—स्तुति करना

अव्यय।

अकस्मात् (अव्य०, नास्ति कारणं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा) —बिना किसी कारणके

अथ—परन्तु

तद्वत्—उसके सदृश (तत् अव्य०+वत्—सदृश)

तर्हि—तो

यावज्जीवम् (अव्य०, यावज्जीवमेव यावज्जीवम् (अवधारणवाचक समास), यावत् अव्य०, जबतक +जीव—प्राण)—जबतक प्राण हैं तबतक

यावन्तम् (अव्य०, यावन्तोऽध्वा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, यावत् अव्य०, जबतक+अध्व—पथ)—दूर पथमें

विमुच्य (वि+मुच् का अव्यय रूप)—छोड़कर, बिना

हि—निश्चयसे

पाठ २९।

भ्वादि तथा अदादिगणके धातु।

गां दोग्धि पयः—वह गायसे दूध दुहता है।

(दुह् द्विकर्मक है।)

पिण्डमुत्सृज्य करं लेढि—वह खानेकी वस्तु छोड़कर हाथ चाटता है।

रिच्—उभ ।

लट् पर । आत्म ।

प्र पु रिणक्ति रिङ्क्तः रिञ्चन्ति प्र पु रिङ्क्ते रिञ्चाते रिञ्चते

लोट् पर । आत्म ।

म पु रिङ्ग्धि रिङ्क्तम् रिङ्क्त म पु रिङ्क्ष्व रिञ्चाथाम् रिङ्ग्ध्वम्

उ पु रिणचानि रिणचाव रिणचाम रिणचै रिणचावहै रिणचामहै

लङ् पर

म पु अरिणक्-ग अरिङ्क्तम् अरिङ्क्त

आत्म ।

म पु अरिङ्क्थाः अरिञ्चाथाम् अरिङ्ग्ध्वम्

विधि पर । आत्म ।

प्र पु रिञ्च्यात्—इत्यादि रिञ्चीत—इत्यादि

रिच् + ध्वम् = रिन् च + ध्वम् = रिन्ग् + ध्वम् (पाठ १३ का नियम २)=रिङ्ग्ध्वम् (चौथेके २ रे नियमका अनुसार न् का ङ् हुआ)।

२। पञ्च वर्गोंके म् तथा न् को उनके आगे रहनेवाले व्यञ्जनके (श ष, स् के सिवा) वर्गका अनुनासिक होता है (२२ वें पाठका २९ नियम देखो)।

भिद्—उभ ।

लट् पर । आत्म ।

प्र पु भिनत्ति भिन्तः भिन्दन्ति प्र पु भिन्ते भिन्दाते भिन्दते

लोट् पर ।

उ पु भिनदानि भिनदाव भिनदाम

आत्म ।

प्र पु भिन्ताम् भिन्दाताम् भिन्दताम्

लङ—पर।

प्र पु	अभिनत्-द्	अभिन्ताम्	अभिन्दन्
म पु	अभिनः अभिनत्-द्	अभिन्तम्	अभिन्त

आत्म।

प्र पु	अभिन्त	अभिन्दाताम्	अभिन्दत
म पु	अभिन्थाः	अभिन्दाथाम्	अभिन्द्ध्वम्

विधि—पर।

प्र पु　भिन्द्यात्—इत्यादि।

आत्म।

प्र पु　भिन्दीत—इत्यादि

भिद्+हि=भिनद्+हि=भिन्द्+धि (२० वां पाठ, १५ वां नियम)=भिन्द्धि।

छिद्—पर।

लट्।				लोट्।			
प्र पु	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति	म पु	छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त

लङ्।				विधि।
प्र पु	अच्छिनत्-द्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्	छिन्द्यात्—इत्यादि।
म पु	अच्छिनः अच्छिनत्-द्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त	

३। छिद+ति = छिन द+ति = छिनद्+ ति = छिनत्ति—यदि धातुमें अनुनासिक हो तो रुधादिगणके विकरणके पूर्व उसका लोप होता है।

४। अछिन—नत्, अछिनत्—लङ् के म पु के ए व में धातुके अन्तिम द को विकल्पसे त् होता है, तथा लङके प्र पु के ए व में नित्य।

५। छिद+हि=छिनद्+हि=छिन्द+धि=छिन्+धि (२८ [illegible]यम ६)=छिन्धि।

लिह्—चाटना।

पर। आत्म।

प्र पु लेढि लीढः लिहन्ति प्र पु लिक्षे लिहाथे लीढ्वे
म पु लेक्षि ,, लीढ उ पु लिहे लिह्वहे लिह्महे

लोट्—पर। आत्म।

म पु लीढि लीढम् लीढ उ पु लेहै लेहावहै लेहामहै

लङ्—पर।

प्र पु अलेट्-ड् अलीढाम् अलिहन्

आत्म।

म पु अलीढाः अलिहाथाम् अलीढ्वम्

विधि पर। आत्म।

प्र पु लिह्यात्—इत्यादि। लिहीत—इत्यादि।

लिह् + ति = लेह् + ति = लेढ् + ति = लेढ् + धि = लेढ् + ढि = लेढि, लिह् + से = लिढ् + से = लिक् + षे [२८ वाँ पाठ, नि (ए)] = लिक् = षे = लिक्षे, लिह् + ध्वे = लिढ् + ध्वे = लिढ् + ढ्वे = लीढ्वे।

अलिह् + त = अलेह् + त = अलेढ् + अलढ = अलेट्—ड्।

लिह् + त (भूत कृ प्रत्यय) = लिढ् + त = लिढ् + ध = लिढ् + ढ = लीढ।

लेढुम् (तुम), लीढ्वा (अव्य भू कृ)

लेढि, लीढः—

(अ) अनुनासिक या अन्तःस्थको छोड़ कोई व्यञ्जन आगे होनेपर, या पदके अन्तमें होनेपर धातुके अन्तिम ह् को ढ् होता है।

(आ) वर्गके चतुर्थ वर्णके, बाद आनेवाले प्रत्ययसम्बन्धी त तथा थ को ध होता है।

(इ) ढ् आगे रहने पर ढ् का लोप होता है और उसके पूर्व रहने-वाले स्वरको (ऋ के सिवा) दीर्घ होता है, यदि वह ह्रस्व हो।

दुह—उभ ।

लट—पर ।				आत्म ।		
म पु	धोक्षि	दुग्धः	दुग्ध	प्र पु	दुग्धे	दुहाते	दुहते
उ पु	दोह्मि	दुह्वः	दुह्मः	म पु	धुक्षे	दुहाथे	धुग्ध्वे

लोट—पर ।				आत्म ।		
म पु	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध	धुक्ष्व	दुहाथाम्	धुग्ध्वम्

लङ्—पर ।					आत्म ।		
म पु	अधोक्-ग्	अदुग्धम्	अदुग्ध	म पु	अदुग्धाः	अदुहाथाम्	अधुग्ध्वम्

विधि—दुह्यात्—दुहीत ।

दुह्+त=दुघ्+त=दुघ्+ध=दुग्ध (सू कृ), दुह्+तुम्=दोह्+तुम्=दोघ्+तुम्=दोघ्+धुम्=दोग्धुम्, दुह्+त्वा=दुग्ध्वा (प्रश्न सू कृ)—

(ई) दोग्धि, दुग्धे—दकारादि धातुओंके अन्तिम ह को घ् होता है, यदि उसके आगे अनुनासिक या अन्तःस्थके सिवा कोई व्यञ्जन हो, या पदके अन्तमें हो।

मुह्+त=मुढ्—घ्+त=मुढ्—घ्+ध=मुढ+ढ, तथा मुघ्+ध=मूढ तथा मुग्ध सह्+त=सढ्+त=सढ्+ध=सढ्+ढ=सोढ, नह्+त=नध्+त=नध्+ध=नद्ध, उपानह् (जूता)—उपानत्,द्—उपानहौ—उपानहः—उपानद्भ्याम्—उपानत्सु—

(उ) द्रुह, मुह—ष्णुह, ष्णिह, तथा स्निहके अन्तिम ह् को ढ् या घ् होता है, यदि उसके आगे अनुनासिक या अन्तःस्थको छोड़ कोई व्यञ्जन हो, या पदके अन्तमें हो। इसी प्रकार नह्में नह् के ह को ध् हुआ है।

(ऊ) सोढ, वोढुम्—ढ् आगे रहने पर जब ढ् का लोप होता है तो सह् तथा वह् धातुओंमें उसके पूर्व रहनेवाले स्वरको ओ होता है।

दुह् + सि = दोह् + सि = दोघ + सि (इ) = धोघ् + सि (ए नोच) = धोक + सि = धोक् + षि = धोक्षि।

अदुह् + स् = अदोह् + स् = अदोह् = अदोघ। (ई) = अधोघ् (ए) = अधोक् ग्।

(ए) धोक्षि—जब धातुका कोई अवयव ब, ग, ड्, या द् से आरम्भ होता हो और उसके चतुर्थ वर्णमें समाप्त होता हो तो ब, ग, ड, तथा द का क्रमसे भ, घ्, ढ् तथा ध होते हैं, जब उसके आगे स वा ध्व हो, वा वह पदके अन्तमें हो।

तृह्—७ प०।

	लट्।				लोट्।	
म० पु०	तृणेढि	तृण्ढः	तृंहन्ति	उ० पु०	तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम

५। अतृणेट्-ड्, अतृणहम्—तृह् धातुमें व्यञ्जनादि विकारक प्रत्यय आगे रहने पर अन्तिम वर्णके पूर्व न की जगह न विकरण लगता है।

सुकरेऽरण्यवासे पिता मां न्ययुङ्क्त दुष्करे राज्ये पुनस्त्वामिति रामो भरतमब्रवीत्।

नियतमानस एव योगी सततमात्मानं युञ्जन्नास्ते।

सूनृता वाक् कामान् दुग्धेऽलक्ष्मीं विप्रकर्षति कीर्तिं सूते दुष्कृतं हिनस्ति च।

पृच्छ तरलिके कुतूहलं मया यानुभूतावस्था। पुनरद्यामियावले कृष्णेन नीतो न्यस्य प्रदीपः। सकम्प्यालप। दृष्टमपि विलोकय। पूरय मे मनोरथम्। जातोऽस्मि भक्ताभ्यनुरक्ताभ्यमायासि बालाश्चास्तिकासि। कथय किमपराद्धं किं वा नानुष्ठितं मया, कस्मै वा नाज्ञायामादृत, कस्मिन् वा स्वच्छन्दकुले नाभिरत, मम कुपितासि।

शृण्वन्तु सर्वथा वाग्मिनस्ता नानपाश्च ।
मघय भगवन् [1] अधुमिरेषा मापद्य ।
ब्रह्मन् [1] न वायुमेधितोऽयं पन्था येनापि प्रवृत्त ।
शृणमिव लघुलघदमौनेन साम् (मत) मद्दर्णादि ।
सम्माधितस्य चाक्षौतिमरणात्ऽतिरिच्यते ।
निस्तरस्तपसु नोपयाद्राज्ञानं देवत गुरुम् ।
रिरक्षिष सन ऊँसोय विदिनं च निप्र [2] गुरान् ॥
  कि वस्तु विद्वन् गुरव प्रेय
    स्तथा किमहोत समन्वयुक्त ॥
लिङ्कि भिषजश्चित्राय यः पथ्यानि कटूनापि ।
तस्य चेतस घातापि कश्चिन्न च मौनिति ॥
गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति वै द्विजाः ।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि हर्म्येषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥
यो न स्वामिना भिन्द्यात् सामिर्थ्यं सनियाजित ।
स हत्या नृपकाय तत् स्वयं च नरकं व्रजेत् ॥
न यज्ञानोऽपि गच्छन्ति ता गतिं नैव योगिनः ।
यां यान्ति प्रोज्झितप्राणाः स्व मर्थे सेवकोत्तमाः ॥
षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥
अर्जितेष्वपि कुत्रापि योऽवेद्दु खान्यपोहति ।
ततस्य किमपि द्रव्य यो हि यस्य प्रियो जन ॥

---

[1][2] १ यी भय काद व है, दुश्याम् तण स, गुरु है के व । व्यञ्जनानि भाग् देख्य पर निव की दु होता है ।

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ।
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा ॥

कोई भी पशुओंको न मारे। यह एक बड़ा धार्मिक कार्य है।
शत्रुओंने सेनासे उस नगरको घेर लिया।
उसने उससे पूछा, क्या तुम अच्छे हो
भ्रमर फूलोंका रस चाटते हैं।
उसने गायको दुहा और दूध पिया।
मैंने कौनसा अपराध किया है जिससे आप मुझपर कोप करते हैं।
तुम्हारे निमित्त हमने बहुत हानि सही।
वियोगमें एक दिन हजार युगोंके समान मालूम पड़ता है।
मैं अनाथ हूं। मुझे कोई आश्रय नहीं। कृपाकर मेरी सहायता कीजिये।

शब्दार्थ।

अरण्यगमन (तत्पु०, अरण्य = वन + गमन = जाना)—वनमें जाना
अन्तरात्मन् (तत्पु०, अन्तर—विशे० भीतरी + आत्मन् पु)—भीतरी आत्मा
अभूमि (स्त्री नञ्स०) अस्थान, अयोग्य स्थान
अलक्ष्मी (स्त्री) दरिद्रता

अवगाह (अवगाह) पु—स्नान
अवस्था (स्त्री)—स्थिति
इन्द्र (इन्द्र) पु—इन्द्र
ऊर्मि (पु, स्त्री)—तरङ्ग, लहर
गति (स्त्री)—मरनेके बाद जानेकी जगह
गो (पु, स्त्री)—बैल, गाय
चार (चार) पु—चर
तन्द्री (स्त्री)—आलस्य

तारलिका (स्त्री)—एक स्त्रीका नाम
तृण (तृणम्) न—घास
त्विष् (स्त्री)—चमक
दीर्घसूत्रता (स्त्री)—बहुत धीरे २ काम करना
दुष्कृत (दुष्कृतम्) न—पाप
दैवत (दैवतम्) न—देवता
द्रव्य (द्रव्यम्) न—बहुमूल्य वस्तु
पथ्य (पथ्यम्) न—आरोग्यके लिये हितकारी वस्तु
पाण्डु (पु)—पाण्डवोंका पिता
पिण्ड (पिण्ड) पु—खानेकी वस्तु
बालिशता (स्त्री)—मूर्खता
भूति (स्त्री)—सम्पत्ति, उन्नति
भैषज (भैषजम्) न—औषध
मन्तु (मन्तु) पु—मलाह
मानस (मानसम्) न—मन
यज्वन् (पु)—यागकर्ता
यवन (यवन) पु—यवन, म्लेच्छ
युग (युगम्) न—सत्य, द्वापर, त्रेता, कलि, इन चार युगोंमें एक युग
योगिन (पु)—योगी
लव (लव) पु—रामका पुत्र
शील (शीलम्) न—वृत्त
सहस्र (सहस्रम्) न—हजार
सारथ्य (सारथ्यम्) न—सारथीका पद
सारमेय (सारमेय) पु—सरमाका पुत्र कुत्ता
सौख्य (सौख्यम्) न—सुख
हरीतकी (स्त्री)—हर्रा
हर्म्य (हर्म्यम्) न—महल
हविस् (न)—होमद्रव्य
ह्रद (ह्रद) पु—गहिरा स्थान

विशेषण।

अगतिक (बहु०, नास्ति गतिर्यस्य सः अगतिकः, अ + गति स्त्री +
अनाथ (बहु०, अ + नाथ पु)—बिना

अनुभूत (अनु+भू+त)—पाया हुआ

अनुरक्त (अनु+रञ्ज्[१]) भ्वा०, दि० उभ० रजति रजते, रज्यति ते + त)—अनुरागी

अनुष्ठित (अनु+स्था+त)—कृत

अपराद्ध (अप+राध—दि० +त) —अपराधी

अभिरत (अभि+रम्—भ्वा० आ० त)—अनुरक्त

आहूत (आ+ह्वे हु भ्वा)—आमन्त्रित किया गया

आप्त—विश्वस्त

मधु—महुआ

किमपि—कोई अवर्णनीय वस्तु (सुख या दुःख)

कियत्—कितना

दुष्कर—करनेमें कठिन

नियत (नि+यम् [यच्छ]+त) नियन्त्रित

नियुक्त (नि+युज्+त)—लगा हुआ

प्रदेय (प्र+दा+य)—देने योग्य

प्रवृत्त (प्र+वृत्—भ्वा० आ० +त) —लगा हुआ

प्रोज्झित (प्र+उज्झ्+त)—त्यक्त

भक्त (भज्+त)—भक्त

रिक्तहस्त (बहु०, रिक्त, रिच्+त—खाली+हस्त हाथ)—खाली हाथ

विनियोजित (वि+नि+युज प्रेर०+त)—लगाया गया हुआ

स्थापित (स्था—प्रेर०+त)—प्रतिष्ठित

सुकर—करनेमें सुगम

सूनृत—सत्य तथा मधुर वाणी

सेवित (सेव्—भ्वा० आ० +त) —आश्रित

हातव्य (हा+तव्य)—छोड़ने योग्य

१। दशति सजति स्वजति रजति ते रज्यति ते—दंश् पर, सञ्ज पर, स्वञ्ज पर, रञ्ज इन धातुओंके अनुनासिकका, विकरण आगे रहनेपर लोप होता है।

धातु ।

अप+ऊह् (अपोहति—भ्वा पर) —नष्ट करना

आ+लप् (आलपति—भ्वा पर) —बोलना

उप+इ (उपैति, अ पर)—पास आना

छिद् (छिनत्ति छिन्ते रु उभ)— काटना, उद्‌के साथ—काटना

तप् (तपति, भ्वा पर)—तपना

दुह् (दोग्धि, दुग्धे अ उभ) —दुहना

पूर् (पूरयति चु पर)—भरना

भिद् (भिनत्ति भिन्ते रु उभ)— तोड़ना

[1]भुज् (भुनक्ति रु पर)—रक्षा करना, उपभोग करना, (भुङ्क्ते रु आ)—खाना

मृष् (मृष्यति ते, मर्षयति-ते दि, चु उभ)—क्षमा करना

युज् (युनक्ति युङ्क्ते रु उभ)— जोड़ना, … निके …

रिच् (रिणक्ति …)— खाली होना, अतिके साथ (कर्मणि)—बढ़कर होना, किसीसे बड़ा होना

रुध् (रुणद्धि रुन्द्धे रु उभ)— रोकना, सम्‌के साथ—रोकना

लिह् (लेढि लीढे अ उभ)— चाटना, प्र तथा अव के साथ —चाटना

वि+विच् (विविनक्ति वृङ्क्ते—रु उभ)—विचार करना

वि+प्र+कृष् (विप्रकर्षति, भ्वा पर)—दूर ले जाना

वि+लोक् (विलोकयति चु पर) —देखना

व्रज (व्रजति भ्वा पर)—जाना

शुध् (शुध्यति दि पर)—पवित्र होना

षद् [सीद्] (सीदति, भ्वा पर) —नष्ट होना

सेव (सेवते—भ्वा आ)—सेवा करना

हिंस (हिनस्ति—रु पर)—नष्ट करना

१। भुज … वा उपभोग करना नहीं है तब यह

अव्यय ।

हयम्—घोड़ा
उत्पत्य (उद्+पत् का अव्यय कृ)—उड़कर
सम्प्रति—अभी
कृच्छ्रेण (कृच्छ्र का तृतीया)—कठिनतासे
सम्यक् (अ तत्पु०, सबसे इस प्रकार अच्छी तरह, क्रियाविशे०)—उसके लिये
त्वत्कृते (तत्पु०, तव कृते, त्वद्—सर्व०, + कृते—अव्यय) तुम्हारे निमित्त
सकृत्—एक बार

पाठ ३० ।

शुद्ध वाक्य गण ।

देहि मे प्रतिवचनम्—हमको उत्तर दो ।

कृतान्तान्न बिभेत्ययं वीरः—यह वीर यमसे भी नहीं डरता ।

पावके हविर्जुहुधि—अग्निमें सामग्रीका होम करो ।

लोकस्य कोलाहल उदजिहीत—लोगोंका कोलाहल उठा ।

अवधत्तां देवो देवी च—महाराज और महारानी ध्यान दें ।

न न म य य युतेयं मालिनी भोगिलोकैः—न, न, म, य, तथा य, इन गणोंसे युक्त मालिनी भोगि तथा लोकोंसे (७ तथा ८ अक्षर क्योंकि ७ सर्प तथा ८ लोक हैं)=जिसमें न, न, म, य, तथा य, ये गण हों, तथा ७ ८ अक्षरोंपर यति वा विराम हो, उसे मालिनी छन्द कहते हैं ।

मालिनी एक छन्द है । तीन अक्षरोंका एक गण होता है । अधो-लिखित आठ गण होते हैं—

म स्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः ।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः ॥

मगणमें ३ गुरु, तथा नगणमें ३ लघु होते हैं। भगणमें आदि गुरु (और दूसरे दो लघु), यगणमें आदि लघु (और दूसरे गुरु), जगणमें मध्य गुरु (और दूसरे दो लघु), रगणमें मध्य लघु (और दूसरे दो गुरु), सगणमें अन्त्य गुरु (और दूसरे दो लघु), तथा तगणमें अन्त्य लघु (और दूसरे दो गुरु) होते हैं।

ह्रस्वको लघु, तथा दीर्घको गुरु कहते हैं। यदि संयोग आगे हो तो पूर्व ह्रस्व गुरु समझा जाता है। पादके अन्तका अक्षर लघु होनेपर भी गुरु कहता है।

ल=लघु, ग=गुरु।

छन्दमें कुछ अक्षरोंके बाद यति या विराम होता है। मालिनीमें ८ तथा ७ अक्षरोंपर यति है।

वस्तुतमें उसी छन्दके पादमें प्राय छन्दका लक्षण कहा जाता है। इस प्रकार मालिनीके पादका यह लक्षण हुआ —

। । । । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ
न न म य य यु ते यं॥ मा लि नी भो गि लो कैः ॥

। चिन्ह लघुका ऽ गुरुका, तथा ॥ यतिका चिन्ह है।

इस पाठमें जुहोत्यादि गणके धातुओंका वर्णन किया गया है। इस गणमें प्रत्यय लगानेके पूर्व धातुओंको द्वित्व होता है। लिट् या परोक्ष-भूतमें भी धातुओंको द्वित्व होता है।

द्वित्वके सामान्य नियम।

अट्—अ अट्, क्षु—क्षु क्षु, भी—भी भी, पच—प पच।

नियम —

१। स्वरादि धातुओंमें स्वरको, तथा व्यञ्जनादि धातुओंमें प्रथम स्वरके साथ व्यञ्जनको द्वित्व होता है।

दश—ददश, कौ—कौकौ, स्म—सस्म। नियम —

२। अजादि धातुओंमें स्वरसहित द्वितीय एकाच्‌को द्वित्व होता है।
अट्—अटिट्, अश्—अशिश्, ऐर्—ऐर्यि।

नियम—

३। यदि धातुके आदिमें संयोग हो जिसका प्रथम वर्ण श्, ष्, स् हो और द्वितीय वर्ण अघोष हो, तो स्वरसहित उस अघोष वर्णको द्वित्व होता है।

४। द्वित्वके पूर्व भागको अभ्यास कहते हैं—
जि—जिजि, कृ—कृकृ, स्था—स्था स्था।

अभ्यासमें परिवर्तन।

(अ) भी—भीभी—भिभी, नी—नीनी—निनी, धा—धाधा—धधा।

(आ) कृ—कृकृ—ककृ, स्मृ—स्मृस्मृ—सस्मृ।

(इ) खन—खखन्—कखन्, छिद्—छिछिद्—चिछिद्—चिच्छिद्, भी—भीभी—भिभी—बिभी, धा—धधा—धधा—दधा।

(ई) कृ कृकृ ककृ चकृ, खन् खखन् कखन् चखन्, गम्-गगम् जगम्।

(उ) हु हुहु हहु-जहु, ह्री ह्रीह्री हिह्री जिह्री।

१। शब्द अच्छाया मिलच्छाया चक्रिवान् चिच्छेद (छिद्—छ था ड पु प ब)—यदि छके पूर्व ह्रस्व स्वर रहता है तो उसको च्छ होता है। चक्रिवान् (चक्र—बन—पुप ब)—यदि छ के पूर्व दीर्घ हो तो भी उसका च्छ होता है। लक्ष्मीच्छाया—छाया पर आच्छादयति मा च्छिदत्—लक्ष्मीका द्‌ पदके अन्तमें है। क्योंकि समासके अवयव सब पद समझे जाते हैं और अन्तिमके सिवा सब पदोंकी विभक्तियोंका लोप होता है। मा तथा आ भी पद हैं क्योंकि अव्ययोंके बाद विभक्ति आकर उसका लोप होता है। छ के पूर्व यदि दीर्घ हो और वह पदके अन्तमें हो तो विकल्पसे, पर आ तथा मा यदि पूर्व हों तो नित्य च्छ होता है।

नियम —

५। (अ) पू पुपू पुपू, मील् मीमील् मिमील, ज्ञा—जाज्ञा जज्ञा—अभ्यासके दीर्घको ह्रस्व होता है।

(आ) तॄ तातॄ ततॄ—अभ्यासके ऋ को अ होता है।

(इ) फल् फफल—पफल्, भज् भभज बभज—वर्गके द्वितीय वर्णको प्रथम वर्ण, तथा चतुर्थको तृतीय वर्ण होता है।

(ई) गम् गगम् जगम्, खन् कखन् चखन्—कवर्गीय वर्णको चवर्गीय वर्ण होता है।

(उ) हन हहन्-जहन् ह् का ज् होता है।

भृ धातु।

	परस्मै।			आत्मने।		
प्र पु	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म पु	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ पु	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लङ्-पर। आत्म।

प्र पु अबिभः अबिभृताम् अबिभरुः अबिभृत अबिभ्राताम् अबिभ्रत

लोट् पर। आत्म।

प्र पु बिभर्तु बिभृताम् बिभ्रतु उ पु बिभरै बिभरावहै बिभरामहै

विधि पर। आ।

प्र पु बिभृयात्—इत्यादि। प्र पु बिभ्रीत—इत्यादि।

ह्री—पर।

वर्त्त। लोट्।

प्र पु जिह्रेति जिह्रीतः जिह्रियति उ पु जिह्रयाणि जिह्रयाव जिह्रयाम

लङ्। विधि।

प्र पु अजिह्रेत् अजिह्रीताम् अजिह्रयुः जिह्रीयात्—इत्यादि।

हा—पर।

प्र पु जहाति जहितः—जहीतः जहति

लोट्।

प्र पु जहातु जहिताम्-जहीताम् जहतु

म पु जहाहि जहिहि जहीहि जहितम् जहीतम् जहित जहीत

लङ्। विधि।

प्र पु अजहात् अजहिताम् जहीताम् अजहुः जह्यात्—इत्यादि।

नियम —

६। जहाति इत्यादि—सार्वधातुक लकारोंमें हको द्वित्व होकर जह होता है।

७। जहति, जहतु—पर प्र पु ब व में न् का लोप होता है।

८। अजहुः—लङ् के पर प्र पु के ब व का प्रत्यय उस् है उस आगे रहने पर धातुके अन्तिम स्वरको गुण होता है और आ का लोप होता है।

९। जहितः—हीतः, जहति, जह्यात्—इत्यादिमें हा के आगे व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इ वा ई होता है, तथा स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहने पर और विधिलिङ्में उस आ का लोप होता है। लोटके म पु के ए व में तीन पद होते हैं—जहाहि, जहिहि, जहीहि।

जिह्री + अति—ई को इय् होता है। क्योंकि उसके पूर्व संयुक्ताक्षर है = जिह्रियति।

भी—पर।

वर्त्त।

प्र पु बिभेति बिभितः—बिभीतः बिभ्यति

लोट्।

म पु बिभिहि बिभीहि बिभितम् बिभीतम् बिभित बिभीत

लङ्।

प्र पु अबिभेत् अबिभिताम् अबिभीताम् अबिभयुः

विधि।

प्र पु बिभियात्—बिभीयात्।

नियम —

१०। व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर भीके स्वरको विकल्पसे ह्रस्व होता है।

मा—आत्म।	हा—आत्म।
वर्त्त।	वर्त्त।
प्र पु मिमीते मिमाते मिमते	जिहीते जिहाते जिहते
उ पु मिमे मिमीवहे मिमीमहे	जिहे जिहीवहे जिहीमहे
लङ्।	लङ्।
प्र पु अमिमीत अमिमाताम् अमिमत	अजिहीत अजिहाताम् अजिहत
लोट्।	लोट्।
म पु मिमीष्व मिमाथाम् मिमीध्वम्	जिहीष्व जिहाथाम् जिहीध्वम्
विधि।	विधि।
प्र पु [illegible]।	प्र पु जिहीत—इत्यादि।

नियम —

११। भिये ह्रिङ्—आ तथा शमनार्थक हा धातुओंके आदि धातुके लकारादिमें द्वित्व हो कर भिभी जिह्री जिहा होता है।

१२। बिभेति, बिभर्ति, जिहेति, जिहीताम्—आ तथा शमनार्थक हा धातुके आ को व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर ई होता है, तथा स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर उसका लोप होता है।

हु—पर।

	पर।				लोट्।		
प्र पु	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति	म पु	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत

	लङ्।			विधि।
प्र पु	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः	जुहुयात्—इत्यादि।

नियम —

१३। लोट्के मध्यम पुरुषमें ? य का प्रत्यय धि है। २१ वें पाठमें १४ वां नियम देखो।

दा—देना।

	पर पद।			आत्म।		
प्र पु	ददाति	दत्तः	ददति	दत्ते	ददाते	ददते
म पु	ददासि	दत्थः	दत्थ	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे

	लोट्—पर।			आत्म।		
म पु	देहि	दत्तम्	दत्त	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ पु	ददानि	ददाव	ददाम	ददै	ददावहै	ददामहै

	लङ्—पर।			आत्म।		
प्र पु	अददात्	अदत्ताम्	अददुः	अदत्त	अददाताम्	अददत
उ पु	अददाम्	अदद्व	अदद्म	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

विधि।

	पर	आत्म।
प्र पु	दद्यात्—इत्यादि।	ददीत—इत्यादि।

धा—धर।

	लट्—पर।			आत्म।		
प्र पु	दधाति	धत्तः	दधति	धत्ते	दधाते	दधते
म पु	दधासि	धत्थः	धत्थ	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ पु	दधामि	दध्वः	दध्मः	दधे	दध्वहे	दध्महे

	लोट्—पर।			आत्म।		
म पु	धेहि	धत्तम्	धत्त	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्

	लङ्—पर।			आत्म।		
प्र पु	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः	अधत्त	अदधाताम्	अदधत

विधि।

प्र पु दध्यात्—दधीत—इत्यादि।

नियम—

१४। (अ) दद्, दध्—व्यञ्जनादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दा तथा धाको दद् तथा दध् होता है।

(आ) दधति, दधतु—स्वरादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इनकी आका लोप होता है।

(इ) धत्थ धत्त—अनुनासिक वा अन्तस्थको छोड़ और किसी व्यञ्जनसे आरम्भ होनेवाला अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धाको धत् होता है।

(ई) देहि तथा धेहि लोट्के म पु के ए व के रूप हैं।

निज्—उभ

लट् पर ।			आत्म लोट् ।			
प्र पु	नेनेक्ति	नेनिक्तः	नेनिजति	उ पु	नेनिजै नेनिजावहै	नेनिजामहै

लङ् पर ।				आत्म ।		
प्र पु	अनेनेक्-ग्	अनेनिक्ताम्	अनेनिजुः	अनेनिक्त	अनेनिजाताम्	अनेनिजत
उ पु	अनेनिजम्	अनेनिज्व	अनेनिज्म	अनेनिजि	अनेनिज्वहि	अनेनिज्महि

विधि ।

प्र पु नेनिज्यात्, नेनिजीत इत्यादि ।

इसी प्रकार वेवेक्ति, वेविग्धि इत्यादि ।

१५ । नेनेक्ति, नेनिजे—निज्, विज्, तथा विष् धातुमें अभ्यासके स्वरका गुण होता है, स्वरादि विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर इन धातुओंके उपान्त्य स्वरका गुण नहीं होता ।

अन्धकारात् मदारा मम उद्विजते ।
कर्णौ पिधाय शान्तं पापं शान्तं पापमित्यब्रवीत् ।
इ रत्नान्यत्र विष्णुरेवाभिधत्ते ।
मधुपा मधुमाध्वीनामास्वादाय अनुरक्ताश्चरन्ति ।
अथ पुत्रकृतको मृगस्ते पन्थाँ न लभाति पथ ।
रघुर्धनुष्यमाधाय सायकं समधत्त ।
अनेन समयेन परिखाता दिवस ।
येयमि त्व प्रीतिं विच्छिन्नमिति विदुः ।
गुरो पादावनेनिज्म ।
महच्छगुणमारुह्यमाना हि रस रजि ।

जठरं को न बिभर्ति केवलम् ॥

प्राप्य शुभं च निन्द्याप्यशुभं च सन्तो
सर्वं कृपा भगवतो भवितव्यतेव ॥

अविनीत ! किं नोऽपसर्पणनिर्दिष्टेषाक्षि सत्त्वानि विप्रकरोषि ? हन्त ! प्रधते ते धाम्न ! स्थाने खलु ऋषिजनेन सत्त्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि ।

पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि पुण्यभाजाम् । किं पुनर्दर्शनानि ? धन्यमिद-माश्रमपदमयमधिवसतिर्यत्र । पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यन्निरन्तरमेनमपरमिव नलिनासन पुण्यावलोकननिश्चल इव पुण्याः कथाः शृण्वन्त उपासते ।

क्षीरपालायत मा पीड दत्तास्ते मेऽपि शर्म च ।
हृष्ट वो नो ददात्वीशः पतितोऽस्मि मो हरि ॥

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
भार्येव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ।
कीर्तिं च दिक्षु विमलां वितनोति लक्ष्मीं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो
वयमपि तदभावाद्गालिदानेऽसमर्थाः ।
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति ॥

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् ।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः ।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः ॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत् ।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥

रामके इच्छानुसार लक्ष्मणने सीताको निर्जन वनमें छोड़ा।

रे पापी! क्या तुझे यह खराब वचन कहते लज्जा नहीं आती?

याजकलोगोंने अग्निमें आहुति दी।

हे प्रभो! कृपा कर मुझे शक्ति दीजिये।

इस राजाको चाहिये कि आये हुए अतिथियोंका आसन तथा जलसे सत्कार करे।

तुमको अपने वीरोंके शत्रुओंके साथ लड़नेके लिये तैयार होना चाहिये।

पहले शिशु मुझे प्राणसे भी अधिक प्रिय था।

यहां देवराज राजाका शोध करता है।

दूध स्वयं मधुर है फिर चीनी मिलानेपर क्या पूछना है (किं पुन)?

उस आश्रमके जीव मुनिको अपने पुत्रोंसे किसीप्रकार भिन्न न थे ('व्यतिरिक्त'का प्रयोग करो)।

शब्दार्थ।

अधिपति (पुं)—स्वामी

अवलोकन (अवलोकनम्) न—दृष्टि

आश्रमपद (आश्रमपदम् न तत्पु०, आश्रम पु + पद—न स्थान)—तपोवन

कल्पलता (स्त्री कल्पवल्ली समा० कल्पवृक्षिका लता)—एक लता जो सब मनोरथोंको पूर्ण करती है

कोलाहल (कोलाहल) पु—शोर

गालि (स्त्री)—गाली

छाया (स्त्री)—छाया

जन्तु (पु)—प्राणी

नलिनासन (नलिनासन—पु बहु०, नलिन न कमल + आसन न)—कमल जिसका आसन है, ब्रह्मदेव

नामधेय (नामधेयम्) न—नाम (धेय एक प्रत्यय है जो अर्थमें कोई भेद नहीं करता, नाम एवं नामधेयम्)

[illegible] (स्त्री)—आग

परिकर (परिकर) पुं —कमरबन्द (बद्ध परिकरस्तेन = उसने कमर बाँधी)
पावक (पावक) पुं —अग्नि
पुत्रकृतक (पुत्रकृतक) पुं —कृतक पुत्र
प्रकृति (स्त्री)—स्वभाव
प्रतिवचन (प्रतिवचन) न —उत्तर
प्रियभाव (प्रियभाव) पु —प्रिय होना
प्रीतियोग (प्रीतियोग) पु —प्रेमका बन्धन
भवितव्यता (स्त्री)—होनहार
मृत्यु (पु)—मरण
रस (रस) पु —रस
विषाण (विषाणम्) न —सींग
शशक (शशक) पु —खरहा
संरम्भ (रम्भ) पु —क्रोध
सत्व (सत्त्वम्) न —जीव
सर्वदमन (पु)—दुष्यन्तके पुत्रका नाम (जो सबको दबाता है वह)
सायक (सायक) पु —बाण

विशेषण ।

अमोघ (नञ्०, अ+मोघ निष्फल)—सफल
असार (बहु०)—निःसार, तुच्छ
धन्य—भाग्यवान्
निश्चल—अचल, स्थिर
निर्विशेष (बहु०, निर्गत विशेष येभ्यस्तानि, निर्विशेषाणि, निर्+विशेष—पु सेन)—भेदरहित, समान
पुण्यभाक्—पुण्यवान्
सर्वङ्कष (स्त्री —षा) — सबको सतानेवाला

धातु ।

अप+नी (अपनयति से भ्वा उभ)—हटाना
उद्+विज (उद्विजते—तु आत्म)—घबड़ाना
दा (ददाति जु उभ)—देना, आके साथ (आरभ)—लेना
धा (दधाति धत्ते—जु उभ)—धारण करना, रखना, आके साथ—रखना, करना, उत्पन्न करना, अपिके साथ—बन्द करना, अभिके साथ—कहना, प्रकट करना, अवके साथ—ध्यान

देना, णि के साथ—करना, सम् के साथ—मिलाना

निज् (नेनेक्ति नेनिक्ते जु उभ)—धोना, अव के साथ—धोना

भृ (बिभर्ति बिभृते जु उभ)—भरना

विज् (वेवेक्ति वेविक्ते जु उभ)—अलग करना

वि+प्र+कृ (विप्रकरोति—कुरुते तना उभ)—बिगाड़ना

विष् (वेवेष्टि-वेविष्टे जु उभ)—घेरना, व्याप्त करना

अनु+सम्+धा (अनुसन्धत्ते—जु आ)—पूछा करना

साध् (साध्नोति स्वा पर)—सिद्ध करना

हा (जिहीते जु आ)—जाना, उद् के साथ—उड़ना, उठना

हु (जुहोति जु पर)—होम करना

ह्री (जिह्रेति—जु पर)—लजाना

अव्यय।

अहर्निशम्—दिनरात

उत्तमम् (उद्+तम+अम्)—के ऊपरके लिये, ज्यादा लिये (तम प्रत्यय—जिससे अधिक है, उससे अधिक तथा अतिशयता बोध होता है।)

यथावत्—अनुसार

बहुधा—अनेक प्रकारसे

शान्तं पापम्—बला टले

सहस्रगुणम्—(क्रि०, सहस्र गुणा यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा, सहस्र = हजार+गुण गु) —हजारगुना

स्थाने—ठीक है

हन्त—हाय! आह! (यह शोक या हर्षमें आता है।)

पाठ ३१।

विशेषण तथा क्रियाविशेषण।

एकादश जना द्वादशाश्वा—ग्यारह जन और बारह घोड़े हैं।

आपणको ब्राह्मणानां विंशतये दक्षिणामयच्छत्—आपणकने बीस ब्राह्मणों को दक्षिणा दी।

रघुवंशे कुमारसम्भवे च यथाक्रममेकोनविंशतिः सप्तदश च सर्गाः—रघुवंश तथा कुमारसम्भवमें क्रमसे उन्नीस तथा सत्रह सर्ग हैं।

जालान्तरगते रश्मौ यत् सूक्ष्मं रजो दृश्यते तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः कथ्यते—झरोखेंसे आनेवाले किरणमें जो सूक्ष्म कण दिखाई देता है उसका तीसवां हिस्सा परमाणु कहलाता है।

सीता प्राणेभ्योऽपि प्रेयसी रामस्य—सीता रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थी।

कच्चित् कामप्रवेदने—(अव्यय) 'कच्चित्' अपनी इच्छा प्रकाश करनेमें प्रयोग किया जाता है। अर्थात्—"मैं आशा करता हूं" इस अर्थमें आता है।

कच्चिन्मृगीणामनघा प्रसूतिः—मैं आशा करता हूं कि मृगीके बच्चे दुःखरहित अर्थात् सुखी हैं।

अपि के समान कच्चित् भी प्रश्न पूछनेमें आता है, पर यह उस प्रश्नमें आता है जहां अपनी इच्छा प्रकट करनी हो। इसका अर्थ 'मैं आशा करता हूं,' 'मैं समझता हूं' है। कभी कभी यह केवल प्रश्न पूछनेमें प्रयोग किया जाता है।

दिष्ट्या प्रतिहता युष्माकं विघ्नाः—सुदैवसे तुमलोगोंके विघ्न नष्ट हुए—मैं विघ्नोंके नष्ट होनेपर आपका अभिनन्दन करता हूं। 'दिष्ट्या' यह दिष्टि का तृ ए व है।

स्थाने खल्वत्र चित्रे सज्जति मे दृष्टिः—यह योग्य ही है कि मेरी दृष्टि इस चित्रमें लग रही है। स्थाने=युज्यते—यह योग्य है।

काममेतद्दुर्लभं मनस्त्वस्मिन्नुत्सुकम्—मान लिया कि यह दुर्लभ है, पर मेरा मन तो इसके लिये उत्सुक है। कामम्=जितना कोई चाहे उतना, चाहे जितना अधिक।

अथ रोहिणीषु [illegible] अङ्ग किं पुनरनुपमादन्तम्—इस [illegible]
हुए देखिए भी प्रेम [illegible] जाता है, उसमें [illegible] [illegible]
पर कितना अधिक हुआ।

किं पुन, किमुत तथा किमु 'कितना अधिक' इस अर्थ मानते हैं।
इनका यह है—इति का बाना, इति कि [illegible] ([illegible] रोहिणीषु [illegible]
अङ्ग [illegible] [illegible] [illegible] इति कि [illegible]।
इनका कैमुतिकन्याय कहते हैं।

[illegible] गुरो पुत्रो न च [illegible]—[illegible] [illegible] पुत्र [illegible] को
पूछ [illegible] नहीं।

यत्नु च प्रयासतः [illegible] का [illegible] [illegible]—न च [illegible] न तु न पुत्रम्
—[illegible] रहता है।

यथा यथा [illegible] तथा तथाऽस्य [illegible] [illegible]—
ज्यों ज्यों [illegible] [illegible] त्यों त्यों उसकी [illegible] [illegible] [illegible] गई।

यथा यथा—तथा तथा—ज्यों ज्यों अधिक त्यों त्यों अधिक, ज्यों ज्यों कम त्यों त्यों
कम।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः—सूर्यवंश कहाँ और मेरी
बुद्धि, जिसकी विषय [illegible] है, कहाँ?—इस [illegible] [illegible] [illegible] है।
क्व क्व (कहाँ कहाँ) बड़ा अन्तर दिखाते हैं (दो [illegible] [illegible] [illegible])।
पक्षपातिनो [illegible] [illegible] च—हम और तुम दोनों राजा पक्षपाती (तरफदार) हैं।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भिन्न [illegible] [illegible] [illegible] पु
तथा दूसरा [illegible] दा [illegible] विशेषण पु [illegible] जाता है।
" न च मां च तौ, स च तव च, मां च तव च [illegible] [illegible]—[illegible] एक
[illegible] [illegible] पु [illegible] [illegible] दो और दूसरा [illegible] दा [illegible] विशेषण पु
होता है।
[illegible] धृतिः [illegible] [illegible] [illegible]—उसमें [illegible] धैर्य, तथा [illegible]
[illegible] हैं।

यदि अनेक विशेष्य अनेक लिङ्गोंके हों तो विशेषण नपुंसकमें आता है ।

तयोश्च दैवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यात — उसी देवताने उनके कुश और लव इन नामों तथा शक्तिका वर्णन किया ।

यहां आख्यात इस विशेषणका लिङ्ग तथा वचन उसके पूर्व रहनेवाले संज्ञाशब्दके ऐसा हुआ । इसका अन्य संज्ञाशब्दोंके साथ लिङ्गविपरिणामसे अन्वय होता है । नामनी आख्याते इति लिङ्गविपरिणामेनान्वय ।

इस पाठमें विशेषण तथा क्रियाविशेषणोंका वर्णन किया गया है ।

एकसे दसतकके संख्यावाचकोंका वर्णन २३वें पाठमें आ चुका है ।

इससे गुणित संख्यावाचक नीचे दिये जाते हैं —

विंशति	(स्त्री)	बीस	शत	(न)	एक सौ
त्रिंशत्	,,	तीस	सहस्र	,,	हजार
चत्वारिंशत्	,,	चालीस	अयुत	,,	दस हजार
पञ्चाशत्	,,	पचास	लक्ष	,,	लाख
षष्टि	,,	साठ	प्रयुत	,,	दस लाख
सप्तति	,,	सत्तर	कोटि	स्त्री	करोड़
अशीति	,,	अस्सी			
नवति	,,	नब्बे			

विंशतये ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां ददाति नारायण — अथवा ब्राह्मणानां विंशतये दक्षिणां ददाति नारायण । इस प्रकार विंशति इत्यादि संज्ञाशब्द हैं । जब ये विशेषण रहते हैं तो, किसी संज्ञा शब्दके साथ हों, एक व. तथा स्त्रीलिङ्गमें प्रयोग किये जाते हैं ।

एकादशन्—ग्यारह	द्विसप्तति } बहत्तर
द्वादशन्—बारह	द्वासप्तति
षोडशन्—सोलह	त्रिनवति } तिरानवे
त्रयोविंशति—तेईस	त्रयोनवति
पञ्चविंशति—पचीस	षण्णवति—छानवे
अष्टाविंशति—अट्ठाईस	द्व्यशीति—बयासी
द्विचत्वारिंशत् } बयालीस	त्र्यशीति—तिरासी
द्वाचत्वारिंशत्	अष्टाशीति—अट्ठासी
त्रिपञ्चाशत् } तिरपन	एकोनसप्तति } उनहत्तर
त्रयःपञ्चाशत्	एकान्नसप्तति
अष्टषष्टि } अड़सठ	ऊनसप्तति
अष्टाषष्टि	

नियम —१ त्रिंशतिके बादके संख्यावाचकोंमें द्वि को द्वा त्रि को त्रय, तथा अष्ट को अष्टा होता है। अशीति के साथ समास करनेमें ये परिवर्तन नहीं होते, तथा चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, तथा नवति के साथ समास करनेमें ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं। पञ्चन् इत्यादि शब्दोंमें न्का लोप होता है, जिस प्रकार समासमें इतर नकारान्त शब्दोंमें न्का लोप होता है।

एकोनसप्तति इत्यादि—एकेन ऊना सप्तति एकोनसप्ततिः, एकेन न सप्ततिः एकान्नसप्तति, यहा एक को एकाद् हुआ है।

एकादश —ग्यारहवां	सप्ततितम —सत्तरवां
विंश —विंशतितमः बीसवां	षट् सप्त तितम —छोहत्तरवां
त्रिंश त्रिंशत्तम —तीसवां	अशीतितम अस्सीवां
षष्टितम —साठवां	एकाशीत तितम —इक्यासीवां
ष्टितम —एकसठवां	

नवतितम —९० वां	शततम —१०० वां
षण्णवतितम —९६ वां	सहस्रतम —१००० वां

नियम —

२। एकादशन् से नवदशन् तक शब्दोंसे क्रमिक संख्यावाचक न् का लोप करनेसे बनते हैं।

३। विंशति से आगे क्रमिक संख्यावाचक तम लगानेसे या अन्तिम स्वर का लोप कर या पूर्व स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जन का लोप कर अ लगाने से बनते हैं। विंशति में ति का लोप होता है।

४। षष्टि, सप्तति, अशीति तथा नवति के क्रमिक संख्यावाचक केवल एकही प्रकार से—तम लगाने से—बनते हैं।

सप्तदशोत्तरं शतम् वा सप्तदशाधिकं शतम् =११७। त्रिसप्तत्यधिकनवदश-शततमो विक्रमार्कसंवत्सरोऽयम् = संवत् —१९७३। अष्टात्रिंशदुत्तराष्टादश-शततम आंग्लाब्दनवमिदम् = सन १८३८। सप्तदशाधिकैकोन-विंशतिशततम ख्रिस्ताब्दम् = इसवी सन १९१७।

५। ऊपरकी संख्या बतानेमें 'अधिक' लगाया जाता है।

तर तथा तम, ईयस् तथा इष्ठ आपेक्षिक तथा सर्वोत्कृष्टताद्योतक प्रत्यय हैं। इनका वर्णन पहिले आ चुका है। कुछ शब्दोंमें ईयस् तथा इष्ठ आगे रहनेपर परिवर्तन होता है और इस प्रकार उनके रूप अनियत होते हैं। वे इस प्रकार हैं —

केवल	आपेक्षिक	सर्वोत्कृष्ट
प्रशस्य स्तुत्य	श्रेयस्	श्रेष्ठ
वृद्ध बूढ़ा	ज्यायस्, वर्षीयस्	ज्येष्ठ, वर्षिष्ठ
अन्तिक पास	नेदीयस्	नेदिष्ठ
बाढ़ अच्छा	साधीयस्	साधिष्ठ

स्थूल मोटा	स्थवीयस्	स्थविष्ठ
दूर दूर	दवीयस्	दविष्ठ
युवन् युवा	यवीयस्, कनीयस्	यविष्ठ कनिष्ठ
ह्रस्व छोटा	ह्रसीयस्	ह्रसिष्ठ
क्षिप्र फुर्तीला	क्षेपीयस्	क्षेपिष्ठ
क्षुद्र नीच	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ
प्रिय प्यारा	प्रेयस्	प्रेष्ठ
स्थिर निश्चल	स्थेयस्	स्थेष्ठ
उरु चौड़ा	वरीयस्	वरिष्ठ
बहुल मोटा	बंहीयस्	बंहिष्ठ
दीर्घ लम्बा	द्राघीयस्	द्राघिष्ठ
अल्प थोड़ा	अल्पीयस् कनीयस्	अल्पिष्ठ कनिष्ठ
पृथु बड़ा	प्रथीयस्	प्रथिष्ठ
मृदु कोमल	म्रदीयस्	म्रदिष्ठ
कृश दुबला	क्रशीयस्	क्रशिष्ठ
दृढ़ मजबूत	द्रढीयस्	द्रढिष्ठ
बहु बहुत	भूयस्	भूयिष्ठ

इन सभोंमें तर तथा तम भी लगते हैं। ये रूप अनियत नहीं हैं। प्रशस्यतर, युवतर (न् का लोप), दीर्घतर, प्रियतम, बहुतम, अल्पतम।

ऊपर दी हुई सूची कण्ठाग्र करनेकी आवश्यकता नहीं।

६। सर्वनामोंसे अव्यय इस प्रकार बनते हैं —

(अ) सर्वतः, कुतः (किम् से किमको कु होता है), यतः ततः, इतः अतः —तस् लगानेसे (जो हर विभक्तिके अर्थमें आ सकता है पर विशेषतः पञ्चमी या सप्तमीके अर्थमें आता है। सार्वविभक्तिकस्तसिः।)

(आ) तत्र, अमुत्र, सर्वत्र, अन्यत्र, अत्र, यत्र, कुत्र—त्र लगानेसे (सप्तम्यर्थ, स्थलवाचक)।

(इ) सर्वदा, एकदा, अन्यदा, यदा, तदा, कदा—दा लगानेसे (सप्तम्यर्थ, कालवाचक)।

(ई) यथा, तथा, सर्वथा, कथम् (किम् से—केन प्रकारेण)—था लगानेसे (प्रकारवाचक)।

(उ) पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अपरेद्युः (दूसरे दिन)—एद्युः लगानेसे (उस दिन)।

भूयान् भेदोऽनयोः शिष्ययोः।

अभिषवभूयिष्ठा परिसरान्यम्।

वृद्धतमोऽपि राजा तद्वृत्तान्तमाकर्ण्य प्रविष्टवत् चिरं राजधानीमगच्छत्।

अभिजातं खल्वस्य वचनम्। अथ वा चन्द्रादमृतमिति किमत्राश्चर्यम्।

नास्ति भवतोऽपराधः। अहमेवात्रापराद्धा।

अथ रघुनाथ एव। दिष्ट्या सुप्रभातमद्य यन्म देवो दृष्टः।

तपस्विनः प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या तु सह भवति किमुत
सकलभुवनवन्दितचरणानां मुनीनाम्।

विश्रायता सकलमेव शिरो ददौ।

कच्चिद् भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।

कच्चिन्मयापराद्धमज्ञेन वा केन चिदनुजीविना परिजनेन? अति
निपुणमपि चिन्तयन् न पश्यामि स्खलितमप्यपरमात्मनस्त्वद्विषये।

हंहो! दिष्ट्या वर्धसे। प्रतिहतास्ते शत्रवः। चिरं जीव। जय पृथिवीम्।

...सन्दर्शनानाम्। दक्षिणायनं रात्रिः। सप्तसप्तोऽक्रोशात्।

तस्मिन् गते यामे । मासो द्वादश वर्षम् । द्वादशवर्षसहस्राणि दिव्यानि कलियुगम् । द्विगुणानि द्वापरम् । त्रिगुणानि त्रेता । चतुर्गुणानि कृतयुगम् । एवं द्वादश सहस्राणि दिव्यानि चतुर्युगम् । चतुर्युगाणामेकसप्ततिर्मन्वन्तरम् । चतुर्युगसहस्रं च कल्पः । स च पितामहस्य दिनम् । तावती चास्य रात्रिः । एतद्विशेषेणाहोरात्रेण मासवर्षगणनया शतवर्षं ब्रह्मणो परमायुः । ब्रह्मायुषा च परिच्छिन्नं पौरुषो दिवसः । तस्य शर्वरी महाकल्पः । तावत्प्रमाणा निशा । पौरुषाणामहोरात्राणां संख्यैव नास्ति । न च भविष्यति । अनाद्यनन्तता कालस्य ।

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे ।
नरकात् क्षीयते पापं कुगृहात् परिवर्धते ॥
सरभसा स्निग्धो न पुनर्निजा ननु मित्रेषु वर न पुत्रम् ।
समयमेत्दुपेक्षयसा जय प्रियजनेन न मनु समागम ॥
यथा यथा भास्वतो विरथते भितो त्रिलोकीमिव कतु मुद्यतम् ।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते प्रियालकावीथ्यवलोकनोत्सुकम् ॥
सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥
कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसङ्कुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ॥
स्थाने भवानेकनराधिपः सन्नकिञ्चनत्वं मखजं व्यनक्ति ।
पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः ॥

हे मुनि ! मैं आशा करता हूं कि आपकी तपस्याएं निर्विघ्न हैं ।

यह योग्य है कि उर्वशी सब स्त्रियोंमें अधिक सुन्दर कही जाती है ।

राजा तथा रानी दोनों धार्मिक थे ।

हे मित्र ! इस सत्कार्यमें सफल होनेके लिये मैं तुम्हें अभिनन्दन करता हूं ।

क्या तुमने वह किस्सा पढ़ा है जो इस पुस्तकके ११५ वें पृष्ठमें अंकित है ?

धन आदमीको गर्वी बनाता है । यदि उसके साथ कुछ विद्या और घमण्ड पर हो तो फिर क्या पूछना है !

क्या तुमको काशीमें पवित्र गङ्गाजीके तटपर हमलोगोंके मकानकी याद है ?

स्वयं अव्यय शब्दसे ही मालूम पड़ता है कि इनको लिङ्ग, वचन, विभक्ति नहीं लगते ।

शब्दार्थ ।

अकिञ्चनत्व (न अकिञ्चनत्वम् कर्म०, नास्ति किञ्चन यस्य सोऽकिञ्चनः,(३२ वां पाठ देखो) तस्य भावोऽकिञ्चनत्-म् वा तत्त्वम्)—वह दशा जिसमें पास कोई वस्तु न हो दरिद्रता

अनर्थ (अनर्थ) पु —विपद्

अनाद्यनन्तता (स्त्री, नास्त्यादिर्यस्य सोऽनादिः [बहु०] नास्ति अन्तो यस्य सोऽनन्तः [बहु०], अनादि-श्चासावनन्तश्च [कर्मधा वा विशेषणस०] अनाद्यनन्तस्तस्य भावस्तत्ता) आदि अन्तरहितता

अभिरूप (अभिरूप) पु —विद्वान्

अलकाली (स्त्री अलक पु केश+आली स्त्री पंक्ति) घन और लच्छे केशोंकी पंक्ति

अविवेकिता (स्त्री न विवेकी अविवेकी नञ्स०, तस्य भावस्तत्ता) —अविचार

अहोरात्र (अहोरात्र) पु अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र द्वन्द्व, अहन् को अह और रात्रि को रात्र)—दिनरात

आश्रय (न)—आश्रय

उत्तरायण[1] (उत्तरायणम्) न उत्तर अय + अयन न आना)—वे छ मास जिनमें सूर्य दक्षिणसे उत्तर घूमता है।

कल्प (कल्प) पु—ब्रह्माका दिन (जिसका अन्त होनेपर प्रलय होता है)

कलियुग (कलियुगम्) न—कलियुग

कृतयुग (कृतयुगम्) न—सत्ययुग

चतुर्युग (चतुर्युगम्) न—चारका समुदाय

जाल (जालम्) न—खिड़की

तारा (स्त्री)—नक्षत्र

त्रेता (स्त्री)—त्रेतायुग

दक्षिणायन (दक्षिणायनम्) न दक्षिण-अय + अयन-न आना) —वे छ मास जिनमें सूर्य उत्तरसे दक्षिणमें घूमता है।

द्वापर (द्वापर) पु—द्वापरयुग

निशा (स्त्री)—रात

परमाणु (पु कर्म०, परम + अणु—पु) —सबसे छोटा कण

परिजन (परिजन) पु—सेवक

पितामह (पितामह) पु (मह प्रत्यय है)—दादा

प्रदेश्न (प्रदेश्नम्) न—कहना

प्रसूति (स्त्री)—सन्तति

भोज (पु)—एक राजाका नाम

मन्वन्तर (मन्वन्तरम्) न—एक मनुका समय *

याच्ञा—मांगना, मांगना

---

[1] उत्तरा, उत्तरस्मात् रात् उत्तरस्मिन् ई—ये उत्तरके अव्यय रूप हैं। नियम—पूर्व पर, अवर, दक्षिण, उत्तर अपर अधर जिनके उच्चारणसे किसकी? यह आकांक्षा उत्पन्न हो और जिसका अर्थ जाति या धन न हो अथवा जिसका अर्थ बाहरी या पहिननेका वस्त्र हो सर्वनाम है और प्र० प० स० पञ्चमी तथा सप्तमी के एकवचनमें विकल्पसे सब नामकी ऐसे रूप होते हैं। जैसे—पूर्वस्यां पूर्वायां वा दिशायाम् उत्तरस्मिन् उत्तर वा भागे स्वे स्वा (आत्मीया), अन्तरे अन्तरा वा गृहा (बाह्य), अन्तरे अन्तरा वा शाटका (अर्थात् परिधानीया)।

* एक मन्वन्तरमें ४३२ , ०×७१=३ ६७ २०, वर्ष होते हैं।

रश्मि (पु)—किरण
राजधानी (स्त्री)—राजधानी
विषय (विषय) पु—विषय
विपरिणाम (विपरिणाम) पु—परिवर्तन
वृत्तान्त (वृत्तान्त) पु—हाल
सम्भव (सम्भव) पु—जन्म
सर्ग (सर्ग) पु—सर्ग
सम्वत्सर (सम्वत्सर) पु—वर्ष
सुप्रभात (सुप्रभातम्) न (प्रादि०, शोभन वा सुष्ठु प्रभातम्)—शुभ प्रात काल
स्खलित (स्खलितम्) न (स्खल् धातु पर + त)—गलती, प्रमाद

विशेषण।

अतीत (अति + इ + त)—बीता हुआ
अधिगुण (अधिका गुणा यस्य सोऽधिगुण [बहु०])—गुणवान्
अनघ (स्त्री अनघा बहु०, नास्ति अघं दुःखं यस्य वा)—नीरोग
अनुजीविन्—सेवक
अपराद्ध (अप + राध-ि पर अप राध करना + त)—१ (कर्तरि) अपराधी २ (कर्मणि)—विरोधित
अभिजात (अभि + जन् —[जा] दि धा + त) विनीत, कुलीन
उद्यत (उद् + यम् [यच्छ्] धा आरम + त)—तैयार
चतुर्गुण (बहु०)—चौगुना
ज्योतिष्मत्—प्रकाशमान
तावत्—उतना
त्रिगुण (बहु०)—तिगुना
दिव्य—स्वर्गीय
दुःसह—सहनको कठिन
द्विगुण (बहु०)—दूना
परिच्छिन्न (परि + छिद् + त)—परिमित
पौरुष—विष्णु का
प्रतनु—(प्रादि०, प्रकृष्ट तनु)—बहुत छोटा
प्रतिहत (प्रति + हन् + त)—नष्ट
मखज (मख एवं यज्ञ + ज जन् से)—यज्ञसे उत्पन्न
मोघ—व्यर्थ
राजन्वत्—जिसमें अच्छा राजा है

रश्मि (स्त्री०—आ)—रमण | मकर (अनु०, फलानि यस्य : सहित मकरम्)—मय
रोपित (रुह् प्र + त)—लगाया हुआ | मृग—समान
वन्दित (वन्द् प्र + त)—प्रणाम किया गया | मृदु—मुख

धातु ।

वि + अञ्ज् (व्यनक्ति प० पद)—प्रकट करना	वि + द्रु (विद्रवति प० पद)—दूर भगना
वि + हृ (विहरति प० पद)—परिभ्रमण को निकलना	व्रज् (व्रजति प० पद)—जाना, चलाना

अव्यय ।

अतिनिपुणम्—बड़ी कुशलतासे, बड़ ध्यानसे	क्षिप्रम्—शीघ्र
कामम्—मान लिया	स्थाने—मुनासिब (स्थिति का पृ य व)
कच्चित्—१ (आशा या इच्छाको बताता है)—मैं चाहता हूं, मैं आशा करता हूं, २ प्रश्न	वरम्—अच्छा
	सहसा—एकबारगी

पाठ ३२ ।

समास—अव्ययीभाव तथा तत्पुरुष ।

आरम्भिक समासोंका विचार ११ वें तथा १२ वें पाठमें, शब्दसूची में, तथा टिप्पणियोंमें किया जा चुका है। विशेष विवरण इस तथा अग्रिम पाठमें दिया गया है।

यथाशक्ति, प्रतिदिनम्, उपकृष्णम्—इनमें यथा, प्रति, तथा उप का अर्थ

प्रधान है, इसलिये इन समासोंके अर्थ—'शक्तिके अनुसार,' 'प्रतिदिवस', तथा 'कृष्णके पास' ये हैं।

अव्ययीभाव—इस समासमें प्रायः पूर्वपदके अर्थकी प्रधानता रहती है। बाधक—शाकप्रति = शाकस्य लेशः शाकप्रति। इसमें उत्तरपद प्रति का अर्थ प्रधान है। क्योंकि इस समासका अर्थ 'शाकका लेश' है।

प्रधान अव्ययीभावोंके विग्रह नीचे दिये जाते हैं—

हरौ इति अधिहरि (इसको सप्तमी विभक्त्यर्थ अव्ययीभाव कहते हैं। अधि सप्तमीके अर्थमें है), कृष्णस्य समीपमुपकृष्णम्, यावन्तः श्लोकाः यावच्छ्लोकमच्युतप्रणामाः (विष्णुको उतने प्रणाम जितने श्लोक, यावत् अवधारण या निश्चयका बोध कराता है), यावदमत्रं ब्राह्मणानामन्त्रय अमत्र=पात्र यमत्राणि तावतो ब्राह्मणानित्यर्थः (जितनी थालियां हों उतने ब्राह्मणोंको बुलाओ), जीवनपर्यन्त यावज्जीवम्, विधिमनतिक्रम्य यथाविधि, गङ्गायाः पारे पारेगङ्गम् पारेगङ्गात्, गङ्गाया मध्ये मध्येगङ्ग मध्येगङ्गात् (पार तथा मध्य का पारे तथा मध्ये होता है और समास पञ्चमीके रूपमें भी प्रयोग किया जाता है), दिने दिने प्रतिदिनम्, तृणमप्यपरित्यज्य सतृणम् (जैसे सतृणमत्ति), अक्ष्णः परं परोक्षम् (पर को परः), अक्षं प्रति प्रत्यक्षम्, रूपस्य योग्यमनुरूपम्, 'हरेः पश्चादनुहरि, ज्येष्ठानुक्रमेण अनुज्येष्ठम्, हिमाचलमारभ्य आहिमाचलम् आहिमाचलात्, सेतुपर्यन्तम् आसेतु आसेतोर्वा, मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम् ("कृतं त्वया साम्प्रतं निर्मक्षिकम्'—तुमने अब यहांसे सबको हटा दिया है, तुमने इस स्थानको मक्खीसे भी शून्य कर दिया है।)

समासान्त प्रत्यय—आत्मानमधिकृत्येति अध्यात्मम्, अहनि अहनि इति प्रत्यहं प्रत्यहः वा—अव्ययीभावमें शब्दके अन्तिम अन् का लोप होता है और उसको अ लगाया जाता है। यदि वह अन्नन्त शब्द नपुंसक हो तो ये परिवर्तन विकल्पसे होते हैं।

तत्पुरुष —

द्विजायायं द्विजार्थ ओदन, द्विजायेयं द्विजार्था यवागू, द्विजायेदं द्विजार्थं पयः —

चतुर्थीतत्पुरुष चतुर्थ्यन्त पद तथा अर्थशब्दका होता है, और समासको विशेष्यका लिङ्ग, वचन, तथा विभक्ति होती है। इसको नित्य समास कहते हैं। खट्वारूढ का अर्थ है जाल्म या नीच, इसका विग्रह वाक्य नहीं किया जा सकता। इसीलिये इसको नित्यसमास कहते हैं। विद्यार्थी को जमीनपर सोना चाहिये। यदि वह खटियापर सोवे तो वह खट्वारूढ अर्थात् अविनीत कहा जाता है। खट्वारूढ से यह अर्थ नहीं निकलता। अर्थ शब्द लगाकर द्विजार्थ का विग्रहवाक्य नहीं किया जा सकता। इसलिये यह नित्यसमास है। वह समास जिसका विग्रह ही न हो सके, या समास के पदोंको अलग वाक्य बनाकर नहीं दिखाया जा सके उसको नित्यसमास कहते हैं। अधिहरि, प्रतिदिनम्, इत्यादि सब नित्यसमास हैं। इस प्रकार—अविग्रहोऽस्वपदविग्रहो वा नित्यसमासः।

अश्वघास —अश्वस्य घासः, रन्धनस्थाली—रन्धनस्य स्थाली। ये षष्ठी तत्पुरुष समास हैं। यूपाय दारु यूपदारु—यह तभी होता है जब प्रकृतिविकृतिभाव हो। यूपदारुमें दारु प्रकृति या मूल कारण है और यूप विकृति या उससे बनी हुई वस्तु है। इस प्रकारका सम्बन्ध अश्व और घासमें नहीं है, और न रन्धन और स्थाली में, इस लिये अश्वघास, रन्धनस्थाली इत्यादि षष्ठीतत्पुरुष समास हैं, चतुर्थीतत्पुरुष नहीं।

पुरुषोत्तम —पुरुषेषु उत्तम, नृषु श्रेष्ठ नृश्रेष्ठ द्विजेषु वर द्विजवर द्विजेषु सत्तमः द्विजसत्तम —

पुरुषाणामुत्तम या पुरुषेषु उत्तम, नृणामुत्तम अथवा नृषु उत्तम ये दोनों प्रयोग शुद्ध हैं। ऐसी जगहपर षष्ठी तथा सप्तमी निर्धारणषष्ठी तथा निर्धारणसप्तमी कहाती है, क्योंकि एक व्यक्ति गुणके निमित्त जाति

(वर्ग) से अलग की जाती है, (निर्धारण=निश्चय) और निश्चित की जाती है। निर्धारणषष्ठीका समास निषिद्ध है। इसलिये इस अर्थमें जहां समास हो उसको सप्त० तत्पु० समझना चाहिये, षष्ठी तत्पु० नहीं।

एकदेशिसमास वा अवयविसमास—पूर्वं कायस्य पूर्वकायः, अपरं कायस्य अपरकायः, मध्यं रात्रेः मध्यरात्रः, मध्यमह्नः (अह्नः का मध्य भाग) मध्याह्नः, सायमह्नः सायाह्नः—

यह अवयव तथा समुदायका समास है। एकदेशका अर्थ है अवयव, तथा एकदेशीका अर्थ है अवयवी—समुदाय।

कर्मधारय—पूर्वं स्नातः पश्चादनुलिप्तः स्नातानुलिप्तः (पहिले नहा चुका फिर चन्दन लगा चुका)

मेघ इव श्यामो मेघश्यामः, चन्द्र इव सुन्दरं चन्द्रसुन्दरम्, सप्त च ते ऋषयश्च सप्तर्षयः (संख्यावाचक), शीतं च तदुष्णं च शीतोष्णम् (विशेषण समास), पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः, वदनं कमलमिव वदनकमलम् (उपमितसमास, क्योंकि पुरुष वदनम् इत्यादि उपमित वा उपमेय अर्थात् सादृश्यका विषय है)। पुरुषो व्याघ्र इव शूरः—यहां समास नहीं होता। साधारण धर्मका प्रयोग हो वहां समास निषिद्ध है।

नञ्तत्पुरुष—न ब्राह्मणः अब्राह्मणः

द्विगु—त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी, पञ्चानां पात्राणां समाहारः पञ्चपात्रम्, अष्टानामध्यायानां समाहारोऽष्टाध्यायी, चतुर्णां मूर्तीनां समाहारश्चतुर्मूर्ती—

ये समाहारद्विगुके उदाहरण हैं। समाहारका अर्थ है समुदाय। अकारान्त समाहारद्विगु स्त्रीलिङ्गमें होता है। समासके अन्तिम अ का लोप होता है और उसकी जगह ई होता है।

मासो जातस्य मासजातः, एवं संवत्सरजातः—ये तत्पुरुष कहाते हैं।

समास (संज्ञावाचक), यथा शालाया भद्र भौमशाल (यहाँ तद्धित प्रत्यय भी लगा है)—जिन शब्दोंका तथा शब्दावयवोंका सभी समास होता है जब समासमें समासका भाग हो, या जब समासको बाद तद्धित प्रत्यय लगाया जाय।

उपपदसमास—कुम्भं करोतीति कुम्भकार। सर्वं जानातीति सर्वज्ञ।

प्रादिसमास—अतिक्रान्त इन्द्रियाणि अतीन्द्रिय, निष्क्रान्त कौशाम्ब्या निष्कौशाम्बि, शोभन मित्र सुमित्रम्, कुत्सित मित्र कुमित्रम्, प्रकृष्ट तनु प्रतनु।

मध्यमपदलोपी—शाकप्रिय पार्थिव शाकपार्थिव, देवपूजको ब्राह्मण देवब्राह्मण।

मयूरव्यंसकादि—कुछ अनियत समास इस वर्गमें आते हैं जो तत्पुरुष कहाते हैं।

मयूरो व्यंसक (धूर्त) मयूरव्यंसक, अन्यमेव अन्यमेव वदन अन्यन्तम्, अन्यो राजा राजान्तरम्, चिन्त्र चिन्मात्रम्, नास्ति कुतोऽपि भयं यस्य स अकुतोभय। उच्च च अवाक् च उच्चावचम् (विविध), नास्ति किंचन यस्य सोऽकिंचन। यद्यपि अकुतोभय और अकिञ्चन अर्थमें बहुव्रीहि हैं, तथापि इनकी गणना तत्पुरुषमें है।

तत्पुरुष समासमें प्राय उत्तरपदका अर्थ प्रधान रहता है।

बाधक—पूर्वकाय, ग्रामणीयिक (ग्रामो जीवको ग्रामजीविक) आपन्नजीविक (आपन्नो जीविकाम्)।

समासान्तप्रत्यय—अङ्गानां राजा अङ्गराज, परमश्चासौ राजा च परमराज, महांश्चासौ राजा च महाराज, महान् अहुर्यस्य स महा अहु, महतां सेवा महत्सेवा, प्राचा सखा प्राचीसख, पुण्य च तदहश्च पुण्याहम्—(१) तत्पुरुषके अन्तमें रहनेवाले राजन्, अहन्, तथा सखि शब्दके अन्तिम स्वरका या उपान्त्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जन

का लोप होता है और उसको अ लगाया जाता है, अर्थात् वे रात्र, अह, तथा अह्न में अन्त होते हैं। (२) कर्मधारय तथा बहुव्रीहिमें महत् को महा होता है, पर तत्पुरुषमें नहीं।

मध्यं रात्रेः मध्यरात्रः, अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः (प्रादि स०), मध्यमह्नः मध्याह्नः, पूर्वमह्नः पूर्वाह्णः, अपरमह्नः अपराह्णः, सायमह्नः सायाह्नः, पुण्यं च तदहश्च पुण्याहम्, द्वयोरह्नोः समाहारो द्व्यहः, नवानां रात्रीणां समाहारो नवरात्रम्, अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः, द्वन्द्व—

(३) अहन्, सर्व, एकदेशवाचक—जैसे पूर्व, अपर, तथा मध्य,—संख्यात पुण्य संख्यावाचक तथा, अव्यय पूर्व रहनेपर रात्रिका रात्र होता है, और इन्हीं अवस्थाओंमें अर्थात् सर्व इत्यादि शब्द पूर्व रहनेपर अहन् को अह्न होता है, परन्तु पुण्य, सुदिन अथवा संख्यावाचक पूर्व होनेपर अहन् को अह होता है। (४) रात्र, अह्न, तथा अह शब्दान्त द्वन्द्व और तत्पु० पुंल्लिङ्गमें होते हैं, परन्तु संख्यावाचक पूर्व होनेपर रात्र, तथा पुण्य, सुदिन पूर्व होनेपर अह को नपुंसक लिङ्ग होता है।

(५) इक्षूणां छाया इक्षुच्छायम्—घनी छाया' इस अर्थमें छाया-शब्दान्त तत्पु० नपुंसकमें होता है।

द्वयो राज्ञोः समाहारः द्विराजम्, पञ्चानां राज्ञां समाहारः पञ्चराजम्, पञ्चभिर्गोभिः क्रीतः पञ्चगुः, द्वाभ्यां गोभ्यां क्रीतः द्विगुः।

(६) गोशब्दान्त तत्पुरुषको अ लगाया जाता है पर जब इसको लगे हुए तद्धित प्रत्ययका लोप हुआ हो तो अ नहीं लगता।

कुत्सितो राजा किंराजा, कुत्सितः सखा किंसखा ("स किंसखा शास्ति न यो नराधिपम्"), शोभनो राजा सुराजा, अतिक्रान्तो राजा अतिराजा—

(७) निन्दार्थक किम् तथा प्रशंसार्थक सु और अति पूर्वपद हों तो समासान्त प्रत्यय नहीं होते।

अन्यस्मिञ्जन्मनि न कृतमवश्यं कर्माशाम्यापि । जन्मान्तरकृतं हि कर्म फलमुपनयति पुरुषस्येह जन्मनि ।

किमतु कियन्त्येवापचे वस्तुनि । मुच्यतां शोकानुबन्धः । एतद्धेतुदर्शनं स्मरन कीदृशो मे दुःखानुबन्ध इति जानासि ।

परं हि दैवतमपत्यम् । यत्नेनाराधिता यथाधर्मोचितफलाः दुर्लभानामपि वराणां दातारो भवन्ति ।

प्रायशः कारणमितृणाञ्जलिकल्पाणि च वशा भवन्ति सदा पतीनां ।

स्निग्धस्येषमतिकष्टा दशा उसत । तथा हि रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्तमातपमनवरतमनलधूलिनिकरमिव विकिरति करैः । अधिकामुपजनयति तृषाम् । सन्तप्तपांसुपटलदुर्गमा भूः । अतिप्रबलपिपासाजर्जराणि गात्राणि अपि मे नातिसमर्थानि । अप्रभुरस्म्यात्मनः । सीदति मे हृदयम् । अन्धकारतामुपयाति चक्षुः । अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत् ।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः ।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव ॥

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन
गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।
त्वमात्मनस्तुल्यममुं वृणीष्व
रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ॥

शरणं करवाणि शर्मदं ते
चरणं वाणि चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणैः कटाक्षपातैः
कुरु मामम्ब कृतार्थसार्थवाहम् ॥

इस गांवका रहनेवाला कोई ब्राह्मण स्नानसन्ध्याके लिये दूसरे गांव गया।

चाण्डालको अपने किये हुए पापका विचार जन्मभर दुःख देता है।

द्वारकाद्वीप समुद्रके बीचमें है।

गर्मी तथा प्यासका सताया मैं एक पग भी नहीं चल सकता।

मेरा शरीर दिन २ क्षीण हो रहा है। कदाचित् मेरी इच्छा न रहनेपर भी यम मेरे प्राण लेंगे।

यद्यपि वह निर्धन था तो भी बड़ा उदार था, अथवा इसमें आश्चर्य क्या है? क्योंकि वह दयालु था।

वह सब अध्यापकोंमें उत्तम था, उसके विद्यार्थी उसको पिताके समान मानते थे।

और तुम अधिक काम करोगे और तुम्हारा नाम होगा।

संज्ञाशब्द।

अङ्गक (अङ्ग+क एक प्रत्यय जो कोमलताके अर्थमें आता है) न—कोमल अङ्ग

अनल (अनल) पु—अग्नि

अनुबन्ध (अनुबन्ध) पु—१ बन्धन, सातत्य, २ प्रेम

[1]अम्बा (स्त्री)—माता

अम्बर (अम्बरम्) न आकाश

आतप (आतप) पु—गर्मी

कटाक्ष (कटाक्ष) पु—चितवन

कर (कर) पु—किरण

काञ्चन (काञ्चनम्) न—सुवर्ण

गुणानुबन्धित्व (न गुण पु—अनुबन्ध-पु बन्धन, सातत्य)—गुणोंका लगातार रहना

तल (तलम्) न—तल

तृषा (स्त्री)—प्यास

त्याग (त्याग) पु—दान

१। सं ए व द्वि वच पर अम्बिका नियत है हे अम्बिके।

दैवत (दैवतम्) न—देवता
धूलि—तथा धूली (स्त्री)—धूल
निकर (निकर) पु—समूह
पटल (पटलम्) न—राशि, समूह
पांसु (पु)—धूलि
पात (पात) पु—गिरना
पिपासा (स्त्री)—प्यास
प्रभव (प्रभव) पु—जन्म

मौन (मौनम्) न—चुप रहना
वर (वर) पु—वर
विपर्यय (विपर्यय) पु—वैपरीत्य, विरोध
श्लाघा (स्त्री)—स्तुति
साधुवाद (साधुवाद) पु—समुदाय का अनुवाद

विशेषण।

अजर—अचल
अतिकष्ट—अतिदुःखदायी
अतिप्रबल—अतिबली
अप्रभु—असमर्थ
अवदात (अव+दै—भ्वा पर +त) —शुद्ध, पवित्र
अवसन्न (अव+सद् [सीद्] भ्वा पर +त)—डूबता हुआ, —झुका हुआ
आयत्त (आ+यत् भ्वा आ +त) अधीन
आराधित (आ+राध् चु पर +त) पूजित

आढ्य—मोटा
उपजीव्य (उप+जीव्—भ्वा पर + य)—आश्रय
कामद—सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला
कृतार्थ—कृतकृत्य
चर—चल
दुर्गम—पार करनेमें कठिन
मसृण—कोमल
सन्तप्त (सम्+तप्—भ्वा पर +त) —गरम
समीहित (सम्+ईह—भ्वा आ +त)—इष्ट

धातु।

उप+जन् (णिच् उपजनयति)—उत्पन्न करना

उप+नी (उपनयति—भ्वा पर)—लाना, उत्पन्न करना

उप+पद् (प्रे उपपादयति)—उत्पन्न करना

उप+या (उपयाति—अ पर)—समीप जाना, पाना

वि+कॄ (विकिरति—तु पर)—बिखेरना

मज्ज् (मज्जति भ्वा पर)—झुकना, डूबना

सम्+आ+गम् (समागच्छति भ्वा पर)—मिलना

अव्यय ।

अनवरतम् (अन्+अव+रम्+त) निरन्तर

अपि नाम—सम्भव है, जैसा मैं चाहता हूं।

(यह सम्भव तथा इच्छा का बोध कराता है।)

अलम्—समर्थ

अल्प—थोड़ा

पाठ २३ ।

बहुव्रीहि तथा द्वन्द्व समास ।

बहुव्रीहि—प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः, वीराः पुरुषाः यस्मिन् स वीरपुरुषको ग्रामः, पीतमम्बरं यस्य स पीताम्बरो हरिः। (इनमें समासके पद समानाधिकरण अथवा एक विभक्तिमें होते हैं) इस समासमें दो या अधिक पद होते और वे समानाधिकरण रहते हैं।

व्यधिकरण बहुव्रीहि—असिः पाणौ यस्य स असिपाणिः, दण्डः पाणौ यस्य स दण्डपाणिः। इस बहुव्रीहिमें पद समानाधिकरण नहीं हैं। इस प्रकारका समास कहीं २ होता है, सर्वत्र नहीं।

तद्गुणसंविज्ञान तथा अतद्गुणसंविज्ञान—इसे लोग कहते हैं—लम्बकर्णमानय जब लम्बकर्ण (लम्बौ कर्णौ यस्य स, अमुक व्यक्ति) अथवा गन्दा [illegible] । उसके साथ कान भी उसके साथ आते हैं।

इस प्रकार उसके गुणकी—रवि कानकी—पहिचान (सविज्ञान) है। इस लिये यह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि हुआ। जब हम लोग कहते हैं—दृष्टसागरमानय (दृष्टः सागरो येन स दृष्टसागरस्तं दृष्टसागरम्), तो यहाँ गुणकी कोई पहिचान नहीं है—इस लिये यह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि हुआ।

सीतया सह वर्तमानो—सः वर्तमान ससीत सहसीतो वा (सह को विकल्पसे स होता है) उत्तरस्याः पूर्वस्याः दिशोऽन्तरालं सा उत्तरपूर्वा, दक्षिणस्याः पूर्वस्याः अन्तरालं दक्षिणपूर्वा—इस प्रकारके समास बहुव्रीहि कहाते हैं।

वक्तुं कामो यस्य स वक्तुकाम, गन्तुं मनो यस्य स गन्तुमना (काम और मनस् आगे रहनेपर तुम्का म् का लोप होता है।)

आहित अग्निर्येन स आहिताग्नि अग्न्याहितो वा, प्रभि उदाती येन स अभ्युदात्त (कहीं २ समानाधिकरण उत्तरपद भी होता है)।

बहुव्रीहि समासमें प्रायः अन्यपदार्थ प्रधान रहता है।

साधक—द्वित्रा (द्वौ वा त्रयो वा) इत्यादि। इसमें समासके दोनों पदोंके अर्थ प्रधान हैं।

समासान्त प्रत्यय—सस्त्रीक, सवधूक, बहुकर्तृक—(१) यदि बहुव्रीहिका उत्तरपद ऋकारान्त दीर्घ ई या ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो समासको क लगता है। सनामकम्, अकमकम्—(२) प्रायः बहुव्रीहि समासके अन्तमें क लगता है।

एको वा द्वौ वा एकद्वा, द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा, त्रयो वा चतुरो वा त्रिचतुरा, चत्वारो वा पञ्च वा चतुष्पञ्चा, पञ्च वा षड् वा पञ्चषा, दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशा, द्विरावृत्ता वा दश द्विदशा, त्रिंशतोऽधिका अधिकत्रिंशा, आसन्नविंशा, अदूरपञ्चाशा, अधिकचत्वारिंशा—(३) संख्यावाचकका संख्यावाचकके साथ, अव्ययके साथ,

आसन्न, अदूर, या अधिकके साथ समास बहुव्रीहि समास है। इसमें अन्तिम स्वर या उपान्त्य स्वरके साथ अन्तिम व्यञ्जनका लोप होता और डच् प्र लगता है। त्रिंशतिके ति का लोप होता है और चतुर् में अ लगता है।

केशेषु केशेषु गृहीत्वा युद्धं प्रवृत्तमिति केशाकेशि, दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य युद्धं प्रवृत्तमिति दण्डादण्डि, मुष्टीमुष्टि—(४) ऐसे समासों की गणना बहुव्रीहिमें होती है। इसमें पूर्वपदके अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है और समासके अन्तमें इ लगता है। यह समास अव्यय है और क्रियाकी पुनरुक्ति (कर्मव्यतिहार) का बोध कराता है।

कमले इवाक्षिणी यस्य सः कमलाक्ष, हरिणस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा हरिणाक्षी—(५) बहुव्रीहिके अन्तमें अक्षिको अक्ष होता है (स्त्री अक्षी)।

नास्ति प्रज्ञा यस्य सः अप्रज्ञा, दुष्टा मेधा यस्य सः दुर्मेधा, शोभना प्रज्ञा यस्य सः सुप्रज्ञा —(६) नञ् (अ), दुस्, तथा सु पूर्व रहनेपर प्रज्ञा तथा मेधाको प्रज्ञस् तथा मेधस् होता है।

सीता जाया यस्य सः सीताजानि —(७) बहुव्रीहिके अन्तमें जायाको जानि होता है।

ज्यामधिरूढमधिज्यम्। अधिज्यं धनुर्यस्य सः अधिज्यधन्वा (जिसके धनुषपर प्रत्यञ्चा या डोरी चढ़ी हुई है)—(८) बहुव्रीहिके अन्तमें धनुस्को धन्वन् होता है।

शोभनौ पादौ यस्य सः सुपाद्, द्वौ पादौ यस्य सः द्विपाद्—(९) सु या संख्यावाचक पूर्व होनेपर पादको पाद् होता है। चतुष्पदः—द्वि ब व, चतुष्पदाम्—ष ब व।

शोभनो गन्धो यस्य सः सुगन्धि, उद्गतो गन्धो यस्य सः उद्गन्धि, सुरभिगन्धो यस्य सः सुरभिगन्धि, पद्मस्येव गन्धो यस्य सः पद्मगन्धि —

(१०) उत्, पूति, सु, सुरभि एवं इनमेंसे, वा इनमें समास आनेपर अन्तमें हो, बहुव्रीहि समासके अन्तिम 'गन्ध'को 'गन्धि' होता है।

द्वन्द्व—यह दो प्रकारका होता है, इतरेतरद्वन्द्व और समाहारद्वन्द्व। रामलक्ष्मणौ, हरिहरौ, युधिष्ठिरार्जुनौ, इत्यादि इतरेतरद्वन्द्वके उदाहरण हैं।

पाणिपादम् (पाणी च पादौ च तेषां समाहारः), रथिकाश्वारोहम्, मार्दङ्गिकपाणविकम्, यूकालिक्षम्, अहिनकुलम् इत्यादि समाहारद्वन्द्वके उदाहरण हैं। शरीरावयववाचकोंका, सेनाके अवयववाचक, या वाद्य (बाजा) वाचकोंका, क्षुद्रजन्तुवाचकोंका, अथवा स्वाभाविक विरोध रखनेवाले प्राणिवाचकोंका समास समाहारद्वन्द्व है। ऐसे स्थानपर इतरेतर द्वन्द्व नहीं आता। पाणिपादौ नहीं होगा।

देवताद्वन्द्व—मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ, सूर्यश्च चन्द्रमाश्च सूर्याचन्द्रमसौ, अग्नीषोमौ, अग्नीवरुणौ (पूर्वपदके अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है)।

इतरेतरद्वन्द्वमें दोनों पदोंके अर्थोंकी प्रधानता रहती है, पर समाहारद्वन्द्वमें समुदाय प्रधान रहता है।

एकशेष—माता च पिता च पितरौ, भ्राता च स्वसा च भ्रातरौ, पुत्रश्च दुहिता च पुत्रौ, हंसी च हंसश्च हंसौ, श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ।

अलुक्समास—युधिष्ठिर, परस्मैपद, आत्मनेपद, विशांपति, वाचंयम इत्यादि।

स्वर्गस्य पन्थाः स्वर्गपथः, रम्यः पन्था यस्य स रम्यपथो देशः (समासके अन्तमें पथिन्‌को पथ होता है), विष्णोः पूः विष्णुपुरम्, राज्यस्य धूः राज्यधुरा (पुर् तथा धुर्को अ लगता है)।

पृषोदरादि—पृषत् (बूंदका) उदर पृषोदरम् या पृषत् उदरं यस्य तत् पृषोदरम् (पवन), मनस ईषिणः (विचार करनेवाले)

मनीषिण (पण्डित), वारीणां वाहक बलाहक (मेघ)—कुछ समासोंमें पूर्वपदके कुछ अक्षरोंका लोप होता है। ऐसे अनियत समासों-का इस गणमें समावेश होता है।

सुप्सुप्समास—पूर्व भूत भूतपूर्व, पूर्व दृष्ट दृष्टपूर्व—यह ऐसा समास है जिसकी गणना अव्ययीभाव०, तत्पु०, बहु०, या द्वन्द्वमें नहीं हो सकती। इसमें एक सुबन्त (जिसके अन्तमें सुप् अर्थात् विभक्ति हो) का दूसरे सुबन्तके साथ समास होता है।

सन्देहदोलाधिरूढं मे चेतः।

न शक्नोमि भवन्तं विना क्षणमप्यवस्थातुमेकाकी। कथमपरिचित इवादृष्टपूर्व इवाद्य मामेकपदे उत्सृज्य प्रयासि!

सखे! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनसुलभा एव मायाः। धैर्यधना हि साधवः। किं च कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्तमात्मानं न लज्जसे?

अहह! दुःश्रवमप्रियं खल्वसौ कथोद्घातः।

किमपि वक्तुकामोऽस्मि।

सखे! कथय किमप्यन्यचेतसा मया नावधारितं किमनयोक्तमिति।

अन्तरेणापि शब्दप्रयोगं बहवोऽर्था गम्यन्तेऽक्षिनिकोचैः पाणिविहारैश्च।

यथा कश्चिदाश्वभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण। कश्चिच्चिरतरेण। तद्यथा। तमेवाध्वानं कश्चिदाशु गच्छति। कश्चिच्चिरेण गच्छति। कश्चिच्चिरतरेण गच्छति। रथिक आशु गच्छत्यश्वश्चिरेण पदातिश्चिरतरेण।

गुरुवदस्मिन् गुरुपुत्रे वर्तितव्यमन्यत्रोच्छिष्टभोजनात् पादोपसंग्रहणाच्च। यदि च गुरुपुत्रोऽपि गुरुर्भवति तदपि कर्तव्यं भवति।

अतिमहदिदमाश्चर्यमाख्यातव्यम्। अवधेयमहः। प्रत्यायीन्ति च न जानथ। तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः। सर्व एवाचरन्तु यथोचितं क्रियाः

व्यापारम् । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ८।२
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मधुनि ।

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

वाह ! समुद्रके बीच यह द्वीप कैसा सुन्दर है !

आप यहां तीन या चार दिन ठहरें । इतने अवसरमें मैं आपका कार्य सिद्ध करनेका यत्न करूंगा ।

दीनोंकी रक्षा करना आपको उचित ही है, क्यों कि आप अपने पूर्व पुरुषोंके कामका अनुकरण करते हैं ।

अरे ! यह अंधेरा हो गया ! मुझे शीघ्र उठना चाहिये । अथवा मैं शीघ्र उठकर क्या करूंगा ? मेरे हाथपैर तो चलते नहीं ।

मृगया (शिकार) से लौटे हुए राजाने गोदावरीके तटपर विश्राम किया और तरंगोंसे आनेवाले मन्दपवनसे उसकी थकावट मिट गयी ।

मेरा मन दूसरी ओर लगा था, इसलिये मैंने तुम्हारी कही हुई बात न सुनी ।

वह मित्र, जो राजाको अच्छी सलाह नहीं देता, खराब मित्र है ।

आज वह गाय, जिसके थनपर डाली बंधी हुई थी, जिसके सुन्दर सींग थे तथा काली चोटी थी [illegible] उतरा, उसको सब [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] आये ।

संज्ञाशब्द।

अर्णव (अर्णव) पुं—समुद्र
आगम (आगम) पुं—शास्त्र, वेद
उपसङ्क्रमण (उपसङ्क्रमण) न—धीरे२ चलाना
ओघ (ओघ) पु—समूह
कथोद्घात (कथोद्घात) पुं—कथाका आरम्भ
कपाट (कपाट) पु—कपाटक देशका चाबी
दोला (स्त्री)—झूला
निकोच (निकोच) पु—सकोच
पदाति (पु)—पैदल सवार
रथिक (रथिक) पु—रथारूढ़
विहार (विहार) पु—क्रीड़ा, टहलना
व्यापार (व्यापार) पु—काम
सम्भूति (स्त्री)—जन्म

विशेषण।

अधिरूढ़ (अधि+रुह्+त)—चढ़ा हुआ
अनुरूप—योग्य
अवधारित (अव+धृ—णिच् पर+त)—विचारित
उच्छिष्ट (उत्+शिष क पर+त)—जूठा
एकाकिन्—अकेला
जाह्नवीय—गङ्गाका
दुरासद—कठिनाईसे पाने योग्य
प्राकृत—मामूली
मर्मच्छिद् (मर्मन् छिद्)—मर्मस्थानको काटनेवाला
[1]विह्वलीभवत्—व्याकुल होता हुआ
क्षुण्ण (क्षुद् क्त पर+त)—कुचला गया हुआ
क्षुद्र—नन्हा

१। न विह्वल विह्वल यथा सम्पद्यते तथा भवतीयम —अर्थ [illegible] भाव अर्थ है। इस अर्थमें [illegible] लगाया जाता है और उसके बाद [illegible] भू, भवत् के रूप [illegible]

धातु।

आ + विद् (प्रे॰)—कहना, निवेदन करना | (इति भ्वा॰ पर॰)—पास आना
प्रति + आ + गम् [गौण] प्रत्यागतो | प्र + या (प्रयाति—अ॰ प॰)—आना

अव्यय।

अहह—आः (आश्चर्य दिखाता है।), डरा हुआ वा आश्चर्ययुक्त
आशु—शीघ्र | पार्श्वम् (पार्श्व पु॰, न॰)—एक तरफ
एकपदे—एकाएक | प्रभृति—आरम्भ कर
चकितम् (चक् भ्वा॰ आत्म॰ + त)

पाठ २४।

कारक।

कारकोंके अर्थ इसी पाठमें दिये गये हैं। विशेष धातुओं और उपसर्गोंके योगमें उनके प्रयोग शब्दरूपों तथा टिप्पणियोंमें कहे गये हैं। विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये इस पाठमें विस्तारसे उनका वर्णन किया जाता है।

षष्ठीको छोड़ और सब विभक्तियाँ कारकविभक्तियाँ कहाती हैं, क्योंकि ये क्रियाके साथ अन्वित होती हैं। षष्ठी इस प्रकार क्रियाके साथ अन्वित नहीं होती। यह विशेषणके अर्थमें आती है और विशेषण विभक्ति कहाती है।

प्रथमा—यह नाम की विभक्ति है। इसका अर्थ नाम अथवा प्रातिपदिक है। कर्तरि प्रयोगमें कर्ताके अर्थका क्रियासे बोध होता है। इस लिये प्रथमान्त, यद्यपि वह कर्ता हो, कर्ताके अर्थमें नहीं कहा जाता क्योंकि कर्ता अभिहित अर्थात् क्रियासे बोधित है।

अधोलिखित प्रथमाके अर्थ हैं—

१। माणवक पुस्तकं लिखति—प्रातिपदिकार्थ, मात्राय, या निर्देशार्थ। यह कर्तरि प्रयोग है और कर्ता क्रियासे उक्त है।

२। द्रोणो व्रीहिः—परिमाण यहां द्रोणका अर्थ है द्रोणपरिच्छिन्न द्रोणात्मक परिमाणसे नपा हुआ।

३। रे देवदत्त—सम्बोधन।

द्वितीया—इसका अर्थ है अनभिहित कर्म। कर्मणि प्रयोगमें कर्मका अर्थ क्रियासे अभिहित होता है। इसलिये कर्म प्रथमान्त होता है।

१। माणवको ग्रन्थं लिखति—यह कर्तरि प्रयोग है। यहां कर्मका क्रियासे बोध नहीं होता और इस प्रकार वह अनभिहित है। इसलिये द्वितीया हुई। माणवकेन ग्रन्थो लिख्यते—यह कर्मणि प्रयोग है और कर्म 'लिख्यते' से अभिहित है, द्वितीयासे इसका बोध नहीं होता। इसलिये प्रातिपदिक अर्थमें 'ग्रन्थ' से प्रथमा हुई।

विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्—यहां असाम्प्रतम् इस अव्यय से कर्मका बोध होता है क्योंकि इसका अर्थ न युक्तं (योग्य नहीं है) है। इसलिये विषवृक्षसे प्रथमा हुई।

स्वयमेव दृश्यन्ते कुटुम्बलोकाः—यह कर्मकर्तरिप्रयोग कहाता है। यहां लोक कर्ता भी है और कर्म भी। इसका अर्थ है—लोग और किसीसे देखे नहीं जाते, वे स्वयं अपनेहीसे देखे जाते हैं।

२। दुह्, याच्, इत्यादि द्विकर्मक धातु हैं। (१०६ व टिप्पणी देखो) इन धातुओंके अर्थके दूसरे धातु द्विकर्मक होते हैं।

गां दोग्धि पयः, बलिं याचते वसुधाम्, माणवकं मार्गं पृच्छति, पौरवं गां भिक्षते याचते वा, पुत्रं धर्मं ब्रूते अनुशास्ति वा, वृक्षमवचिनोति फलानि, अजां ग्रामं नयति हरति वहति कर्षति वा तण्डुलानोदनं पचति, व्रज मुष्णाति देवदत्तम्, इत्यादि।

इन उदाहरणोंमें एक प्रधानकर्म है, दूसरा गौण कर्म। पय, गाम्, मासम् गाम् धनम् फलानि, अजाम्, भारम् और शतम् क्रमसे प्रधान कर्म हैं, इतर कर्म गौणकर्म हैं।

गां दोग्धि पय—गाय दुहता पय, वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्षसे फल चुनता है, अजां ग्रामं नयति—अजा ग्रामको ले जाता—

३। नी, हृ, कृष, तथा वह्के कर्मणि प्रयोगमें प्रधान कर्म, और इतर दुहादि धातुओंके कर्मणि प्रयोगमें गौणकर्म क्रियासे अभिहित होता है, इसलिये वह प्रथमान्त रहता है और दूसरा कर्म द्वितीयान्त।

प्रेरणार्थक प्रयोगोंके नियम हैं —

हरिः पुस्तकं पठति (अण्यन्तावस्था, णिच् या णि प्रेरणार्थक प्रत्यय है, ण्यन्तावस्था=प्रेरणार्थक प्रयोग और अण्यन्तावस्था=अप्रेरणार्थक प्रयोग)।

माधवः हरिं पुस्तकं पाठयति—ण्यन्तावस्था अथवा प्रेरणार्थक प्रयोग। माधव प्रेरक कर्ता कहलाता है।

माधवेन हरिः पुस्तकं पाठ्यते—ये कर्मणि प्रयोग।

४। अण्यन्त अवस्थाका कर्ता ण्यन्त अवस्थामें तृतीयान्त होता है।

गच्छति भृत्यो ग्रामम्। गमयति भृत्यं ग्रामं राजा। गम्यते भृत्यो ग्रामं राज्ञा। सुरा अमृतमश्नन्ति। हरिरमरानमृतमाशयति। हरिणा देवा अमृतमाश्यन्ते।

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान् वेदमध्यापयद्विधिम्॥
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः॥

इत्यादि स्मरणम्—

५। गत्यर्थक, ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक, तथा ऐसे धातु जिनका कर्म शब्द हो, तथा अकर्मक धातुओं का अण्यन्त दशाका कर्ता ण्यन्त दशामें

द्वितीयान्त होता है, तृतीयान्त नहीं। ऊपर दिये हुए श्लोकोंमें इस नियमके सब उदाहरण हैं। दृश धातुमें भी वैसा ही प्रयोग होता है।

नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन। हारयति कारयति वा भृत्यं भृत्येन वा कटम्।—

६। नी तथा वह् धातुका अण्यन्त रचनाका कर्ता ण्यन्त रचनामें तृतीयान्त रहता है, और हृ तथा कृ का अण्यन्त रचनाका कर्ता ण्यन्त रचनामें द्वितीयान्त या तृतीयान्त रहता है।

बोध्यते माणवकं धर्मं, बोध्यते माणवको धर्ममिति वा। भोज्यते ब्राह्मणं ओदनम्, भोज्यते ब्राह्मणोऽन्नम् इति वा। शिष्यो वेदमध्याप्यते, शिष्यं वेदोऽध्याप्यत इति वा।—

७। ज्ञानार्थक, भक्षणार्थक, तथा शब्दकर्मक धातुओंमें ऊपर दिये हुए दोनों प्रकारके प्रयोग होते हैं।

उपवसति—अनुवसति—अधिवसति—आवसति वा वैकुण्ठं हरिः (११९ वें पृष्ठमें टिप्पणी देखो)।

अन्तरा त्वां मां च कमण्डलुः। अन्तरेण हरिं न सुखम् (१५५ वें पृष्ठमें शब्दसंग्रह देखो)।

अधिशेते—अधितिष्ठति—अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः (१२९ वें पृष्ठमें टिप्पणी देखो)।

हा कृष्णाभक्तम्। बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित् (हा तथा प्रति के योगमें द्वितीया होती है)।

धिग् जाल्मान्। धिक् कृष्णाभक्तम् (१५४ वें पृष्ठमें शब्दसंग्रह देखो)।

धिगर्थाः कष्टमयाः। धिगियं दरिद्रता। धिङ् मूढ। (इस प्रकार धिक् के योगमें द्वितीया, प्रथमा, तथा सम्बोधन होता है।)

मासमधीते—क्रोशं कुटिला (अत्यन्तसंयोगवाचक)—

८। काल या स्थलकी व्यापकताके अर्थमें द्वितीया होती है।

यह अत्यन्तसंयोग कहाता है। इसका अर्थ क्रियाका काल या स्थानके साथ घना सम्बन्ध है।

तृतीया—यह कर्त्ता या करण अर्थमें होती है।

प्रकृत्या चारु, प्रायेण याज्ञिक, गोत्रेण गार्ग्य, समेनैति (समेन मार्गेणैति), विषमेणैति।

अक्ष्णा काणः। कर्णेन बधिरः। पादेन खञ्जः। पुत्रेण सह सार्धं साकं या समं विना —

१। ऐसे उपलक्षणोंमें तृतीया होती है।

पुस्तकेन दृष्टो हरिः। अध्ययनेन वसति।—

२। यह तृतीया हेतुके अर्थमें है।

अन्न महीपाल तव श्रमेण (अस्मत न किमपि साध्यमित्यर्थ)। अलमतिविस्तरेण। कृतं प्रदर्शनेन।

३। 'अपवर्ग' इस अर्थको प्रकाश करने तथा कालवा दूरताके योगमें तृतीया होती है। यहाँ साधन क्रिया सम्पन्न अर्थात् समाप्त है और फल मिलता करता है।

अह्नाभिलाषेण, इन्द्रियैश्च राजानमपश्यत्, क्रमशस्तुना ज्ञान —

४। यह लक्षणतृतीया कहाती है, क्योंकि यह वस्तुके लक्षणको बताती है।

चतुर्थी—यह सम्प्रदान या तादर्थ्यके अर्थमें होती है (तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या भावप्रत्ययाय)। जिसको कोई वस्तु दी जाय या जिसके सम्बन्धमें कोई क्रिया की जाय वह सम्प्रदान है। जैसे— विप्राय गां ददाति, युद्धाय सन्नह्यते (युद्धके लिये तैयार होता है), गर्गाः करमर्पयति, शिष्याय शास्त्रमुपदिशति गुरु, अतिथये पाद्यमुपनयति।

हरये रोचते भक्ति। यज्ञदत्ताय स्वदतेऽपूप (अपूप = मालपुआ)— यहाँ प्रसन्न होनेवाला (प्रीयमाण) सम्प्रदान है।

हरये क्रुध्यति—कुप्यति—द्रुह्यति—ईर्ष्यति असूयति वा, परन्तु क्रूरमभिक्रुध्यति अभिद्रुह्यति वा—क्रोध, द्रोह (द्वेष), ईर्ष्या, तथा असूया अर्थक धातुओंके योगमें जिसके ऊपर क्रोध इत्यादि हो उसमें चतुर्थी होती है, परन्तु उपसर्गपूर्वक क्रुध् तथा द्रुह् के योगमें द्वितीया होती है।

भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते सम्पद्यते जायते वा (६८ वें पृष्ठमें अष्टमपद देखो)।

देवदत्ताय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा (प्रतिज्ञा करता है)।

फलेभ्यो याति (फलान्याहर्तुं यातीत्यर्थ)।

यागाय याति (यष्टुं यातीत्यर्थः)।

नमो भगवते वासुदेवाय। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्य स्वधा। दैत्येभ्यो हरिरलम् (समर्थ प्रभुर्वा)। वषट् (यह एक शब्द है जो देवताके उद्देश्यसे होम करनेमें प्रयोग किया जाता है) इन्द्राय।

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति—गमनार्थक धातुओंके योगमें द्वितीया वा चतुर्थी होती है, पर पन्थानं गच्छति—जहां जाना हो वह यदि मार्ग हो तो केवल द्वि० होती है, मनसा हरिं व्रजति—यदि वास्तविक गमन वा चलना अर्थ न हो तो केवल द्वि० होती है।

उपपदविभक्ति—नम इत्यादि अव्ययोंके योगमें होनेवाली विभक्ति उपपदविभक्ति कहाती है और इनसे इतर विभक्ति कारकविभक्ति कहाती है। वाक्यमें क्रियापद प्रधान रहता है, इतर पद उपपद वा गौण पद होते हैं। उपपदविभक्तिसे कारकविभक्ति प्रबल होती है (उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)। जैसे नृसिंह नमस्करोमि (यहां नम के योगमें चतुर्थी होनी चाहिये और करोमि के योगमें द्वितीया, चतुर्थी उपपदविभक्ति है, और द्वितीया कारकविभक्ति, इसलिये द्वितीया हुई)।

नृसिंहाय नमस्करोमि इत्यादि प्रयोगोंका समाधान, 'फलेभ्यो याति' समान 'नृसिंहमनुकूलं कर्तुं नमस्करोति' ऐसा अर्थ करनेसे होता है।

भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्तका या ऋणी होता है, और भक्त उत्तमर्ण अथवा ऋण देनेवाला)।

पुष्पेभ्यः स्पृहयति, परन्तु यदि इच्छा अत्यन्त प्रबल हो, तो पुष्पाणि स्पृहयति।

न शठाय [illegible]—वे गुरु जिनको भी नहीं समझता।

पञ्चमी—यह अपादान तथा हेतुमें प्रयुक्त होती है। अपादान वह है जिससे कोई वस्तु अलग होता है।

चौराद् बिभेति। चौरात् त्रायते। अध्ययनात् पराजयते (पढ़नेसे भागता है, घबराता है)। यवेभ्यो गां वारयति। मातुर्निलीयते कृष्णः। [illegible] उपाध्यायादधीते। ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते। हिमवतो गङ्गा प्रभवति। तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्।

पृथग् रामेण रामाद्रामं वा। विना रामेण रामाद्रामं वा।

प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादमारुह्य प्रेक्षते), आसनात् प्रेक्षते (आसने उपविश्य प्रेक्षते), [illegible]।

ग्रामो निकटो दूरो वा कृष्णात्।

आ मुक्तेः संसारः (आ = तक—मर्यादा)। आ [illegible] (आ = से—अभिविधि या आरम्भ)।

भवात् प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिः।

ऋते कृष्णात्, ऋते के योगमें पञ्चमी द्वितीया भी होती है ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे। [illegible] पश्यति। रामादन्यो धनुर्धरो न।

षष्ठी—यह सम्बन्धका बोध कराती है।

किं निमित्तं वसति। केन निमित्तेन [illegible], इत्यादि। निमित्त शब्द तथा इस प्रकार और शब्दोंके योगमें सब विभक्तियाँ होती हैं।

नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः—निर्धारणषष्ठी वा निर्धारणसप्तमी (२२० तथा २२१ का पृष्ठ देखो)।

सत्सु (पुत्रादिषु) सत्सु (पुत्रादिकेषु) वा प्राव्रजत्—यद्यपि पुत्र इत्यादि हो रहे थे तो भी वह सन्यासी हुआ। यह अनादरषष्ठी वा अनादरसप्तमी है। इसका अर्थ है—सन्तं पुत्रादिकमनादृत्य।

मातुः स्मरति बालः। मातरं स्मरति वा। (स्मृ के योगमें षष्ठी वा द्वितीया होती है।)

राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा। (यहांपर षष्ठी तृतीयाके अर्थमें तथा भूतकृदन्त वर्तमान कृदन्तके अर्थमें है।) "अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत्"—रघुवंश—८—८।

तुला सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा।

दक्षिणेन वृक्षवाटिकामालाप इव श्रूयते, दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा, उत्तरेण ग्रामं ग्रामस्य वा—दक्षिणेन तथा उत्तरेण एन—प्रत्ययान्त अव्यय हैं और इनके योगमें द्वितीया वा षष्ठी होती है।

सप्तमी—यह आधार वा अधिकरणका बोध कराती है।

गोषु दुह्यमानासु गतः—सतिसप्तमी।

प्रचित चरत्सु को वा हरिणा हरो वा।

अयि वत्स! कृतं कृतमतिविनयेन। अनेकवारमपरिश्रान्त परिष्वजस्व माम्।

कुशलवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य पोषितौ परिरक्षितौ च। वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः सावधानेन परिपाठितौ। समनन्तरं च गर्भैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ।

हा देव! एष मया विनाहमप्यनेन विनेति क्षमेऽपि येन सम्भावित

आसीत् । तन्मुहूर्तमपि जन्मान्तरमिव लब्धजन्मेव बाष्पसलिलान्तरेषु अपि तावद्दुःखतामापनुम् ।

अनया बालकतया सुदूरमपक्रान्ते स यावद्भद्रमिति मनसि कृत्य तत् कृताञ्जलिरश्रुसलिलवर्षीव खलु प्रणाममकरवम् ।

का तु तदा जीवनं स कलापान्तेन सम्भ्रमवशात् वीणागुणं च निश्चयस्य मनो भवन्तु—राजपुत्र । किमनेनातिनिघृणहृदयया मम मन्दभागिन्या वार्तया च मम प्रभृति वैराग्यवृत्तान्तेनात्मवधोचितेन सुखेन । तथापि यदि भवतः कुतूहलं तत् कथयामि । श्रूयताम् ।

अनभिज्ञाः स्वस्वदशायाम् जीवितविरोधा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनः । नास्ति जीवितान्यासमभिमततरमिह जगति सकलमपि । तद्धुना सुखैरनपि तात पञ्चत्वमिवोपगम्य पुनरेव प्राप्नोमि । धिक् मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम् । तदकृतमपि नापैति पापं हि खलु मे दुष्कृतम् ।

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥

चिरं जीव चिरं नन्द चिरं पालय मेदिनीम् ।
चिरमाजितलोकानां पूरय त्वं मनोरथान् ॥

कमलभुवनया मुखपङ्कजे
वसतु ते कमला करपङ्कजे ।
वपुषि ते रमतां कमलाङ्कज
प्रतिदिनं हृदये कमलापतिः ॥

मूर्खको उपदेश उसकी मूर्खता बढ़ानेके लिये होता है (कृप्)।

यह उसको बुद्धिमान् नहीं बनाता।

हाय! बड़ी बुरी बात हुई! शकुन्तलाने किसी पूज्य ऋषिका अपराध किया।

अग्निके सिवा और कौन धान्योंको जला सकता है?

लोभसे क्रोध उत्पन्न होता है।

मैं नहीं जानता कि अबतक यह राजपुत्र कितना चतुर हुआ है।

नीच आदमी दूसरेके उपकारकी तरफ ध्यान नहीं देता।

सज्जनोंका चरित्र सर्वोत्तम है, जो सदा सच बोलते हैं, और कभी नीचोंके मार्गसे नहीं चलते।

रामने लङ्का जानेके लिये नलसे समुद्रपर पुल बनवाया (कर्तरि तथा कर्मणि प्रयोग करो)।

कृपाकर उसे बीचमें न छोड़िये। मैं आरम्भसे यह किस्सा सुननेके लिये बड़ा उत्सुक हूं।

शब्दार्थ।

अवस्था (स्त्री)—स्थिति

उपकृत (उपकृतम्) न (उप+कृ+त)—उपकार।

कमलभू (पु)—ब्रह्मा (विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न)

कमला (स्त्री)—लक्ष्मी

कमलाङ्गज (अङ्गज पु पुत्र) पु—लक्ष्मीका पुत्र प्रद्युम्न

करपल्लव (कर पु + पल्लव पु न) पु, न—पल्लवके समान कोमल हाथ

कल्प (पु)—विधि

कालकला (स्त्री)—कालका सूक्ष्म भाग

चूडा (स्त्री)—केशान्तसंस्कार

जीवित (जीवितम्) न (जीव्+त)—जीवन

धात्री (स्त्री)—धाई

पर्षद (परिषद) पु —परिषद्
प्राप्य (प्राप ल्यप् । प्र , आप् धातु
रस (रस) पु —अनुराग, प्रेम
रहस्य (रहस्यम्) न —गुप्त बात
ग्रन्थारम्भ (ग्रन्थ पु , आ—
द्वन्द्व + उपात्त पुं लिङ्ग)—
हालत यत पुर प्रश्नका लिनारा
तृप्ति (स्त्री)—सन्तोष आराम
वैराग्य (वैराग्यम्) न —सांसारिक
सुखोंमें द्वेषा

टिप्पण।

अकृतज्ञ—जो किए हुए उपकारको नहीं मानता, कृतघ्न
अतिकष्ट—बहुत दुःख दायक
अतिनिष्ठुर—कठोरहृदय, अतिक्रूर
अध्यापित (अधि + इ—पढ़ना प्रे० + त)—पढ़ाया गया
अनवसित (अन् + अव + सो—त्याग पर + त)—अनिश्चित
अनुपधि—निष्कपट (उपधि पु — कपट)
अविकल—अव्याकुल
अविपर्यसित (अ + वि + परि + अस्—फेंकना णि० + त)—अपरिवर्तित
उपक्रान्त (उप+क्रम् धातु, क्त पर +त)—शुरू हुआ
उपरत (उप+रम् धातु क्त +त)

कल्याणिन्—पुण्यात्मा हितचिन्तक
साधु—सन्तुष्टमनस्को
गर्भकाण्ड—गर्भमें स्थापनी
निरवद्य—निर्दोष, बेकसूर
परिपातित (परि + पत्—णि + त) पछाड़ा गया
पापकृत्—पापी
प्रियप्राय (स्त्री —प्रियप्राया) (बहु० प्रिय + प्राय—पु० अक्षर बहुधा)—प्राय प्रिय, बहुत कर प्रिय
सम्भाषिन्—प्रवक्ता
मञ्जुल—कोमल, मधुर
सम्भावित (सम् + भू—णि + त) —विचारित, चिन्तित
पुण्यकीर्तिनामन् (बहु०)—शुभ नामवाला
विशुद्ध (वि + शुध्—णि पर + त) —अत्यन्त पवित्र

धातु ।

अप+मृज् (अपमार्ष्टि—अ पर)—पोंछना

उप+नी (उपनयति—ते—भ्वा उभ)—यज्ञोपवीत करना

मस्ज् (मज्जति—भ्वा पर)—मग्न होना

निष्क्रम् (निष्क्रामति—म्यति—भ्वा, दि—पर)—निकलना

परि+ष्वञ्ज् (परिष्वजते—भ्वा आ)—गले लगाना, आलिङ्गन करना

प्र+क्षल् (प्रक्षालयति—चु पर)—धोना

मनसि कृ (तना०)—सोचना

अव्यय ।

अपरिसयम्—गाढ़

अनेकवारम्—कई बार

उष्णम्—गरम

अलम्—बस

तत्—तो

त्रयीभगम् (त्रयी स्त्री तीन वेद, तत्पु०, क्रियाविशे०)—तीन वेदके सिवा

दीर्घम्—लम्बा

पश्चात्—पीछे

पुरः—सामने

प्रभृति—आरम्भसे (तत प्रभृति—तबसे)

मुहुः—बार २

वस्तुतः—सचमुच

समनन्तरम्—बाद

सावधानम् (अव अवधानेन सहितं यथा स्यात्तथा)—ध्यानपूर्वक

सुदूरम्—अतिदूर

पाठ २५।

लुट्, लृट्, लृङ्।

भविष्यत् तथा क्रियातिपत्ति।

न जाने प्रातःकाले किं भविष्यति—मैं नहीं जानता कि सबेरे क्या होगा।

शत्रून् विजेष्ये वा मरिष्यामि वा—मैं शत्रुओंको जीतूंगा या मर जाऊंगा।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यद् दुर्भिक्षं नैव समपत्स्यत—यदि अच्छी वृष्टि होती तो अकाल कभी न होता।

अथ धर्मं व्याख्यास्यामः। कृत्स्नं धर्मं व्याख्यास्याम इति यावत्—हमलोग सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या करेंगे। अथ धर्मं व्याख्यास्यामः का अर्थ है कृत्स्नं धर्मं व्याख्यास्यामः —अर्थात् हमलोग सम्पूर्ण धर्मकी व्याख्या करेंगे। यावत् 'अर्थात्' के अर्थमें आता है।

अथ भगवान् कुशली काश्यपः। अथ प्रश्नार्थोऽयमथशब्दः। "मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ" इत्यमरात्—क्या भगवान् काश्यप सुखी हैं? यहां अथ का अर्थ प्रश्न है। क्योंकि अमरकोशके अनुसार अथो तथा अथ के अर्थ ये हैं —मङ्गल, अनन्तर, आरम्भ प्रश्न तथा पूर्णता।

अह्ना[1] क्रोशेन वा ऽनुवाकोऽधीतो मया। तत्र तु मासमधीतो नायातः —

१। अहन् के रूप इस प्रकार होते हैं —

प्र	अहः	अह्नी अहनी	अहानि
द्वि	„	„	„
सं	„		„
तृ	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
स	अह्नि अहनि	अह्नोः	अहःसु अहस्सु

नियम —अहन् के प्र० द्वि० तथा सं० के ए० व० में अहः रूप होता है। इसीप्रकार द्विवचनमें भकार आदि व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर अहन् के न् को विसर्ग होता है।

मैंने एक दिन वा एक कोसमें अनुवाक पढ़ा, उसने तो एक महीना पढ़ा पर वह न आया।

इन प्रयोगोंकी ओर ध्यान दो। जब क्रियाके फलकी प्राप्ति हो तो तृतीया, तथा जब वह न हो तो द्वितीया (साधन) होती है।

इस पाठमें दोनों प्रकारसे भविष्यत्, तथा क्रियातिपत्तिका वर्णन किया गया है।

अबतक वर्णन किये गये लकार सार्वधातुक लकार थे। क्योंकि इन लकारोंमें धातुको विकरण जोड़ा जाता था, अथवा विकरणके निमित्त होनेवाला परिवर्तन—जैसे द्वित्व इत्यादि—धातुमें होता था। अब जिन लकारोंका वर्णन इस पाठमें तथा अग्रिम पाठोंमें किया जायगा वे आर्धधातुक लकार कहाते हैं। इनके रूप बनानेमें धातुके विकरण जाननेकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

य के सिवा आर्धधातुक व्यञ्जनादि प्रत्यय आगे रहनेपर कुछ धातुओंको इ आगम होता है, कुछ धातुओंको नहीं होता, और कुछको विकल्पसे होता है। वे धातु जिनमें इ आगम होता है सेट् (स+इ), जिनमें वह नहीं होता वे अनिट्[1] (अन्+इट्—इ के बिना),

---

१ अधोलिखित दो कारिकाओंमें अनिट् धातु गिनाये हुए हैं। पहिलीमें स्वरान्त, तथा दूसरीमें व्यञ्जनान्त धातु दिये हुए हैं।

(क) ऊदृदन्तैर्यौतिरुक्ष्णुशीङ्स्नुनुक्षुश्विडीङ्श्रिभिः।
वृङ्वृञ्भ्यां च विनैकाचोऽजन्तेषु निहताः स्मृताः॥

अजन्त (अच्—स्वर) धातुओंमें ऊकारान्त (ऊत्—ऊ) ऋकारान्त, यु रु, क्ष्णु, शीङ्, स्नु, नु, क्षु, श्वि, डीङ् (आत्म०, ङ आत्मनेपदका बोध कराता है) श्रि, वृङ् (आत्म०) वृञ् (उभ०—ञ से उभयपदका बोध होता है), इन धातुओंके सिवा और सब एकाच् धातु निहत या अनुदात्त हैं। वेदमें अनिट् धातुओंको अनुदात्त स्वर होता है। इस लिये अनुदात्त स्वर वा निहतशब्द अनिट् के बराबर है। इसप्रकार अजन्त धातुओंमें ऊकारान्त, ऋकारान्त, तथा यु इत्यादि कारिकामें गिनाये गए धातु सेट् हैं। और इतर

तथा जिनमें इट् विकल्पसे होता है वे वेट् (वा+इट्) कहाते हैं।

यह कहांसे मालूम पड़ता है कि धातु सेट्, अनिट्, वा वेट् है। कारिकामें सब धातुओंमें अनिट् धातुओंका प्रायः संग्रह किया है। ये धातु निम्नलिखित हैं। नये विद्यार्थियोंको इनके कण्ठस्थ करनेकी आवश्यकता नहीं है। तथापि वे लोग, जो चाहते हैं कि व्याकरणका ज्ञान अच्छीतरह हो वह कण्ठस्थ करें।

दो प्रकारका भविष्यत्काल है। एक अनद्यतन (आजका नहीं) अथवा श्वस्तन (कलका) भविष्यत्काल, क्योंकि यह काल होनेवाले

एकाच् धातु अनिट् हैं। ऊदन्त धातु जिनके अन्तमें ऊ या ॠ रहें सेट् हैं। एवं यु, रु, क्ष्णु, शीङ् इत्यादि—सेट् हैं।

(क) शक्लृ पच् मुच् रिच् वच् विच् सिच् प्रच्छित्यज्निजिर्भजः ।
भञ्ज्भुज्भ्रस्ज्मस्जियज्युज्रुज्रञ्ज्विजिर्स्वञ्जिसञ्ज्सृजः ॥
अद्क्षुद्खिद्छिद्तुदिनुदः पद्यभिद्विद्यतिविनद् ।
शद्सदी स्विद्यतिः स्कन्दिहदी क्रुध्क्षुधिबुध्यती ॥
बन्धिर्युधिरुधी राधिव्यध्शुधः साधिसिध्यती ।
मन्यहन्नाप्क्षिप्छुपितप्तिपस्तृप्यतिदृप्यती ॥
लिप्लुप्वप्शप्स्वप्सृपियभ्रभ्लभ्गम्नम्यमो रमिः ।
क्रुशिर्दंशिदिशीदृश्मृश्रिश्रुश्लिश्विश्स्पृशः कृषिः ॥
त्विष्तुष्द्विष्दुष्पुष्यपिष्विष्शिष्शुष्श्लिष्यतयो घसिः ।
वसतिर्दह्दिहिदुहो नह्मिह्रुह्लिह्वहिस्तथा ॥
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम् ॥

हलन्त धातुओंमें (हल्—व्यञ्जन) कारिकामें दिये हुए १०२ धातु अनिट् हैं, और इतर सेट्। कारिकामें दिये हुए धातुओंका क्रम अन्तिम वर्णके अनुसार है—अर्थात् पहिले ककारान्त फिर चकारान्त इत्यादि। यदि कई धातुओंका अन्तिम वर्ण एकही है तो वे बहुधा क्रमसे दिये हुए हैं। कुछ धातुओंके इति तथा विकरण अनुबन्धसहित भी दिये हैं।

१। शम मृज् गुह् गाह् क्लिश (क्लेश पर कष्टमें रखना), तृप्, स्यन्द् ... दह्, मुह् ... स्निह् त्रप्, दृप्, इत्यादि वेट् धातु हैं।

क्रियाका बोध नहीं कराता, और दूसरा सामान्यभविष्यत्काल कहाता है।

अनद्यतनभविष्यत् या लुट्।

	जि—पर।			कृ आत्म।		
प्र पु	जेता	जेतारौ	जेतारः	कर्ता	कर्तारौ	कर्तारः
म पु	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ	कर्तासे	कर्तासाथे	कर्ताध्वे
उ पु	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः	कर्ताहे	कर्तास्वहे	कर्तास्महे

सामान्यभविष्यत्।

	ख्या पर।			दा आत्म।		
प्र पु	ख्यास्यति	ख्यास्यतः	ख्यास्यन्ति	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म पु	ख्यास्यसि	ख्यास्यथः	ख्यास्यथ	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ पु	ख्यास्यामि	ख्यास्यावः	ख्यास्यामः	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

	जि पर।			श्री आत्म।		
प्र पु	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति	श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते

क्रियातिपत्ति।

	ख्या पर।			दा आत्म।		
प्र पु	अख्यास्यत्	अख्यास्यताम्	अख्यास्यन्	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म पु	अख्यास्यः	अख्यास्यतम्	अख्यास्यत	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ पु	अख्यास्यम्	अख्यास्याव	अख्यास्याम	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

नियम —

१। प्रत्यय ये हैं —

लुट् या अनद्यतन भविष्यत्।

पर। आत्म।

तारौ तारः ता तारौ

म पु	तासि	तास्थः	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ पु	तास्मि	तास्वः	तास्मः	ताहे	तास्वहे	तास्महे

लृट् वा सामान्यभविष्यत्।

	पर।			आत्म।		
प्र पु	स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म पु	स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ पु	स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लृङ् वा क्रियातिपत्ति।

	पर।			आत्म।		
प्र पु	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म पु	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ पु	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

१। ता, स्यति—ये विकारक प्रत्यय हैं। इसलिये इनके आगे रहनेपर धातुओंके अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण आदेश होता है।

	गम्—पर। सामान्य—भवि।	संगम्—आत्म। सामान्य—भवि।
प्र पु	गमिष्यति गमिष्यतः गमिष्यन्ति	संगंस्यते संगंस्येते संगंस्यन्ते
	हन्—पर।	कृ—पर।
प्र पु	हनिष्यति—इत्यादि।	करिष्यति—इत्यादि।
	हृ—पर क्रियाति।	भू—आत्म क्रियाति।
प्र पु	अहरिष्यत्—इत्यादि।	अभविष्यत—इत्यादि।

२। सामान्यभविष्यत्के प्रत्यय आगे रहनेपर गम् पर, हन्, तथा ऋकारान्त धातुओंको इ होता है।

४ । जो नियम सामान्य भवि० में लगते हैं वे ही क्रियातिपत्ति में लगते हैं ।

वृत्—वर्तिष्यते—वर्त्स्यति, वृध्—वर्धिष्यते—वर्त्स्यति, स्यन्द्—स्यन्दिष्यते स्यन्त्स्यते—ति, क्लृप्—कल्पिताहे—कल्प्ताहे—कल्प्तास्मि, कल्पिष्यते—कल्प्स्यते—ति ।

नियम —

५ । वृत्, वृध्, स्यन्द्, तथा क्लृप् धातु सामा० भवि० में विकल्पसे परस्मैपदी होते हैं और उनके पर० रूपोंमें इ नहीं लगता, क्लृप् में अनद्यतनभविष्यत्के समान भी कार्य होता है ।

दृश्—द्रष्टा द्रष्टारौ द्रष्टारः, द्रक्ष्यति—द्रक्ष्यतः द्रक्ष्यन्ति, द्रष्टुम् (तुम्) द्रष्टृ (देखनेवाला), परन्तु दृष्ट, दृष्ट्वा, दृष्टि ।

सृज्—स्रष्टा स्रष्टारौ स्रष्टारः, स्रक्ष्यति स्रक्ष्यतः स्रक्ष्यन्ति, स्रष्टुम्, स्रष्टृ, पर सृष्ट, सृष्ट्वा, सृष्टि ।

तृप्—तर्पिता, तृप्ता, तप्ता, तर्पिष्यति, तृप्स्यति, तप्स्यति ।

नियम —

(अ) अनुनासिक वा अन्तस्थके सिवा हलादि विकारक प्रत्यय आगे रहनेपर दृश् तथा सृज् के ऋ को नित्य र होता है, तथा दूसरे अनिट् धातुओंमें विकल्पसे होता है । जैसे—

दृश् + ता = द्रश् + ता = द्रष् + ता [२८ वां पाठ (अ)] = द्रष् + टा = द्रष्टा, दृश् + स्यति = द्रश् + स्यति = द्रष् + स्यति = द्रक् + स्यति [२८ वां पाठ ५] = द्रक् + ष्यति = द्रक्ष्यति, सृज् + तुम् = स्रज् + तुम् = स्रष् + तुम् = स्रष् + टुम् = स्रष्टुम्, यज्—यष्टा, यक्ष्यति, यष्टुम्, इष्ट, इष्ट्वा, मृज्—मार्जिता—मार्ष्टा, मार्जिष्यति—मार्क्ष्यति (पाठ ५८ वां ज)।

इन रूपोंमें ज् को ष् हुआ है (२८ वां पाठ अ)। तुम् विकारक

[illegible] है [illegible] है । [illegible]
[illegible] होता है । [illegible]
[illegible] ।

[illegible] — [illegible] , [illegible]
[illegible] ।

[illegible] + [illegible] = [illegible] + [illegible] = [illegible] । [illegible] — [illegible] । [illegible] = [illegible]
+ [illegible] = [illegible] ; [illegible] = [illegible] । [illegible] ।

(ग) [illegible] [illegible] प्रत्यय [illegible]
[illegible] जाता है ।

[illegible] — [illegible] — [illegible] — [illegible] ।

६ । [illegible] [illegible] [illegible] हो
जाता है ।

प्र — प्रणिपतति, प्रणमति ।

७ । [illegible] धातुओं [illegible] प्रत्यय [illegible] है ।

[illegible] — [illegible] , [illegible] , [illegible] — [illegible] ।

[illegible] — [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ।

(ख) [illegible] धातु, [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible] , [illegible] , [illegible]
[illegible]) में ह को [illegible] हो जाता है और [illegible] में [illegible] होता है ।

लभ् — [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] ।

लभ् + [illegible] = लभ् + धा = लब् + धा = लब्धा । दुह् — दोग्धा,
धोक्ष्यति, दुग्ध, दोग्धुम्, दुग्ध्वा । दुह् + ता = दोह् + ता = दोघ् + ता = दोघ् + धा = दोग् + धा = दोग्धा ।

दुह् + स्यति = दोह् + स्यति = दोघ् + स्यति = धोघ् । स्यति ([illegible]
[illegible]) = धोक् + स्यति = धोक् + ष्यति = धोक्ष्यति । दह् — दग्धा, धक्ष्यति,

---

१ । [illegible] [illegible] ।

वोढम् (मृष्)। वह् + ता = वढ् + ता = वढ् + धा = वढ् + ढा = वोढा (२९ वां पाठ, क) — वह् + स्यति = वढ् + स्यति = वक् + स्यति (२८ वां पाठ, ए) = वक् + ष्यति = वक्ष्यति। वच — वक्ता, वक्ष्यति। वच् + स्यति = वक् + स्यति (पाठ १३, २) = वक् + ष्यति = वक्ष्यति, नह् — नद्धा, नत्स्यति (२९ वां पाठ, च), गुह् — गूहिता (११० वें पृष्ठमें टिप्पणी) — गोढा, गूहिष्यति — घोक्ष्यति।

कृ — णि प्रकृति — कारय — कारयिता, कारयिष्यति। नश् — कर्मणि प्रयोगे — नङ्क्ष्यते = नष्ट होगा। त्यज् — कर्म प्र — त्यक्ष्यते = छोड़ा जायगा।

आर्धधातुक लकारोंमें कर्मणि तथा भावे प्रयोगके रूप आत्मनेपद-प्रत्यय लगानेसे बनते हैं।

दा — दाता, दायिता, दास्यते, दायिष्यते, कृ — करिष्यते, कारिष्यते, कर्ताहे, कारिताहे, हन् — हन्ता, घानिता, हनिष्यते घानिष्यते, ग्रह् — ग्रहीता, ग्राहिता, ग्रहीष्यते ग्राहिष्यते, दृश् — द्रष्टा, दर्शिता, द्रक्ष्यते, दर्शिष्यते।

(ङ) अजन्त, हन्, ग्रह् तथा दृश् धातुके कर्मणि तथा भावे प्रयोगमें आर्धधातुक लकारोंके रूप दो प्रकारोंसे बनते हैं। — (१) उन २ लकारोंके आरम्भ प्रत्यय जोड़नेसे, तथा (२) अनिट धातुओंमें भी प्रत्ययोंको इ आगम कर अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य अ को वृद्धि तथा इतर उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण आदेश करनेसे। जब हन् के उपान्त्य अ को वृद्धि होती है तो ह को घ् होता है। आकारान्त धातुओंके इन वैकल्पिक रूपोंमें इ के पूर्व य् आगम होता है।

त्वत्कृते मुम्बापुर्यां बहूनि पुस्तकान्यानेष्यामि।
[illegible] आपाययिष्यति।

[illegible]

[illegible]

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ।

[illegible]

मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक् ।

केका वाणी मयूरस्य समौ चन्द्रकमेचकौ ॥—इत्यमरः ।

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।

द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ॥

[1]त्वया सह निवसन्त्यपि [illegible] ।

इति [illegible] ॥

[illegible] ।

१। 'न बनोंगे तुम्हारे (राम) साथ [illegible] — इस विचारसे सीता प्रसन्न होती थी, उसका (रामपर) प्रेम बढ़ा हुआ था।

निमित्तमुद्दिश्य हि यः प्रकुप्यति
ध्रुवं स तस्यापगमे प्रसीदति।
अकारणद्वेषपरो हि यो भवेत्
कथं जनस्तं परितोषयिष्यति॥

सुताम्रपर्णीसलिलराशियोगे
निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं
रामेश्वराख्यं नियतं स्मरामि॥

तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं प्रार्थयिष्यति॥
आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥



चाहे मैं इस कार्यको सिद्ध करूंगा, चाहे देह त्याग दूंगा।
जब मैं समुद्र जाऊंगा, तुम्हारे लिये चन्दन की पुस्तकोंको लाऊंगा।
चोर लोग ज्ञानधनको नहीं चुरा सकते।
रे दुष्ट! तू फिर न खड़ा होगा।
यदि तू मेरी आज्ञा न मानेगा, मैं तुझे अपने तेजसे जला दूंगा।

मैं नहीं जानता कि मेरा मित्र इस बार घर आवेगा या नहीं। उसने उसी दिन संसार का त्याग किया जिस दिन उसको सांसारिक सुखोंसे घृणा हुई।

उनके लिये चिन्ता न करो, वे लोग जहां जायेंगे, पण्डितोंसे साथ शास्त्रचर्चा कर सबका मनरञ्जन करेंगे।

संज्ञाशब्द।

अच्युत (अच्युत) पु —विष्णु
अनल (अनल) पु —अग्नि
अपगम (अपगम) पु हटना
अदस् (न)—भिन्न
आशा (स्त्री)—आशा
केका (स्त्री)—मोरकी बोली
गृहिन् (पु)—गृहस्थाश्रमी
गोष्ठी (स्त्री)—सभा, बातचीत
चन्द्रक (चन्द्रक) पु —मोरके परका चन्द्राकार चिह्न
जलराशि पु (तत्पु०, जल—न + राशि—पु समूह)—समुद्र
तत्त्वबोध पु (तत्पु०, तत्त्व—न यथार्थता + बोध — पु)—यथार्थताका ज्ञान
तूल (तूल —लम्) पु , न —रुई
दुर्भिक्ष (दुर्भिक्षम्) न —अकाल
नारायण (नारायण) पु (बहु०, नार पु जल + अयन—न स्थान)—वह जिसका स्थान जल है, हरि, विष्णु
निमित्त (निमित्तम्) न —कारण
नीलकण्ठ (नीलकण्ठ) पु —मयूर मोर
पाण्डव (पाण्डव) पु —पाण्डुका पुत्र
प्रातःकाल (प्रातःकाल) पु — (प्रातर्—अव्य - प्रातःकाल)
प्रसाद (प्रसाद) पु—कृपा
बर्हिण (बर्हिण) पु —मयूर, मोर
बर्हिन् पु (बर्ह—न पर, + इन्—एक मत्वर्थीय प्रत्यय)—मयूर
ब्रह्मचर्य (ब्रह्मचर्यम्) न —एक आश्रम जिसमें वेदाध्ययन होता है
भुजगभुज् पु (उपपद स०)—सर्पभक्षक , मयूर
मुम्बापुरी (स्त्री)—बम्बई नगर
मेचक (मेचक) पु —मोरके परका चन्द्राकार चिह्न
योग (योग) पु —सम्बन्ध, मिलना
वृन्दावन (वृन्दावनम्) न —एक वनका नाम
वनिन् (पु)—वानप्रस्थ
वाद (वाद) पु —विवाद
विमान (विमानम्) न —विशिष्ट यान
विशिख (विशिख) पु —बाण
विहङ्गम (विहङ्गम) पु —पक्षी
शल्य (शल्य) पु —राजा शल्य

शृङ्ग (शृङ्गम्) न—सींग
श्लोक (श्लोक) पु—अनुष्टुभ् छन्द
मलय (मलय) पु—पाश
सन्देह (सन्देह) पु—संशय
सुभाषित (सुभाषितम्) न—मधुरवाणी
सुवृष्टि (स्त्री)—अच्छी वृष्टि
सेतु (पु)—पुल
सुताम्रपर्णी स्त्री (सु अव्यय अच्छी + ताम्रपर्णी स्त्री)—सुन्दर ताम्रपर्णी नदी

विशेषण ।

अकारणद्वेषपर (बहु०, न कारणं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा अकारणम् (अव्य०स०) अकारणं द्वेष अकारणद्वेष (कर्म०) अकारणद्वेष पर प्रधान वस्तु यस्य स)—बिना किसी कारणके दूसरोंके साथ द्वेष करनेमें लगा हुआ
अप्रत्यक्ष—परोक्ष
उदीरित (उत्+ईर+त)—उक्त, कहा गया
कृत्स्न—सम्पूर्ण, सब
गतानुगतिक (बहु०, गत—गम्+त+अनुगति—स्त्री अनुगमन + क—एक प्रत्यय)—देखा देखी चलनेवाला
तीक्ष्ण—तेज
ध्येय (ध्यै+य)—ध्यान करने योग्य
पारम्परिक—परम्परासे चला आता
ब्रह्मनिष्ठ (बहु०, ब्रह्मन्—न पर-ब्रह्म + निष्ठा—स्त्री भक्ति)—ब्रह्ममें लीन
मद्यायिन् (तत्पु०, मत् में + यायिन्)—उत्तमसे घूमनेवाला
मधुगन्धि—मधुके समान गन्धसे युक्त, अथवा यह मधुगन्धिन् शब्द है—मधुन गन्ध मधुगन्ध, स यथास्तीति मधुगन्धीनि वनानि—मकरन्दकी सुगन्धसे सुगन्धित
रामेश्वराख्य (बहु०, रामेश्वर—पु + आख्या—स्त्री नाम)—रामेश्वरनामक
वटवासिन् (वट पु वटवृक्ष + वासिन्)—वटके रहनेवाला

घटा—सावन घाम
धारिन्—धैर्यिक
समवेत (सम्+अव—इ+त)—एकत्र हुआ
समित्पाणि (समित्० बहु०, समिध्—जो समकाष्ठ+पाणि—पु हाथ)—हाथमें समकाष्ठ लिया हुआ
सुनिबद्ध (सु अच्छा अच्छी तरह+निबद्ध—निस्+ बन्ध् + त) अच्छी तरह बंधा हुआ

धातु।

अनु+भू (अनुभवति—भ्वा० पर)—अनुभव करना, जानना
परि+क्षुभ् (परिक्षुभ्यति दि० पर) पर—प्रहार करना
प्र+कुप् (प्रकुप्यति दि० पर)—अत्यन्त कुपित होना
प्रति+ज्ञा [ज्ञा] (प्रतिजानाति क्र्या० उभ)—प्रतिज्ञा करना
प्र+भ्रम् (प्रभ्रमति भ्वा० पर)—मत रहा सदा करना, भ्रमण करना
वि+आ+पद् (व्यापद्यते दि० आत्म) णि—मारना
वि+रञ्ज् (विरजति स, विरज्यति स भ्वा उभ दि० उभ)—संसारसे घृणा करना, वैराग्य करना
सम्+पद् (सम्पद्यते दि० आत्म)—होना

अव्यय।

आलोच्य—(आ+लुच्—भ्वा० पर से ल्यप् प्रत्यय कृ)—समझकर, खूब विचार कर
अथवा—अथवा
इति—इस प्रकार
उद्दिश्य—उद्+दिश् प्रत्यय कृ)—विचारकर
निबध्य—(नि+बन्ध्—ल्यप् प्र कृ)—रचकर, बनाकर
नियतम्—अवश्य
नो—नहीं
विधानार्थम् (चतु० तत्पु० क्रियाविशे० विधान न+अर्थ)—बनानेके लिये
सत्यम्—सच
ह—निश्चय

पाठ ३६।

परोक्षभूत वा लिट्।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्—उस (रघु) ने यज्ञके लिये पृथ्वीको दुहा (प्रजाओंसे कर लिया), (और) इन्द्रने स्वर्गको दुहा (अन्नके लिये वृष्टि की)।

मघवन्—पु

द्वि	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
स	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
सं	मघवन्	मघवानौ	मघवानः

मघोन्—मघवन् का भ अङ्ग है।

शिवधनुर्भङ्क्त्वा रामः सीतां परिणिनाय—शिवके धनुको तोड़कर रामने सीताको विवाह किया।

स राजा मृगयां कर्तुं वनं जगाम—वह राजा शिकार करनेके लिये वनको गया।

सेनयोस्तुमुलं युद्धं बभूव—दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ।

तत्र विप्राश्रमसमीपे मुनिमेकं ददर्श सः—वहां ब्राह्मणके आश्रमके समीप उसने एक मुनिको देखा।

उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ—वैश्य और राजा, जो बैठे थे, अनेक प्रकारकी बातें करने लगे।

बहु जगाद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्—मैंने उसके सामने बहुत बातें कीं निश्चय मैं मत्त थी।

ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने—जब राजाने वनमें प्रवेश किया, प्राणियोंमें बली दुर्बलको नहीं सताता था।

इस पाठमें परोक्षभूतका वर्णन किया गया है। संस्कृतमें तीन भूतकालिक लकार हैं। पहिले उनके अर्थोंमें भेद था, पर उसके बादके साहित्यमें बिना भेदके उनका प्रयोग किया गया है।

पहिले परोक्षभूतसे दूरकी भूतकालिक क्रियाका बोध होता था। संस्कृत साहित्यमें इसका बहुत प्रयोग आता है। उत्तम पुरुषसे मालूम होता है कि वक्ता बेहोश था। जैसे—अहं जगाम पुरस्तात्तस्य सता किलाहम्।

परोक्षभूत।

	गम्—पर			विश्—पर		
प्र पु	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः	विवेश	विविशतुः	विविशुः
म पु	जगमिथ	जग्मथुः	जग्म	विवेशिथ	विविशथुः	विविश
उ पु	जगम, जगाम	जग्मिव	जग्मिम	विवेश	विविशिव	विविशिम

	मुद्—आत्म।			वृध्—आत्म।		
प्र पु	मुमुदे	मुमुदाते	मुमुदिरे	ववृधे	ववृधाते	ववृधिरे
म पु	मुमुदिषे	मुमुदाथे	मुमुदिध्वे	ववृधिषे	ववृधाथे	ववृधिध्वे
उ पु	मुमुदे	मुमुदिवहे	मुमुदिमहे	ववृधे	ववृधिवहे	ववृधिमहे

नु—पर।

प्र पु	नुनाव	नुनुवतुः	नुनुवुः
म पु	नुनविथ	नुनुवथुः	नुनुव
उ पु	नुनव—नुनाव	नुनुविव	नुनुविम

इन रूपोंसे यह मालूम पड़ेगा कि

१। परोक्षभूतमें धातुओंको द्वित्व होता है। द्वित्वके नियम ३० वे पाठमें दिये गये हैं।

२। परोक्षभूतके प्रत्यय ये हैं —

	पर।			आत्म।	
प्र पु	अ	अतुस्	उस्	ए	आते	इरे
म पु	थ	अथुस्	अ	से	आथे	ध्वे
उ पु	अ	व	म	ए	वहे	महे

३। इन प्रत्ययोंमें थ, व, म और वहे, महे, से, तथा ध्वे में इ आगम हो सकता है (४४ वां पाठ देखो)।

४। विशेष, विविशिष, इत्यादि—परस्मैपदमें एकवचन विकारक हैं, द्विवचन, बहुवचन तथा आत्मनेपदमें सब प्रत्यय अविकारक हैं।

५। विशेष, लगाव लगाव, तुगव तुगाव—विकारक प्रत्यय आगे रहने पर अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण आदेश होता है, प्र पु ए व में अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य अ का नित्य वृद्धि होती है, और उ पु ए व में विकल्पसे होती है।

६। तुष्टुविव इत्यादि—अकारादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके अन्तिम उ को उव् होता है।

	कृ—उभ पर।			आत्म।		
प्र पु	चकार	चक्रतुः	चक्रुः	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म पु	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ पु	चकर कार	चकृव	चकृम	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

	श्रु—पर।			सृ—पर।		
प्र पु	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः	ससार	सस्रतुः	सस्रुः
म पु	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव	ससर्थ	सस्रथुः	सस्र
उ पु	शुश्रव श्राव	शुश्रुव	शुश्रुम	ससर सार	ससृव	ससृम

इन रूपोंसे मालूम होगा कि इनमें इ आगम नहीं होता।

नियम —

७। कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, तथा श्रु धातुओंसे परोक्षभूतमें इ आगम नहीं होता।

८। थकारे—अ या आ के सिवा कोई अन्तस्थ स्वर पूर्व होनेपर थ का नित्य इ होता है।

	क्री—पर।			आत्म।		
प्र पु	चिक्राय	चिक्रियतुः	चिक्रियुः	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म पु	चिक्रयिथ चिक्रेथ	चिक्रियथुः	चिक्रिय	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे ढ्वे
उ पु	चिक्रय-क्राय	चिक्रियिव	चिक्रियिम	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

	प्रच्छ्—पर।			त्यज्—पर।		
प्र पु	पप्रच्छ	पप्रच्छतुः	पप्रच्छुः	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
म पु	पप्रच्छिथ पप्रष्ठ	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ	तत्यजिथ तत्यक्थ	तत्यजथुः	तत्यज
उ पु	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम	तत्यज त्याज	तत्यजिव	तत्यजिम

	सृ—आत्म।			हृ—पर।		
प्र पु	ससार	सस्रतुः	सस्रुः	जहार	जह्रतुः	जह्रुः
म पु	ससर्थ	सस्रथुः	सस्र	जहर्थ	जह्रथुः	जह्र
उ पु	ससर सार	सस्रिव	सस्रिम	जहर हार	जह्रिव	जह्रिम

नियम :—

९। तत्यजिथ, सस्रिम, पप्रच्छिम, चिक्रियिषे, चकृव, ससृम, दुद्रुव, इत्यादि—कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, तथा श्रु को छोड़कर और सब धातुओंसे थ के सिवा सब प्रत्ययोंके पूर्व इ आगम होता है।

यही नियम अनिट् धातुओंके लिये भी है।

१०। ससर्थ, जहर्थ—ऋकारान्त अनिट् धातुओंमें थ के पूर्व इ आगम नहीं होता।

११। तत्यजिथ—तत्यक्थ—पप्रच्छिथ—पप्रष्ठ, चिक्रयिथ—चिक्रेथ—अजन्त या अकारवान् अनिट् धातुओंमें थ के पूर्व विकल्पसे इ आगम होता है।

१२। चिक्रियतुः, निन्यतुः, इत्यादि—अजादि अविकार प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके अन्तिम इ या ई का इय् होता है, यदि उसके पूर्व संयुक्ताक्षर हो। यदि उसके पूर्व संयुक्ताक्षर न हो, तो य् होता है।

१३। ससार इत्यादि—सृ धातु परोक्षभूतमें परस्मैपदी है। यह दोनों भविष्यत् लकारों तथा क्रियातिपत्ति में भी पर है (पाठ ३५, नियम ७ देखो)।

१४। चिक्रियिढ्वे—ढ्वे—इस ध्वं को ढ्वं होता है और उस इ के पूर्व य्, र्, ल्, व, या ह होता है, तो उसको विकल्प से ढ्वं होता है।

भू—पर। जि—पर।

प्र पु	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
म पु	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव	जिगयिथ जिगेथ	जिग्यथुः	जिग्य
उ पु	बभूव	बभूविव	बभूविम	जिगाय जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

हि—पर। चि—उभ।

प्र पु जिघाय—इत्यादि। चिचाय—काय इत्यादि। चिच्ये चिक्ये इत्यादि।

१५। भू के रूप बभूव् प्रकृतिसे बनते हैं।

१६। परोक्षभूतमें जि धातुके ज् को ग्, हि के ह् को घ्, तथा चि के च् को विकल्पसे क् होता है

	पा—पर ।			म्लै—पर ।		
प्र पु	पपौ	पपतु	पपु	मम्लौ	मम्लतु	मम्लु
म पु	पपिथ पपाथ	पपथु	पप	मम्लिथ मम्लाथ	मम्लथु	मम्ल
उ पु	पपौ	पपिव	पपिम	मम्लौ	मम्लिव	मम्लिम

ध्या—दध्यौ , ग्लै—जग्लौ ।

नियम —

१७। आकारान्त धातुओंमें प्र पु तथा उ पु के ए व का प्रत्यय औ है। अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर, तथा [illegible] आगम होकर थ आगे रहनेपर इस आ का लोप होता है।

१८। ग्लै—ग्लाता, ग्लास्यति जग्लौ—ए, ऐ ओ, तथा औकारान्त धातुओंको सब आर्धधातुक लकारोंमें आकारान्त समझना चाहिये।

	गम्—पर ।			हन्—पर ।		
प्र पु	जगाम	जग्मतु	जग्मु	जघान	जघ्नतु	जघ्नु
म पु	जगमिथ जगन्थ	जग्मथु	जग्म	जघनिथ जघन्थ	जघ्नथु	जघ्न
उ पु	जगाम जगम	जग्मिव	जग्मिम	जघान जघन	जघ्निव	जघ्निम

घस्—जघास जक्षतु जक्षु , खन्—चखान चख्नतु चख्नु ,
जन्—जज्ञे जज्ञाते जज्ञिरे , अद्—आद जघास, आदिथ—जघसिथ।

नियम —

१९। आद—जघास—परोक्षभूतमें अद् को विकल्पसे घस् होता है, तथा थ के पूर्व अद् तथा घस् को नित्य इ होता है।

२०। जग्मतु, जघ्नतु—अजादि अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर गम्, हन्, जन्, खन्, तथा घस के उपान्त्य अ का लोप होता है, अ का

लोप होने पर हन् के ह् को घ् होता है, और घस् को (घस्—क्ष्—क्ष्) ष्, तथा खन् को (खन्—ख्न) ख् होता है।

२१। घस् धातु अद्का परोक्षभूतमें लोपवाला एक आदेश है। इस लिये इससे परोक्षभूतमें रूप नहीं होते।

पुरा किल वसन्ते क्षितिमण्डले सुरथो नाम राजा बभूव। औरसान् पुत्रानिव प्रजाः सम्यक् पालयतस्तस्य कश्चित् भूपः शत्रुर्बभूव। तै सहातिप्रबलस्य तस्य युद्धं बभूव। न्यूनैरपि सैन्यैर्युद्धं स चक्रे। तत स स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्। तत्रापि स प्रबलारिभिराक्रान्तः। दुर्बलस्य तस्य कोशो बलं च सर्वं स्वपुरेऽपि दुरात्मभिर्बलिभिरपजह्रुः। ततो हृतस्वाम्यः स भूपतिर्मृगयाव्याजेन हयमारुह्यैकाकी गहनं वनं जगाम। तत्र च कस्यचिद् द्विजवर्यस्याश्रमपदं ददर्श। तेन मुनिना सत्कृतस्तस्मिन्नाश्रमे स कञ्चित् कालं तस्थौ मुन्याश्रमेषु वसंश्चिन्तयच्च। यत् पुरं मत्पूर्वैः पूर्वं पालितं तन्मया हीनम्। न जाने मद्भृत्यैर्दुर्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते नो वा। धनभोजनैर्नित्यं मयाऽनुसृता सर्वे अनुयायिनोऽन्यान्महीभृतः ध्रुवं कुर्वन्ति। अतिदुःखेन संचितः कोषोऽन्येषामसद्व्ययैः क्षयं गमिष्यतीति।

छन्दः वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनीं गज उज्जहार॥

न सज्जनं यत्र सुचारुपङ्कजं
न पङ्कजं तद्यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज यः कलं
न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मनः॥

एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे।
नूनं न दृष्टं कविनापि तेन
दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जिस प्रकार पिता अपने लड़कोंका हितचिन्तन करता है उसी प्रकार राजाको हृदयसे प्रजाका हितचिन्तन करना चाहिये।

उस प्रचण्ड पवनने, जो कभी किसीने पहिले सुना नहीं था, बागमें सब पेड़ोंको जड़से उखाड़ दिया।

पाण्डव तथा कौरवोंमें अठारह दिन तक घोर युद्ध हुआ। अन्तमें कौरव हारे।

एक बार राजा दुष्यन्त शिकारके लिये वनमें गया। उसने कण्वमुनिके आश्रममें प्रवेश किया। उस आश्रमके एक उद्यानमें उसने दो सखियोंके साथ पेड़ोंको सींचती हुई शकुन्तलाको देखा। उन दोनोंमें परस्पर प्रेम हुआ और उसने शकुन्तलासे गान्धर्व विवाह किया।

शब्दार्थाः

१ अभ्याश (पु)—सामीप्य
अपव्यय (अपव्यय) (पुं कर्म० अपत्—खराब + व्यय—पु खर्च) —अयोग्य खर्च [२ कर्मो
कोश (कोश) पु —१ खजाना,

क्षितिमण्डल न (क्षिति—स्त्री पृथ्वी)—भूमण्डल
गो (स्त्री)—पृथ्वी
चेतन (चेतन) पु —मन
दारिद्र्यदोष (दारिद्र्यदोषः) पु कर्म०,

दारिद्र्य—न निधनता + दोष पु)—निधनताका दोष
देहिन् (पु)—आत्मा
धनुस् (न)—धनु
नलिनी (स्त्री) कमलकी लता
भास्वत् (पु)—सूर्य
मघवत् (पु)—इन्द्र
ममत्व (मम+त्व) न —ममता
महीभृत् (पु)—राजा
मृगयाव्यान पु (मृगया—स्त्री + व्याज—पु)—शिकारका बहाना
वसन्ततिलका—य (स्त्री , न)—एक छन्दका नाम
वासस (न)—वस्त्र
विप्र (विप्र) पु —ब्राह्मण
वृत्ति (स्त्री)—जीविका
षट्पद (षट्पद) पु —भ्रमर
सन्निपात (सन्निपात) पु —समूह
सस्य (सस्य) न —अन्न
सुरथ(सुरथ) पु —एक राजाका नाम
स्वाम्य (स्वाम्य) न —मालकियत, प्रभुता

विशेषण ।

अतिप्रबल—बहुत बली
अनुयायिन्—अनुगामी
अवहृत (अव०)—हरण किया
आकृष्ट (आ + कृष + त)—खींचा गया
आक्रान्त (आ + क्रम् + त)——आक्रमण किया गया
उपविष्ट (उप + विश् + त)—बैठा हुआ
ऊन—दुर्बल
और्ध्व (उरस—न ■)—स्वयं अपना
कल—अस्पष्ट मधुर
गहन—घना
गुणराशिनाशिन्—गुणोंके समुदाय को नष्ट करनेवाला
गोप्तृ —रक्षक
क्षीण (क्षि—ि पर —क्षीयति—का मू कृ)—भरा हुआ
तुमुल—घोर
द्विजन्मन्—द्विजोंमें श्रेष्ठ
निज—अपना
न्यून—दुर्बल

प्रसादित (प्र + सद् — णि + त) — प्रसन्न किया गया

सज्जित — (सज्ज + णि + त) सज्जित किया गया

सत्कृत — जिसका सत्कार किया गया

सहाय — सखा

सुन्दर (वि०, पु० भाव) — अतिसुन्दर

हीन (हा — छोड़ना, + त) — रहित, शून्य

धातु।

अप + हृ (अपहरति — भ्वा पर) — हरना, ले जाना

उत् + मूल् (उन्मूलति भ्वा पर) — उखाड़ना

गर्ज् (गर्जति भ्वा पर) — बोलना

गाह् (गाहते — भ्वा आ) — प्रवेश करना

गुञ्ज् (गुञ्जति भ्वा पर) — गूँजना

नि + मस्ज् [मज्ज्] (निमज्जति — तु पर) — डूबना

परि + णी [नी] (परिणयति भ्वा पर) — विवाह करना

पालय (पा चु पर णि) — रक्षा करना

बाध् (बाधते — भ्वा पर) — दुःख देना, सताना

सम् + या (संयाति — अ पर) — प्रयाण करना

हस् (हसति — भ्वा पर) — हँसना

अव्यय।

किञ्च — निश्चयसे, लोग ऐसा कहते हैं

नामयित्वा (नम् णि अव्य [illegible] कृ) [illegible]

नूनम् — निश्चयसे

पुरा — पूर्वकालमें

पुरस् — पहिले

पाठ २७।

परोक्षभूत।

जनको विदेहेशो बहुदक्षिणेन यज्ञेन ईजे (यज्+लिट्)—विदेहके राजा जनकने यज्ञ किया, जिसमें बहुत दक्षिणा दी गयी थी।

ते कपीन्द्राः मन्युं रोद्धुं न शेकुः—वे उत्तम कपि क्रोधको न रोक सके।

तयोस्तुमुलं युद्धं समापेदे—उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ।

निशम्य सेवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच—देव (शिव) के सेवककी बात सुनकर मनुष्योंके स्वामी (राजा) ने फिर कहा।

विश्वामित्रमागतं प्रेक्ष्य वसिष्ठः स्वागतं व्याजहार—विश्वामित्रको आये हुए देख वसिष्ठने स्वागत वचन कहा।

परोक्षभूत।

पच्—पर।

प्र पु	पपाच	पेचतु	पेचु
म पु	पेचिथ पपक्थ	पेचथु	पेच
उ पु	पपच पपाच	पेचिव	पेचिम

शक्—पर।

प्र पु	शशाक	शेकतु	शेकु
म पु	शेकिथ शशक्थ	शेकथु	शेक
उ पु	शशक शशाक	शेकिव	शेकिम

तॄ—पर। वम्—पर।

प्र पु	ततार	तेरतु	तेरु	ववाम	ववमतु वेमतु	ववमु वेमु

भज्—पर। राज्—पर।

प्र पु	बभाज	भेजतु	भेजु	रराज	रराजतु रेजतु	रराजु रेजु

नृप धातु । यम्—धा ।

म पु ऐजिथ अप्से अज्ञाथ ऋचि ग्रे अ घ म पु ददाथ ददथुः ददथु

भ्रस्ज्—धा ।

म पु बभस्थ बभ्रज्जथु बभ्रज्ज

नियम —

१। पपक्थ, बभ्रज्जथ, चकर्तिथ, ऋषिथ—यदि किसी धातुमें संयुक्त व्यञ्जन न हो और उसका प्रथम व्यञ्जनमें ह्रस्व होकर कोई परिवर्तन न होता हो, तो अभ्यासका लोप होता है और अविकारी का प्रत्यय तथा ए का सहित थ आगे रहने पर एकार हो जाता है।

२। ससृ, शिश्रय कृतिथ च, अर्पिथ अर्पिथ—सृ कृ, भज, भज इत्यादिमें थल तथा अभ्यासलोप नित्य, तथा त्रसु भ्रम्, राज्, भ्राज् इत्यादिमें विकल्पसे होता है।

३। ग्रसम् —अकारादि धातुओंमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

स्मृ—धा । ऋ—धा ।

म पु सस्मार सस्मरतुः सस्मरु म पु आरिथ आरथु आर

कृ—धा ।

प्र पु चस्कार चस्करतु चस्करु

४। सस्मरतु, चकरतु, आरतु अजागरतु —ऋकारान्त धातु, जिनके पूर्व संयुक्ताक्षर हो, ऋकारान्त धातु ऋ, तथा जाग धातुके परोक्षभूतमें अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर भी गुण आदेश होता है।

यज्—धा । वह्—धा ।

प्र पु इयाज ईजतु ईजु उवाह ऊहतु ऊहुः

म पु इयजिथ इयष्ठ ईजथु ईज उवहिथ उवोढ ऊहथु ऊह

उ पु इयाज ईजिव ईजिम उवह उवाह ऊहिव ऊहिम

यज् + थ = यज्यज् + थ = इयज् + थ = इयष् + थ (२८ वां पाठ, अ) = इयष् + ठ = इयष्ठ।

यज् + अतु = इज् + अतु = इइज् + अतु = ईजतु।

	यज्—पर।			वच्—पर।	
प्र पु	इयाज	ईजतुः	ईजुः	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः

	वद्—पर।			वच्—आत्मने।	
प्र पु	उवाद	ऊदतुः	ऊदुः	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे

४। यज्, वद्, वप्, वह्, व्यध्, वच्, वस् (१ला), ग्रह, स्वप्, तथा और कुछ धातुओंका परोक्षभूतमें अभ्यासको सम्प्रसारण होता है। अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुओंका द्वित्व होनेसे पूर्व सम्प्रसारण होता है।

	इष्—पर।			इ—पर।	
प्र पु	इयेष	ईषतुः	ईषुः	इयाय	ईयतुः	ईयुः
म पु	इयेषिथ	ईषथुः	ईष	इययिथ इयेथ	ईयथुः	ईय

	स्वप्—पर।			श्रि—आत्मने।	
प्र पु	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे

(अ) इष् + इथ = इइष् + इथ = इ इष् + इथ = इय + एष् + इथ = इयेषिथ।

इइ + अ = इ ऐ + अ = इ आय् + अ = इय् + आय् + अ = इयाय।

(ब) इइ + अतु = इय् + अतु = ईय + अतु = ईयतु।

(क) स्वप् + अ = सु स्वप् + अ = सु स्वाप् + अ = सुष्वाप् + अ = सुष्वाप।

श्रि + ए = शिश्रि ए = शिश्रि + ए = शिश्रिय + ए = शिश्रिये।

गुप धातु ।

दम्—पर ।

प्र पु [illegible] प्र पु ददाम ददमतुः ददमुः

हन्—पर ।

म पु जघन्थ जघ्नथुः जघ्न

नियम —

१। पेचतुः, सम्भ्रमतुः, ..., पेचिथ—आदि किसी धातुमें जो अन्तवाले ... [illegible] ... परिवर्तन न होता हो, तो अभ्यासका लोप होता है और अतिकारक प्रत्यय तथा इट्‌के पहिले थल् रहने पर भी ए होता है।

२। त्रस्, भ्रम् फणित ... [illegible] ... इत्यादि में एत्व तथा अभ्यासलोप विकल्प, तथा ... राज्, भ्राज् इत्यादिमें विकल्पसे होता है।

३। ददमतुः – दकारादि धातुओंमें ए परिवर्तन नहीं होता।

स्मृ—पर ।

प्र पु सस्मार सस्मरतुः सस्मरुः

ऋ—पर ।

म पु आरिथ आरथुः आर

कृ—पर ।

म पु चकर्थ चक्रथुः चक्र

४। सस्मरतुः, चक्रतुः, आरतुः जजागरतुः — ऋकारान्त धातु, जिनके पूर्व संयुक्ताक्षर हो ऋकारान्त धातु ऋ तथा जागृ धातुके परोक्षभूतमें अतिकारक प्रत्यय आगे रहनेपर भी गुण आदेश होता है।

यज—पर ।

वह्—पर ।

प्र पु	इयाज	ईजतुः	ईजुः	उवाह	ऊहतुः	ऊहुः
म पु	इयजिथ इयष्ठ	ईजथुः	ईज	उवहिथ उवोढ	ऊहथुः	ऊह
उ पु	इयाज	ईजिव	ईजिम	उवह वाह	ऊहिव	ऊहिम

यज् + थ = इ अयज् + थ = इयज् + थ = इयष् + थ (२८ वाँ पाठ, ष) = इयष् + ठ = इयष्ठ ।

यज् + अतुः = इज् + अतुः = इइज् + अतुः = ईजतुः ।

	वह्—पर ।			वच्—पर ।	
प्र पु	उवाह	ऊहतुः	ऊहुः	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः

	वस—पर ।			वच—आत्मने ।	
प्र पु	उवास	ऊषतुः	ऊषुः	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे

५। यज्, वह्, वप्, वद्, व्यध्, वच, वस (रहना), ग्रह, स्वप्, तथा और कुछ धातुओंके परोक्षभूतमें अभ्यासको सम्प्रसारण होता है। अविकारक प्रत्यय आने रहनेपर धातुओंका द्वित्व होनेसे पूर्व सम्प्रसारण होता है।

	इष्—पर ।			इ—पर ।	
प्र पु	इयेष	ईषतुः	ईषुः	इयाय	ईयतुः	ईयुः
म पु	इयेषिथ	ईषथुः	ईष	इययिथ इयेथ	ईयथुः	ईय

	स्वप्—पर ।			स्मि—आत्मने ।	
प्र पु	सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः	सिष्मिये	सिष्मियाते	सिष्मियिरे

(अ) इष् + इथ = इइष् + इथ = इ एष् + इथ = इय + एष् + इथ = इयेषिथ ।

इइ + अ = इ ऐ + अ = इ आय् + अ = इय् + आय् + अ = इयाय ।

(ब) इइ + अतुः = इय् + अतुः = इय + अतुः = ईयतुः ।

(क) स्वप् + अ = सु अ स्वाप् + अ = सु स्वाप् + अ = सुष्वाप् + अ = सुष्वाप ।

स्मि + ए = स्मिस्मि ए = सिस्मि + ए = सिस्मिय + ए = सिष्मिये ।

६। (अ) इयाय, उवोष इयाय—असवर्ण अच् आगे रहनेपर अभ्यासका इ या उ का इय् वा उव् होता है।

(ब) ईयतुः—अविकारक प्रत्यय आगे रहनेपर धातुके इ को य तथा अभ्यासका इ को दीर्घ होता है।

(क) सुष्वाप, सिषेव—स्वप् तथा सिव के स् को ष् होता है।

श्वि—श्वा पर का शिश्वाय श्वाय, शुशाव—शाव, शिश्वयिथ—शुशविथ (क्योंकि यह धातु सेट् है), ह—हु—जुहु—जुहव—हाव—

७। श्वि के परोक्षभूतके रूप विकल्पसे शु से बनते हैं, और ह्वेके नित्य हु से बनते हैं।

अश्—पर। अश—पर।

प्र पु आनश आनशतुः आनशुः आनश आनशथुः आनशु

अश्—व्याप्ति आत्म म पु—आनशिषे आनशे आनशाथे आनशिध्वे—आनशध्वे।

नियम —

८। अकारादि धातुओंमें, जिनमें अनुस्वार हो, अभ्यासके अ को आ होता और उसके बाद न् आगम होता है। अश्—व्याप्ति में भी, जो सेट् है, यह नियम लगता है।

(अ) ईश्—प्र पु ए व—ईशांचक्रे ईशाम्बभूव—ईशामास, उन्द्—उन्दांचकार—बभूव—आस।

(ब) दय्—दयांचक्रे—बभूव—आस, अय्—अयांचक्रे—बभूव—आस, कास्—कासांचक्रे, विद्—विवेद,—विदांचकार, जागृ—जजागार—जागरांचकार, भी—बिभाय—बिभयांचकार, भृ—बभार—बिभरांचकार, ह्री—जिह्राय—जिह्रयांचकार, हु—जुहाव—जुहवांचकार।

(क) चुर्—चोरयांचकार—बभूव—आस, कृ—णि—कारयांचकार—बभूव—आस।

नियम —

९ । (अ)—अ वा आ को छोड़कर अजादि धातुओंमें, जिनका आदि अच् दीर्घ हो वा ह्रस्व होकर उसके पूर्व कोई संयुक्ताक्षर हो, उनके बाद आम् लगाकर कृ, भू, वा अस् धातुके परोक्षभूतका रूप जोड़नेसे परोक्षभूतके रूप बनते हैं ।

(आ) दय्, अय् तथा आस के परोक्षभूतके रूप भी इसी प्रकार बनते हैं, किन्तु—अ पर जागृ, भी, ह्री, भृ तथा हु में आम् इत्यादि विकल्पसे होते हैं । जब ये होते हैं तब सार्वधातुक लकारोंकी तरह इनको द्वित्व होता है । आम् विकारक प्रत्यय है, वह आगे रहनेपर विद् अ पर के इ को गुण नहीं होता ।

(इ) चुरादिगणके धातु, प्रेरणार्थक तथा इतर मूलज धातुओंके परोक्षभूतमें इसी प्रकार रूप बनते हैं ।

(ई) यदि धातु आत्म हो तो कृ के भी आत्मनेपदके रूप इसको लगते हैं, पर भू तथा अस् के पर के रूप लगते हैं ।

१० । कर्मणि वा भावे—लयजे, बभूवे—कर्मणि वा भावे प्रयोगके रूप आत्मनेपद प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं ।

समाजमीहमानाना साधीयान्नाम च केचिन्मेनु सम्पेऽपरे न । तत्र किमस्माभिः
कर्तुं शक्यं स्वाभाविकमेतत् ।

या वै प्रभूतानामनृधानतम स यथा बोधवतम ।

अलमत्र बहु विकल्पेन । रात्र समसकैशावधारयरोत्तरमास्ति भविष्यति ।

एकदा पुत्रेषु फलाहाराय वन गतेषु नियतव्रता जमदग्ने स्त्री रेणुका स्नातु जगाम । आगच्छन्ती यदृच्छया चित्ररथ नाम नृपमुद्दिमन्त सभार्य ददर्श । दृष्ट्वा च तत्पुत्रमधिगन्तुमियेष । एतस्माद्‌ दुष्टविचारात्‌ सा नियमाच्चुच्युवे । आश्रम च तूर्ण प्रविवेश । जमदग्निस्ता प्राप्ता लक्ष्या

विप्रलिप्सा धीरोत्तमस्य स्मृत्यानुः। चित्तस्थैर्य च तां च्याहृ। तत्र च सानुभावानि यथाक्रमं उदाहरणानि। न तु सानुभावादिर्वैतव न किञ्चिदुदाहरणम्। तस्मात् कोपात्युक्तिसाम्यत्वात्, यस्मात् तु परत्वेन स्वानुभव एव ग्रन्थ। सात्त्विकानि विरहादि परत्वात् विप्रलम्भ विशेष कृपायाः निःस्व परत्वा विच्छेदः। सतो भवति प्रमदात्स्यमुयाच च।

सर्वं यस्यामात्मज्ञं न कस्य दुष्करम्।
दशीयं कामात् यस्य दयिता शायते पुनः॥
स एवं मां स्वानामनुस्मृति च सधर्म जे।
पापेन मम मामेव आगतो मर्का तथा॥
प्रपतिहृ क्लिष्टा पुरे शोकमापन्न भगा।
नष्टो च भवान् कामोमात् स्मारयिष्यताय॥
हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विरहतमसा मुहुरानपन्तो—
माप्य रावणपतितमभा चरामि॥
सानुनयप्रणयागतस्य भरतस्य कैकय्याम्ब सदाशोऽप्यम्—
सान्त्वनान् हृ यात, पुरतनि भवन, हा कृष्ण, मधुशोका
कोऽपीयुपयशः, तमधरमतया दशं भात, किमस्य।
प्राणाऽसा कानमार्ग, किमिति, नय तथा किं सथाया सतापि
मद्भावतु फलं ने किमिह तत्र धराधीशता, ना हतोऽसि॥
यस्मोन्मीनह आगत् तत्क्षण यश्चत्त चाधिराजमविद्ध्ये।
ब्रह्मेन्द्रारायणमनुस्मृत्वा च न भगा यत्नु मद्भुत रति॥

१। भगवनैवत्माक्षम।

चार वेद, छः वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, पुराण, तथा धर्मशास्त्र ये चौदह विद्याओंके स्थान हैं।

ब्राह्मणका गर्भसे आठवें वर्ष, क्षत्रियका ग्यारहवें, तथा वैश्यका बारहवें वर्ष उपनयन (यज्ञोपवीत) करना चाहिए।

अनुजने रामचन्द्रसे पूछा कि वसिष्ठ और विश्वामित्रमें शत्रुता क्यों उत्पन्न हुई।

कुशिकका पुत्र गाधि नामका एक बड़ा राजा था। उसका विश्वामित्र नामका अति प्रतापी पुत्र था। किसी समय विश्वामित्र मृगयार्थ वन गया और तृषासे पीड़ित हो वसिष्ठके आश्रममें घुसा। वसिष्ठने उसका स्वागत किया। विश्वामित्रने वसिष्ठसे उनकी कामदुघा गौ देनेके लिये प्रार्थना की, पर वसिष्ठने वह गौ न दी।

छोड़नेका काम नहीं है। अच्छा, हम लोग लड़ें, जिससे लोग समझ जायँ कि हम दोनोंमें अधिक बली कौन है।

सहायशब्द।

अधरोत्तरव्यक्ति (स्त्री)—दोनोंमें एकका उत्कृष्ट या निकृष्ट होनेका स्पष्ट होना

अप्रतिद्वन्द्विता—(स्त्री अ+प्रतिद्वन्द्विन्—पु अनु+ता)—वह अवस्था जिसमें कोई शत्रु नहीं

अवरजता (अवर यत्र० वाच्या, अवरज पु छोटा भाई)—छोटा भाईपन

अपयश (पु)—यशका अभाव

आवृत्ति (स्त्री)—दुहराना

आनुपूर्व्य (आनुपूर्व्यम्) न—क्रम, एकके बाद दूसरेका होना

उत्थान (उत्थानम्) न—उठना

कानन (काननम्)—वन

चित्ररथ (चित्ररथ) पुं—एक राजाका नाम

जमदग्नि (पु)—एक ऋषिका नाम

तात (तात) पु—पुत्र, लड़के शिष्य इत्यादियोंके सम्बोधनमें प्रयोग किया जाता है

पराधीशता (स्त्री)—दूसरोंका अधिपति होनेकी दशा

परशु (पुं)—फरसा कुठार

परशुराम (परशुरामः) पुं—जमदग्नि का पुत्र जिसने पृथ्वीको २१ बार क्षत्रियशून्य कर दिया

भारत (भारत) पुं—भरतवंशीय, अर्जुन

मन्यु (पुं) १ क्रोध, २ शोक

मातुल (मातुलः) पुं—मामा

मानस (मानसम्) (न)—मन

रेणुका (स्त्री)—जमदग्निकी स्त्री

वैदेह (वैदेहः) पुं—विदेहका राजा, जनक

सुरपति (पुं)—देवोंका राजा, इन्द्र

स्वागत (स्वागतम्) न (प्रादि स० सु+आगतम्)—स्वागत

हृद् (न)—हृदय (इसके प्रथम पाँच रूप नहीं होते।)

विशेषण।

अखिल—सब

अधीयान (अधि+इ—अ, आ का या हो)—पढ़ता हुआ

अनूचानतम—गुरुसे साङ्ग वेद पढ़के अत्यन्त उत्तम (अनु+वच्)

ईहमान (ईह्—चेष्टा या यत्न कृ)—चेष्टा करता हुआ

ऋद्धिमत्—समृद्ध

एक—अद्वितीय, अनुपम

एवंविध (बहु० एवं विधा यस्य स एवंविध एवम् + विधा—स्त्री प्रकार)—इस प्रकारका, ऐसा

च्युत (च्यु+त, स्त्री च्युता)—गिरा हुआ

तावत्—उतना

तृप्त (तृप्+त, स्त्री तृप्ता)—तृप्त हुआ

धर्मज्ञ—धर्मको जाननेवाला

नियतव्रत (बहु०, नियत—नि+यम्+त, व्रत न—स्त्री व्रता)—जो नियमसे व्रत करता है

ब्राह्म (स्त्री ब्राह्मी)—पवित्र, ब्राह्मणसम्बन्धी

भविष्य—भविष्यत्

महातपस्—जिसका तप बड़ा है

यावत्—जितना

रमण—विलास करता हुआ, विलाससे आनन्द देता हुआ
विचेतस् (बहु०)—उदास

नियन्त्रित (नि+यन्त्—चु उभ, स्त्री —ना)—रहित

धातु ।

अभि+प्र+ईक्ष् (अभिप्रेक्षते—भ्वा आ)—देखना
आ+शिष् (आशिषति—तु पर)—आशा करना
उप+ईक्ष् (उपेक्षते—भ्वा आ)—उपेक्षा करना
उप+जन (उपजायते—दि आ)—उत्पन्न होना
उप+आ+सृप (उपसर्पति—भ्वा पर)—पहुंचना, पास जाना
गर्ह् (गर्हते—भ्वा आ)—निन्दा करना
च्यु—(च्यवते—भ्वा आ)—गिरना

नि+शम् (निशामयति—चि पर)—सुनना
प्र+बुध् (प्रबोधति—भ्वा पर)—जागना
वाञ्छ् (वाञ्छति—भ्वा पर)—चाहना
वि+कत्थ् (विकत्थते—भ्वा आ)—डींगना, अपनी स्तुति करना
वि+आ+हृ (व्याहरति भ्वा पर)—कहना
शप (शपति से भ्वा उभ)—शाप देना (कसम खानेके अर्थमें चतुर्थी के साथ—शपे ते मनुजाधिप)

अव्यय ।

अग्रतः—आगे
फलाहारार्थम्—(चा० तत्पु०, फल—न + आहार—पु) फल खानेके लिये
भूयस्—बहुत
यदृच्छया—(यदृच्छा—स्त्री के तृ का ए व)—अकस्मात्

वै—निश्चयसे, वाक्यालङ्कारमें प्रयोग किया जाता है ।
समक्षम्—सामने, किसीकी उपस्थितिमें (अव्य अक्ष्ण —का समीपम्)
सुखम्—सुखसे

पाठ ७८ ।

कुछ अनियत रूप ।

अध्यारूढो मध्यमह्नः सविता—सूर्य दिनके मध्य पर चढ़ा है—यह मध्याह्नकाल है ।

न्याय्यपथस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायतां यान्ति—पशु भी उसके सहायक होते हैं जो न्यायमार्गसे चलता है ।

स खलु तस्मिन्नपि नागबन्धप्रशमने जातोन्नतया न शक्नुम—यद्यपि उस पुरुषको विषयमें थे। उसको न कर सके।

यस्यार्थो स पुमान् लोके (पुमाँल्लोके)—जिसके पास धन है वह जगत् में पुरुष (समझा जाता है) ।

यस्तु सर्वत (संसार) त्यक्त्वा व्रजतीति परिव्राट्—वह जो संसारका परिग्रह, चारों ओर से अर्थात् सम्पूर्ण रूपसे छोड़कर चला जाता है वह परिव्राट् अर्थात् संन्यासी है।

आशिषः प्रतिगृह्यन्ताम्—आशीर्वाद लिये जाय ।

मालाः क्वापि पुष्पाणां सज्जीक्रियन्ते—मानो लाल फूलोंकी मालाएं गुथती हैं ।

भेका वर्षासु भवन्तीति वर्षाभ्वः कथ्यन्ते—मेंढक बरसातमें होते हैं इसलिये वर्षाभू (वर्षामें उत्पन्न होनेवाले) कहाते हैं ।

सा तु स्वयम्भुवोऽद्वितीया सृष्टि—वह स्त्री निश्चयसे ब्रह्माकी अपूर्व सृष्टि है ।

जरसा द्विगुणीभूतमस्य शरीरम्—इसका शरीर बुढ़ापेसे मानो दूना हो गया है ।

हे मघवन् अमुं तुरगं परित्यक्तुमर्हसीति रघुरुक्तवान्—"हे इन्द्र! इस घोड़ेको छोड़ना आपको उचित है" इस प्रकार रघुने उससे कहा ।

इस पाठमें अनियत रूप दिये गये हैं ।

जरा—स्त्री।

प्र० जरा जरे जरसौ जरसः-जराः

ष० जरायाः—जरसः जरयोः—जरसोः जराणाम्—जरसाम्

इसी प्रकार निर्जर शब्दके—निर्जरौ निर्जरसौ, निर्जराः निर्जरसः, इत्यादि।

१। अजादि विभक्ति आगे रहनेपर जरा और निर्जर को विकल्पसे जरस् तथा निर्जरस् आदेश होते हैं।

सेनानी—पुं स्त्री।

प्र सेनानीः सेनान्यौ सेनान्यः ष सेनान्यः सेनान्योः सेनान्याम्

द्वि सेनान्यम् ,, ,, स सेनान्याम् ,, सेनानीषु

सुधी—पुं। स्वयम्भू—पुं।

प्र सुधीः सुधियौ सुधियः स्वयम्भूः स्वयम्भुवौ स्वयम्भुवः

वर्षाभू—पुं। पुनर्भू—स्त्री।

प्र वर्षाभूः वर्षाभ्वौ वर्षाभ्वः पुनर्भूः पुनर्भ्वौ पुनर्भ्वः

२। अजादि प्रत्यय आगे रहनेपर धातुज शब्दोंके ई या ऊ को य् व् या इय् तथा उव् आदेश करनेके नियम कठिन हैं। अधोलिखित बातें ध्यानमें रखनी चाहिये :—

(अ) निय, भुव, नियाम् भुवि—यदि धातुज शब्दसे पूर्व कोई दूसरा शब्द न हो तो अन्तिम ई या ऊ का इय् या उव् होता है।

(आ) प्रध्य, उन्न्य (यहां उन्न्यो में संयुक्ताक्षर है पर वह धातुका नहीं है, उत्+नी), यवक्रिय, सुध्य (सुष्ठु ध्यायतीति), सुधियः (सुष्ठु धीर्यस्य सः)—यदि धातुके अन्तिम ई या ऊ के पूर्व धातुका संयुक्ताक्षर हो और यदि तत्पुरुष समास हो, तो अन्तिम ई या ऊ को य् या व् होता है,

बाधक—(ए) भुवः, सुधियः —भू तथा सुधीके अन्तिम ऊ तथा ई को क्रमसे उव् तथा इय् होता है।

¹प्रतिप्रसव—(ऐ) वर्षाभ्वौ, पुनर्भ्वौ – वर्षाभू तथा पुनर्भू के अन्तिम ऊ को व् होता है।

(ओ) नियम्, सेनान्यम्, ग्रामण्यम्—नीग्रह, तथा सेनानी, ग्रामणी इत्यादि णी में अन्त होनेवाले शब्दोंका यह ए य का रूप आदि लगानेसे बनता है।

(औ) प्रध्यः स्त्रियः, सुधियः या स्त्रियः जब अन्तिम ई तथा ऊ को इय् तथा उव् होता है तो ईकारान्त तथा ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धी तथा भ्रू के समान होते हैं, और जब अन्तिम ई तथा ऊ को य तथा व होता है तो उनके रूप लक्ष्मी तथा वधूके समान होते हैं।

(अं) ग्रामण्या, सेनान्या (प य ष स)—ग्रामणी सेनानी इत्यादि स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप जो आरम्भमें पुरुषने व्यापारका बोध कराते हैं, पुल्लिङ्गके रूपोंके समान होते हैं।

पुंस्—पुं।

प्र	पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	तृ	पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः
द्वि	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः	ष	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्

१। सम्बोधनस्थानके पुम् पुमः के रूपोंपर ध्यान दो। अन्तमें पुंस् के स् का लोप होता है।

स्रज्—स्त्री। अप्—स्त्री। (यह केवल बहुवचनमें होता है।)

प्र	स्रक्	स्रजौ	स्रजः	आपः —अपः —अद्भिः —
स	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु	अद्भ्यः —अद्भ्यः अपाम् अप्सु

१। बाधकका बाधक।

४। हलादि विभक्ति आगे रहनेपर मज् भी स को भ् होता है।

५। अप्, सुमनस्, अप्सरस्, सिकता, वर्षा, तथा समा—इन शब्दोंके रूप प्रायः बहुवचनमें होते हैं। इनमें अन्तके तीन शब्दोंके रूप एकवचनमें भी कभी २ प्रयोग किये जाते हैं।

आपः सुमनसो वर्षा अप्सरा सिकता समाः।
एते स्त्रियां (स्त्रीलिङ्गमें) बहुत्वे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरत्रयम्॥

उशनस्—पुं।

प्र उशना उशनसौ उशनसः स० ए० व० उशन—उशनः—उशनन्

६। इस शब्दके प्रथमा तथा सम्बोधनके ए० व० के रूपोंको ध्यान दो।

	प्राच्—पुं।			प्रत्यच्—पुं।		
प्र	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः
द्वि	प्राञ्चम्	"	प्राचः	प्रत्यञ्चम्	"	प्रतीचः
स	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु

	तिर्यच्—पुं।			उदच्—न।		
प्र	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः	उदक्	उदीची	उदञ्चि
द्वि	तिर्यञ्चम्	"	तिरश्चः	"	"	"
च	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः

७। प्राच्, प्रत्यच्, उदच्, अन्वच्, तिर्यच् इत्यादि अञ्च् धातु (जाना) से बने हुए शब्दोंके सर्वनामस्थानमें अन्तिम वर्णके पूर्व न् लगता है। भ अङ्गमें अच् के अ का लोप तथा उसके पूर्व रहनेवाले स्वरको दीर्घ होता है अर्थात् उनकी प्रकृतियां प्राच्, प्रतीच्, अनूच् होती तिर्यच् का भ अङ्ग तिरश्च्, तथा उदच् का उदीच् है।

	युवन्—पुं ।			श्वन्—पुं ।		
प्र	युवा	युवानौ	युवानः	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वि	युवानम्	,,	यूनः	श्वानम्	,,	शुनः
स	यूनि	यूनोः	युवसु	शुनि	शुनोः	श्वसु

८ युवन् का व बदल कर यून् तथा श्वन् का शुन् है ।

	परिव्राज्—पुं ।			सम्राज्—पुं ।		
प्र	परिव्राट् ड्	परिव्राजौ	परिव्राजः	सम्राट् ड्	सम्राजौ	सम्राजः
तृ	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भिः	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
स	परिव्राजि	परिव्राजोः	परिव्राट्सु ट्त्सु	सम्राजि	सम्राजोः	सम्राट्सु ट्त्सु

९ । हलादि विभक्ति आगे रहने पर परिव्राज् के ज् का ट या ड हो जाता है । (२८ वां पाठ (अ) ।)

तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुध्यन्ते ।
दुहितृका इव मे ते ।
आशोकवनिकया वस्तुनिर्मिता वा महाकाव्यस्य मुखम् ।
भो भो राजन् ! आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः ।
भो ! प्रयात ननु वस्त्रान्वीत भवितार यत्किंचिदिरविधमन्ध
प्राचामुखगतालोकसुभगा इयम ।
सम्प्रत्युद्बोधितोऽस्मि । तस्मिन् राम विस्मृत सन्ततम् ।
प्रिय मित्रम् ! कथमेतद् विस्मृतोऽसि ।
वासन्ती—देव ! अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम् ।
राम —सखि, किमुच्यते धैर्यमिति ?

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः ।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥

विप्रोऽस्मि भद्रे! समाश्रयस्याश्रमस्य पन्थानं ब्रूहि।
अत्र पञ्चवटीमनुप्रविश्य गम्यतां गोदावरीतीरेण।

हे प्राणा! म गता रामस्तान्नु व्रजत द्रुतम्।
जरसा जर्जरैरङ्गैः शक्तिर्दशरथस्य का॥

आप्त धनेषु दरिद्रास्तृणैः जीवन्त्ययत्नसुलभेन।
धनिषु न दैन्यं विदधति ते खलु पशवो वयं सुधियः॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
[1]सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥

एकोऽहमस्मीति च मन्यसे त्वं न हृच्छयं वेत्सि मुनिं पुराणम्।
यो वेदिता कर्मणः पापकस्य तस्यान्तिके त्वं वृजिनं करोषि॥

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद्वेत्ति मामिति।
विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तरपूरुषः॥

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मोऽपि जानाति नरस्य वृत्तम्॥

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्या।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्वालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः॥

प्राशं पदाश्च दृष्ट्वा कलापाणां कथाद् यदे।
मोदावत्यासीमद्धुधा प्रतीचीं प्राचीमुदीचीमपि यदटन्ति।
दक्षिणस्यां मानस एव तीर्थे स्वच्छे सुख स्नातुमपारयन्त॥

इन्द्र पूर्वको, वरुण पश्चिमको, कुबेर उत्तरको, तथा यम दक्षिणको देवता है।

१। सेनानीनाम् आर्ष प्रयोग है। व्याकरणके अनुसार सेनान्याम् शुद्ध रूप है।

[illegible]) —[illegible] [illegible] ([illegible]) —[illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible]

[illegible]) [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible]

[illegible] ([illegible] + [illegible] + त)— [illegible] हुआ

[illegible] ([illegible]) [illegible]

[illegible] ([illegible] + [illegible] — [illegible] + [illegible] —[illegible]

[illegible] ([illegible] + [illegible] — [illegible] —[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible]

धनिन्—धनिक

[illegible] (सं०)—[illegible]

[illegible]—[illegible]

प्रत्यासन्न—(प्रति + आ + सद् [सीद्] + त)—पास

[illegible] ([illegible] + [illegible] + त) [illegible] ([illegible] [illegible] नहीं हुआ)

[illegible] (वि + [illegible] + त)—[illegible] [illegible] है

[illegible] ([illegible] + [illegible] + त)—[illegible] [illegible] है

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible]—[illegible]

[illegible] [illegible] + [illegible]— [illegible] + [illegible] है [illegible] '[illegible]' है—[illegible] [illegible] है

[illegible]—[illegible]

धातु।

अनु + प्र + विश् (अनुप्रविशति—[illegible] पर)—प्रवेश करना

अनु + रुध्—(अनुरुध्यते [illegible])—अनुरोध करना, मानना

[illegible] + [illegible] ([illegible])—आश्रय करना

प्रति + पद् (प्रतिपद्यते—[illegible])—पाना

अव्यय।

द्रुतम्—शीघ्र	संप्रति—अब

पाठ ३८।

तद्धित और कृत् प्रत्यय।

भीमार्जुनौ राधेयेनैव विधेयात्मना जातु न शक्यौ निवारयितुम्—भीम और अर्जुन कभी भी उसके ऐसे और किसीसे रोके जा नहीं सकते।

वैनतेय इव विनतानन्दनो राजायम्—यह राजा विनतानन्दन (विनत + आनन्दन) है अर्थात् नम्र लोगोंको आनन्द उत्पन्न करनेवाला है, जैसे गरुड विनतानन्दन (विनता + आनन्द०) है, अर्थात् विनताको आनन्द देता है।

यह श्लेषमूलक उपमाका उदाहरण है। विनतानन्दन के दो अर्थ हैं। एक प्रकृत राजाके तरफ लगता है और दूसरा अप्रकृत गरुडके तरफ। यह श्लेष अलङ्कार कहाता है।

द्रौणायने! अनल्पमप्यात्मानं शोकानले क्षेप्तुम—हे द्रोणके पुत्र! (अश्वत्थामन्।) अपनेको अत्यन्त शोकरूपी आगमें मत डालो। अनल्प, जिसका अर्थ 'बड़' है तृतीयान्त अर्थ भूत था, और मुमुक्षत्व का भाव आता है।

धर्माद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते—क्षत्रियका धर्मयुद्धसे सिवा और कोई वस्तु अच्छी नहीं है।

गतो वनं श्वो भवितेति रामः शोकेन दग्धं जनतालिमातृम्—'कल राम वनको जायगा' इस विचारसे प्रजाओंका समुदाय (मन मनाई) शोकसे आपना शुरू हुआ।

अलं रुदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुन्तला। रोओ मत, तुम्हीं लोगोंसे शकुन्तलाको दिलासा देना चाहिए।

उपपन्नमेतत् किल यदपि तन्मे राज्ञो—श्रुतिपुष्य इस राजाको यह योग्य है।
कश्चो विद्युत्पातृकितोपा वर्जितः शातन अन्विष्याह एवोता—चित्रलेखाने
पहिले कश्चको वर्जित रत्नसे कैसा कोर को गई।

इस पाठमें तद्धित तथा कृत् प्रत्ययोंका वर्णन किया गया है।

प्रातिपदिक प्रत्यय, अर्थात् व प्रत्यय जो संज्ञावाचक, सर्वनाम, तथा विशेषणोंको लगते हैं, तद्धित कहाते हैं।

तद्धित प्रत्यय कई हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं —

१। अपत्यवाचक।

अपत्य—सन्तति, लड़का वा लड़कियां, किंवा वंश वालेकी सन्तति।

१। अ—रावण (रवणस्यापत्यम्—रवणका पुत्र), राघव (रघोरपत्यम्—रघुवंशीय लड़का), पार्वती (पर्वतस्यापत्य स्त्री—पर्वतकी लड़की), जानकी (जनकस्यापत्य स्त्री)।

अ प्रत्यय आगे रहनेपर शब्द अन्तिम स्वरका लोप होता है और प्रथम स्वरको वृद्धि होती है। इस प्रकारका परिवर्तन नीचे दिये शब्दोंमें सुगमतासे देख पड़ सकते हैं।

२। इ—दाशरथि (दशरथस्यापत्यम्), सौमित्रि (सुमित्राया अपत्यम्)।

३। एय—गाङ्गेय (गङ्गाका पुत्र भीष्म), वैनतेय (विनताका पुत्र, गरुड़), राधेय (राधाका पुत्र कर्ण)।

४। य, ईय, व्य—श्वशुर्य (श्वशुरस्यापत्यम्), स्वस्रीय (स्वसुरपत्यम्), भ्रात्रीय भ्रातृव्यो वा (भ्रातुरपत्यम्)।

२। समूहवाचक।

१। ता—ग्रामता (ग्रामोंका समूह), जनता, बन्धुता।

३। तदधीते तद्वेद।

(यह जो उसको पढ़ता है या जानता है। तद् से प्रकृति का बोध होता है जिसमें प्रत्यय लगाये जाते हैं)।

१। अ—वैयाकरण (व्याकरणमधीते वेद वा)।

२। इक—नैयायिक (न्याय से), तार्किक (तर्क से), ऐतिहासिक (इतिहास से), पौराणिक (पुराण से)।

३। अक—मीमांसक (मीमांसा से)।

४। तत्र भव।

(उसमें उत्पन्न हुआ)।

१। य—दन्त्य (दन्तेषु भव)—दाँतमें उत्पन्न, दन्तस्थानीय, ओष्ठ्य (ओष्ठ से), कण्ठ्य (कण्ठ से), तालव्य (तालु से), मूर्धन्य (मूर्धन् से), प्राच्य (प्राच् से), उदीच्य (उदच् से), प्रतीच्य (प्रत्यच् से)।

२। त्य—दाक्षिणात्य (दक्षिणा से), पाश्चात्य (पश्चात् से), पौरस्त्य (पुरस् से)।

३। इक—मानसिक (मनस् से), शारीरिक (शरीर से)।

इक अनेक अर्थोंमें संज्ञाशब्दोंको विशेषण बनाता है।

भाव—भाविक	प्रमाण—प्रामाणिक
धर्म—धार्मिक	निसर्ग—नैसर्गिक
दिन—दैनिक	स्वभाव—स्वाभाविक

५। तस्येदम्।

(उसका या उसका सम्बन्धी)।

१। अ—शैव (शिवस्येदम्) धनु।

२। छण—सदीय, मदीय, भवदीय, त्वदीय, अस्मदीय, युष्मदीय, तन्यदीय।

६। विकारवाचक।

(आकारमें परिवर्तनका बोध कराता है)।

१। मयट्—गोमयम् (गोर्विकारः)—गोबर आश्मयम् (पत्थरका)—शाल।

२। य—गव्यम्, पयस्यम्।

७। तत्र साधु।

१। य—शरण्य (शरणे साधु—रक्षा करनेमें श्रेष्ठ)

२। ढञ—आतिथेय (अतिथिषु साधु)।

८। तस्मादनपेतम्।

(उससे हटा नहीं)।

१। य—धर्म्यम (धर्मादनपेतम), न्याय्यम्।

९। भाववाचक।

(तस्य भाव)

१। त्व ता—गोत्वम्, गोता (गोपन)।

२। इमन्—प्रथिमन् (पृथु से), गरिमन् (गुरु से), लघिमन् (लघु से), म्रदिमन् (मृदु से), तनिमन् (तनु से)।

३। अ—गौरव (गुरु से), लाघव (लघु से) मार्दव (मृदु से), तानव (तनु से) कौमार (कुमार से), यौवन (युवन् से), शैशव (शिशु से)।

४। य—पाण्डित्य (पण्डित से), लालित्य (ललित से), शौर्य (शूर से), धैर्य (धीर से), इसी प्रकार माधुर्य, आलस्य नैपुण्य, कौशल्य, मौख्य, इत्यादि।

१०। उत्कर्षवाचक।

१। तर, तम—लघुतर, लघुतम, उत्तर, उत्तम, पाचकतर, पाचकतम, इत्यादि (२२वां पाठ देखो)।

२। तराम् तमाम्—नीचैस्तराम् पचतितमाम्।

३। ईयस्, इष्ठ—लघीयस्, लघिष्ठ—इत्यादि।

११। स्वामित्ववाचक।

(मत्वर्थीय प्रत्यय)।

१। मत्—मतिमत्, बुद्धिमत्, भूमिमत्, यवमत्, भगवत्, भास्वत् (१३वां पाठ देखो)।

२। विन्—मायाविन्, मेधाविन् यशस्विन्, तेजस्विन्।

३। आलु—दयालु, मायालु, कृपालु।

१२। अभूततद्भाववाचक।

१। च्वि (ई)—कृष्णीकरोति (अकृष्णं कृष्णं सम्पद्यते यथा तथा करोति—जो काला नहीं था उसको काला बनाता है) लघूभवति इत्यादि।

१३। अपरिपूर्णतावाचक।

१। कल्प—विद्वत्कल्प (ईषदूनो विद्वान्—पण्डितके समान, कुछ कम पण्डित), द्वीपकल्प द्वीपसे कुछ कम, जिसके तीनों ओर जल है।

२। देश्य—अष्टादशवर्षदेश्य
३। देशीय—अष्टादशवर्षदेशीय } करीब १८ वर्षका

१४। तदस्य सञ्जातम्।

१। इत—तारकित नभ (तारका अस्य सञ्जाता—जिसमें तारे उगे हुए हैं), पुलकित (रोमाञ्चयुक्त) शरीरम्।

१५। प्रमाणवाचक।

१। मात्र—तावन्मात्रम् (उतना)।

२। दघ्न—जानुदघ्नं जलम् (घुटने तक)।

१६। तेन तुल्यं क्रिया चेत्।

१। वत्—ब्राह्मणवदधीते (ब्राह्मणके समान पढ़ता है।) 'तुल्य' अर्थमें वत् लगाया जाता है। जिन शब्दोंको यह लगाया जाता है वे क्रियाके साथ अन्वित होते हैं।

कृत् प्रत्यय।

वे प्रत्ययविशेष, जो धातुओंको लगाये जाते हैं, कृत् प्रत्यय कहाते हैं। जिन शब्दोंके अन्तमें कृत् प्रत्यय होते हैं वे कृदन्त शब्द कहाते हैं।

१। वर्तमान भूत अव्ययभूत, विधि, तथा तुमन्त कृदन्तोंका वर्णन पहिले हो चुका है।

२। भविष्यत्कृदन्त—भू—भविष्यत् (स्त्री भविष्यन्ती ती), कृ आत्म—करिष्यमाण (स्त्री करिष्यमाणा)।

३। परोक्षभूतकृदन्त—सद्—सेदिवस्, श्रु—शुश्रुवस्, कृ—चकृवस्, चक्राण, उप+ई—उपेयिवस्, अधि+वस्—अध्युषिवस्।

४। अम् (णमुल्)—क्रियाकी पुनरुक्तिके अर्थमें धातुओंको अम् लगाया जाता है।

स्मारं स्मारं नमति शिवम्—याद २ करके वह शिवको प्रणाम करता है।

पा—पायं पायम् श्रु—श्रावं श्रावम्।

समूलघातं हन्ति—समूल नष्ट करता है। जीवग्राहं गृह्णाति—जीता पकड़ता है। [illegible]ग्राहं गृह्णाति—[illegible] करता है।

५। कर्तृवाचक कृदन्त—कर्ताके अर्थमें धातुओंको तृ तथा अक लगाया जाता है।

कृ—कर्तृ, कारक, पठ्—पठितृ—पाठक, नी—नेतृ, नायक।

६। भाववाचक प्रत्यय—

(अ) ति—बुद्धि, मति, गति, स्थिति, नीति, ग्लानि, हानि, वृष्टि, उक्ति।

यह प्रत्यय धातुके रहनेपर होनेवाले परिवर्तन प्राय वैसे ही हैं जैसे भूतकृदन्तमें त प्रत्यय रहनेपर हुआ करते हैं।

(ब) अन—वाचन, करण, भजन, कीर्तन, मनन, दर्शन, श्रवण, इत्यादि (सब नपुंसक)।

(स) अ—जय, भय, काम, पाक, योग (सब पुंलिङ्ग)।

सखे! प्रतीक्षस्व माम्। अहमपि भवन्तमनुयामि। न शक्नोमि भवता विना क्षणमप्यत्र स्थातुमेकाकी। कथमपरिचित इवाद्यपूर्व इवाद्य मामेकपदे उपेक्ष्य प्रयासि? कुतस्त्वयमतिनिष्ठुरता? कथय, त्वदृते क्व गच्छामि। शून्या मे दिशा जाता। तदुत्तिष्ठ। देहि मे विलपतः प्रतिवचनम्।

न हि भिक्षुका सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते न च मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्ते।

कश्चित् कञ्चित्तन्तुवायमाह। अस्य सूत्रस्य शाटक वय इति। स पश्यति। यदि शाटको न वातव्यः। अथ वातव्यो न शाटकः। शाटको वातव्यश्चेति विप्रतिषिद्धम्। भाविनी खल्वस्य संज्ञाभिप्रेता। स मन्ये वातव्यो यस्मिन्नुते शाटक इत्येतद्भवति।

सकलभुवनतलरत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देवः। विहङ्गमजातावाश्चर्यभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमादायागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्।

आयस यस्मिन् प्रथमं विश्वामित्रस्य ग्रहणीयस्य सत्यसौर्ति सं-
विधाराः।

इतो गता सा क्व गता न जाने मेऽद्य गता न कुत्र गता सा॥
यत्र हि यस्य रघुनन्दन राघवस्य
सम्भावित पृथुनि विराज परितश्च स्तापम्।
ध्याय ध्याय क्रोधशान्तिं क्रान्त्वा क्रान्त्वा स्थित क्वचित्।
दीनमनासो सुत सर्वदित्सयति विनिश्चितं॥
समरभवना गः यद्यपि दैवैर्हरिणी मता।
हसति दृश्य गाढाङ्गं स्त्रियः न नु भिक्षाग
वदति विरूप काया मोहं न मुञ्चति वेदनाम्।
स्थापयति समूलमत्यन्तः करोति न भयमपात्
प्रहरति विविधर्मन्यन्ते न कृन्तति जीवितम्॥
पूर्वाद्रिवैर्यश्च च यत्र ममताः प्रार्दूलविक्रीडितम्।
किं लोके धीरतान्यद्भवनं किं रत्नमथ मति
किं शास्त्रं श्रवणेन यस्य गलति द्वैतान्धकारोदय।
किं मित्रं सततोपकाररसिकं तत्त्वावबोधः सखे
कः शत्रुर्वद खेदानकुशलो दुर्वासनासञ्चय॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
सुखदुःखात्मके लोके नास्ति सोऽप्यसनातनम्॥
सततस्य शरीरं वा भव मानसव्याधपुरो अधान च।
स्नेहनस्य हि तु समधना विनृतद्वारविशोधमायति॥
इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम्।
वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम्॥

सत्यव्रतको त्रिशङ्कु नामका एक पुत्र था। वह वसिष्ठके शापसे चण्डाल हुआ। फिर भी वह विश्वामित्रके प्रभावसे सशरीर स्वर्गको

गया। पर जब वह वहां गया, देवोंने उसे ढकेल दिया। तथापि विश्वामित्रके तपोबलसे वह बीच ही में रोका गया।

यह बात नहीं है कि अन्न नहीं हुआ, क्योंकि वहां ऐसे प्राणी हैं जो उसे खा डालते हैं।

सचमुच तुम बड़े निष्ठुर हो, तुमने हमको अकस्मात् छोड़ दिया।

तुम्हारा यह कहना कि जल एक ही समय गरम है और ठंढा भी, विरुद्ध है।

सञ्ज्ञाशब्द।

अतिनिष्ठुरता (स्त्री) अतिक्रूरता
अन्तर्गेह (अन्तर्गेह) पु—भीतरी महल
अवबोध (अवबोध) पु—ज्ञान
अश्व (अश्व) पु—घोड़ा, यह सात संख्याको बोध भी कराता है। (क्योंकि सूर्यके घोड़े सात हैं।)
इन्दिरा (स्त्री)—लक्ष्मी
इन्दीवर (इन्दीवरम्) न—नीलकमल
इन्दु (पुं)—चन्द्र, यह एक संख्या का बोध कराता है।
कन्दल (कन्दल लम्) पु, न—१ कली २ समूह, ३ कारण, स्थान अथवा विषय
केशिन् (पुं) एक दैत्य
गति (स्त्री)—ज्ञान
गेह (गेहम्) न—घर
ग्रह (ग्रह) पु—ग्रह, यह ९ संख्याका बोध कराता है।
तनु (स्त्री)—शरीर
तन्तुवाय (तन्तुवाय) प—जुलाहा
दल (दलम्) न—पत्ता
दुर्वासना (स्त्री)—दुष्ट वासना
दृश् (स्त्री)—दृष्टि
द्वैतान्धकारोदय (पु)—(द्वैत न भेद + अन्धकार पु—अन्धकार, अज्ञान + उदय—पु उत्पन्न होना)—भेदके होनेवाले अज्ञानकी उत्पत्ति
पादपद्म (पादपद्मम्) न (कर्म०, पाद—पु + पद्म न)—कमलके समान चरण
फणिन् (पु)—फणी
भवन (भवनम्) न
भाजन (भाजनम्) न

मन्दार (मन्दार) पु —पाँच कल्प वृक्षोंमें एक

मुनि (पु) मुनि ... मदनका बाण समझा जाता है।

यशुनन्दन (पु —यदुओं नन्दन)— यदुवंशियोंको आनन्द देनेवाला, श्रीकृष्ण

वज्र (वज्र) पु —वज्र

विद्रुम (विद्रुम) पु —मूंगा

शर (शर) पु —कमल ; मदनका बाण माना जाता है।

सहकार (सहकार) पुं, न —आम्र

सिन्दुवारितोत्सव (सिन्दुवारितोत्स-विलम्) न —एक वृक्षका नाम

मधुप (मधुप) पु —मधुप

मुग्ध (मुग्ध) पु —मुग्ध, इसमें सुगन्ध बाग होता है।

श्यामा (स्त्री)—प्रियलाली

हव (हव) पुं —यज्ञ, इसमें मदनका वाण माना है।

हरि (पु)—विष्णु,

हरिणी (स्त्री)—एक छन्दका नाम

टिप्पण।

अच्छ—निर्मल

अदृष्टपूर्व—जो पहिले कभी देखा नहीं

अपरिचित (अ+परि+चित—चि का भू० कृ०)—अजान

अभिप्रेत (अभि+प्र+इ+त स्त्री० प्रेता)—इष्ट

आश्चर्यभूत—आश्चर्यजनक

ईश्वर—शक्तिमान्, समर्थ

कठोर—कड़ा

गाढोद्वेग (बहु०, गाढ बड़ा

चित्रवृत्ति (बहु०, चित्र विचित्र अद्भुत+वृत्ति स्त्री० व्यापार) —अद्भुत व्यापारवाली

शिथिल—अदृढ, ढीला

भागिन् (स्त्री—भागिनी)— हिस्सेदार

मर्मच्छेदिन् (मर्मन्—न मर्मस्थान + छेदिन् काटनेवाला)— मर्मस्थानको काटनेवाला

लोकोत्तर—संसारमें सर्वोत्तम, अद्भुत, असाधारण

,—विनयशील, नम्र, पूज्योंकी करनेवाला

विकल—व्रणमें रहनेवाला

विप्रतिषिद्ध—(वि+प्रति+षिध् +त)—निषिद्ध

विलपत् (वि+लप् का वर्त कृ) विलाप करता हुआ

विवृत (वि+वृ+त)—खुला

श्याम—काला

शून्य—खाली

सतत—अविनाशी

धातु।

अधि+श्रि (अधिश्रयति से भ्वा उभ)—पकाना

अनु+या (अनुयाति—अ पर)—पीछे जाना

अप+क्षि (अपक्षयति—भ्वा पर)—नष्ट होना

कृत् (कृन्तति—तु पर)—काटना

ज्वल (ज्वलति—भ्वा पर)—जलना

दल् (दलति—भ्वा पर)—टूटना, फटना

प्रति+ईक्ष् (प्रतीक्षते भ्वा आ)—बाट जोहना

प्र+या (प्रयाति अ पर)—जाना

वप् (वपति से भ्वा उभ)—बोना

वि+परि+नम (विपरिणमति से—भ्वा उभ)—किसी नये रूपमें बदलना

वि+श्रि (विश्रयते भ्वा आ)—आश्रय करना

वे (वयति से भ्वा उभ)—बुनना

अव्यय।

अवस्थातुम् (अव+स्था+तुम्)—रहनेके लिये

इति कृत्वा—ऐसा सोचकर

उत्सृज्य (उत्+सृज् का अव्य भू [illegible])—छोड़कर

एकपदे—एक बारगी, अकस्मात्

भस्मसात्—(भस्मन्—न शब्द+सात् —तद्धित प्रत्यय जिसका अर्थ 'अधीन है)—राख हो गया हुआ

स्तनसम्बाधम् (स्तनौ सम्बाध, णमुल्)—छाती पीटकर

पाठ ४० ।

सामान्यभूतकाल ।

सुरथो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले—सम्पूर्ण भूमण्डलमें सुरथ नामका राजा हुआ ।

बाल ! मृत्योर्मा भैषीः —बच्चे ! मृत्युसे न डर ।

भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः —अपमानित होनेपर भी क्रोधसे पतिके विरुद्ध न चला ।

व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ—उसने छः भीतरी शत्रुओंको (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) बलपूर्वक जीता और नीतिमें रम गया ।

इस पाठमें सामान्यभूतका वर्णन किया गया है । पहिले यह उसी समय बीती हुई क्रियाका बोध कराता था । इसका नाम अद्यतनभूतकाल है ।

भू—अभूत् अद्यतनभूत प्र पु ए व —आज बीती हुई क्रिया ।

अभवत् अनद्यतनभूत , „ —जो आज न बीती

बभूव परोक्षभूत—जिसको बीते बहुत समय हुआ ।

अनद्यतन भूतके समान अद्यतन या सामान्यभूतमें भी धातुओंको अ या आ आगम होता है । इस प्रकार ये रूप सुगमतासे पहिचाने जा सकते हैं । इसके सात प्रकार हैं, जिनमें चौथा और पांचवां प्रकार साधारण हैं ।

चतुर्थ तथा पञ्चम प्रकार ।

१। अनिट् धातुओंमें चतुर्थ सेट् धातुओंमें पञ्चम और वेट् धातुओंमें दोनों प्रकार होते हैं ।

चतुर्थ प्रकार ।

	जि—पर ।			नी—आत्म ।		
प्र पु	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म पु	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट	अनेष्ठाः	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
उ पु	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

पञ्चम प्रकार ।

वद्—पर ।

प्र पु	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषु
म पु	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उ पु	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

शी—आत्म ।

प्र पु	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म पु	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम् ध्वम्
उ पु	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

इन रूपोंसे अधोलिखित प्रत्यय मालूम होंगे —

चतुर्थ प्रकार ।

	पर ।			आत्म ।		
प्र पु	सीत्	स्ताम्	सु	स्त	साताम्	सत
म पु	सीः	स्तम्	स्त	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
उ पु	सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार ।

प्र पु	ईत्	इष्टाम्	इषु	इष्ट	इषाताम्	इषत
म पु	ईः	इष्टम्	इष्ट	इष्ठाः	इषाथाम्	इध्वम्
उ पु	इषम्	इष्व	इष्म	इषि	इष्वहि	इष्महि

कृ—अकार्षीत् अकार्ष्टाम् अकार्षु , आत्म—अकृत
पच्—अपाक्षीत् अपाक्ताम् अपाक्षु
यम्—अयंसीत् अयंस्ताम् अयंसु
चर्—अचारीत् अचारिष्टाम् अचारिषु
चल्—अचालीत् अचालिष्टाम् अचालिषु

ग्रह—अग्रहीत अग्रहिषाम् अग्रहिषु
गम् अगमीत्—गमीत इत्या०।
शृ—अशारीत अशारिष्टाम् अशारिषुः
दम्—अदमीत्, हस—अहसीत्, मुष्—अमोषिषुः
हन—अवधीत् अवधिष्टाम् अवधिषुः

गुण तथा वृद्धिके नियम।

१। नी—अनैषीत्, कृ, अकार्षीत्—परस्मैपद चतुर्थ प्रकारमें धातुके स्वरकी वृद्धि होती है।

२। अनेष्ट, अकृत—आत्मनेपद चतुर्थ प्रकारमें धातुके अन्तिम इ तथा उ का गुण होता है और इतर स्वर ज्यों के त्यों रहते हैं।

३। अतारीत, अचारीत्, अपाठीत्, अवादीत्—परस्मैपद पञ्चम प्रकारमें अन्तिम स्वरको, तथा र, ल में अन्त होनेवाले धातु, और वद्, व्रज इन धातुओंके उपान्त्य अ का वृद्धि होती है।

४। कण्—अकणीत् अकाणीत्—पर पञ्चम प्रकारमें र् तथा ल को छोड़ हलन्त धातुओंके उपान्त्य अ को विकल्पसे वृद्धि होती है।

५। अजागरीत् अश्वसीत् अश्वयीत्, अहसीत्—जिद, श्वस्, जागृ, हस, तथा कुछ और धातुओंमें वृद्धि नहीं होती।

६। अलविषु, स्तु—अस्तावि द्युत्—पञ्चम प्रकारमें अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य ह्रस्व स्वरको गुण होता है।

रुध—अरौत्सीत्	अरौद्धाम्	अरौत्सुः
कृ—अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्

सन्धिके नियम।

१। अरुध + ताम = अरौध् + ताम = अरौध् + तम् = अरौध + धम् = अरौद् + धम् = अरौद्धम्—अनुनासिक तथा अन्तःस्थको छोड़ और कोई व्यञ्जन पूर्व रहनेपर ताम् ता तथा थाम् से स् का लोप होता है।

२। अकृथाः, अकृत—ह्रस्व पूर्व रहनेपर स्था तथा स्त के स् का लोप होता है।

३। ध्वम् को नित्य या विकल्पसे ढ्वम् होनेके नियम वे ही हैं जो परोक्षभूतमें ध्वं का ढ्वं होनेके विषयमें हैं।

पद्—अपादि अपत्साताम् अपत्सत, जन्—अजनि अजनिष्ट अजनिषाताम् अजनिषत, दीप्—अदीपि अदीपिष्ट अदीपिषाताम् अदीपिषत, बुध्—अबोधि अबुद्ध अभुत्साताम् अभुत्सत—

४। पद् में इ प्रथम पु ए व का प्रत्यय है और रूप अपादि होता है। दीप् जन्, तथा बुध् में यह विकल्पसे होता है।

षष्ठ प्रकार।

नम्—पर।

प्र पु	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनंसिषुः
म पु	अनंसीः	अनंसिष्टम्	अनंसिष्ट
उ पु	अनंसिषम्	अनंसिष्व	अनंसिष्म

यम्—अयंसीत्, विरम्—व्यरंसीत्, परन्तु रम् आत्म—अरंस्त अरंसाताम् अरंसत, अरंध्वम्, इत्यादि।

पा (रक्षा करना)—अपासीत्, म्ला—अम्लासीत्।

१। यह प्रकार केवल परस्मै धातुओं ही में होता है।

२। यम्, रम्, नम् और आकारान्त धातुओंमें यह प्रकार होता है।

प्रथम प्रकार।

दा—पर।

प्र पु	अदात्	अदाताम्	अदुः
म पु	अदाः	अदातम्	अदात
उ पु	अदाम्	अदाव	अदाम

ग्रह्—आत्म। ([illegible])

प्र पु	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
म पु	अग्रहीष्ठाः	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीढ्वम्
उ पु	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि

घ्रा—सूंघना। अघ्रात् अघ्रासीत्।

इ—'जाना'।

प्र पु	अगात्	अगाताम्	अगुः

भू।

म पु	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ पु	अभूवम्	अभूव	अभूम

१। गा, धा, स्था, दा, पा, भू [illegible] परस्मैपद होते हैं (८९ वें पाठ १८ वाँ नियम देखो), यथा, गा (इ—'जाना' का आदेश), पा 'पीना' तथा भू से इस प्रकार होते हैं।

२। श्लिष्, द्विष्—[illegible] ये हैं [illegible] इस प्रकार बनता है। क्योंकि ये अनिट् हैं। इनके ष को क होता है।

सप्तम प्रकार।

श्लिष्—पर।

प्र पु	अश्लिक्षत्	अश्लिक्षताम्	अश्लिक्षन्
म पु	अश्लिक्षः	अश्लिक्षतम्	अश्लिक्षत
उ पु	अश्लिक्षम्	अश्लिक्षाव	अश्लिक्षाम

द्विष—आत्म।

प्र पु	अद्विक्षत	अद्विक्षाताम्	अद्विक्षन्त
म पु	अद्विक्षथाः	अद्विक्षाथाम्	अद्विक्षध्वम्
उ पु	अद्विक्षि	अद्विक्षावहि	अद्विक्षामहि

अदिश् + सम् = अदिष् + सम (२८ पाठ, नि ३) = अदिड् + सम् (२८ वां पाठ नि ४) = अदिक् + सम् = अदिक्षम, अगुह् + सम् = अगुढ् + सम् = अघुढ + सम् = अघुक + सम् = अघुक् + सम् = अघुक्षम्, कृष्—अकृक्षम।

अलिक्षि—अलिक्षावहि अथवा अलिह्वहि—अलिक्षामहि

नियम —

१। लिह—अलिक्षत, दुह्—अधुक्षत, कृष—अकृक्षत्—जिन धातुओंके अन्तमें श्, ष, ह, वा ह् हो और उपान्त्य इ, उ, ऋ, वा लृ हो, उनमें यह प्रकार होता है।

२। अलीढ अलिक्षत, अलीढा—अलिक्षथा:, अलीढ्वम्—अलिक्षध्वम्, अलिह्वहि—अलिक्षावहि—लिह् दुह्, दिह्, तथा गुह् को आत्म. प्र. पु. ए. व. में, म. पु. ए. तथा ब. व. में, तथा उ. पु. को द्वि. व. में वैकल्पिक रूप होते हैं। ये त, थास्, ध्वम्, और वहि जोड़नेसे बनते हैं।

द्वितीय प्रकार।

इसमें तीन प्रकारके धातु होते हैं —

(१) वे धातु जिनमें यह प्रकार नित्य होता है, (२) वे जिनमें विकल्पसे होता है (३) कुछ आत्मनेपदी धातुओंमें यह प्रकार विकल्पसे होता है, और जब यह होता है तब उनको परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं। प्रत्यय ये ही हैं जो अनद्यतन भूतके।

प्रत्येक भूतके कुछ उपयोगी धातु इस प्रकार हैं —

(१) गम्, शक्, [1]भ्रम्, तम्, श्रम्, शम्, क्लम्, तम्, पट्, पत्

१। शमादि (शम् तम्, दम् श्रम् भ्रम् क्षम् तथा मद्) दिवादिगणके धातु हैं; सार्वधातुक लकारमें इनके उपान्त्य अ को दीर्घ होता है। क्लम् में विकल्पसे दीर्घ होता है और यम आदि में भी है।

(पत), वच् (वोच्), ख्या (ख्य्), अस् (अस्थ), गम् आप्, ऋ, सृ,
घुट्, रुह्, स्निह्, मुच्, लुप्, सिच्, शास् (शिष्), ह्वे (ह्व्)।

(२) बुध्, भिद्, विध्, छिद्, युज्, रुद्, दृश् (दर्श्), तृप्, दृप्।

(३) घस्, वध, क्लृप्, स्यन्द्, मद्, वृत्।

गम्—पर।

प्र पु	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म पु	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ पु	अगमम्	अगमाव	अगमाम

वच्—अवोचत्, पत—अपप्तत्, दृश्—अदर्शत्- अद्राक्षीत्, छिद्—अच्छिदत्—अच्छैत्सीत्, द्युत्—अद्युतत्—अद्योतिष्ट।

तृतीय प्रकार।

१। चुरादिगणके धातु, प्रेरणार्थक, तथा दूसरे मूलज धातुओंमें यह प्रकार होता है।

चुर्—अचूचुरत् अचूचुरताम् अचूचुरन्

चोरय—चोर्—चुर्—चुचुर्—चचुर्—अचूचुरत्

कारय—कार्—कर्—चकर्—चिकर्—चीकर्—अचीकरत्

२। (अ) अयका लोप होता है (ब) स्वरका ह्रस्व होता है, (क) इसके बाद धातुको द्वित्व होता है।

(ड) अगिम स्वर ह्रस्व रहनेपर अभ्यासके अ को इ होता है, (इ) अभ्यासके स्वरको, यदि वह ह्रस्व हो, दीर्घ होता है।

यथा अभाणि—मुझसे कहा गया।

कर्मणि तथा भावे प्रयोगोंके रूप—ये आत्म. प्रत्यय लगानेसे बनते हैं।

भण्—अभाणि	अभाणिषाताम्	अभाणिषत
ज्ञा—अज्ञायि	अज्ञायिषाताम्	अज्ञायिषत
छिद्—अच्छेदि	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत

म पु स ष का प्रत्यय इ है। यह आगे रहनेपर अन्तिम स्वर तथा उपान्त्य अ को वृद्धि होती है, और आकारान्त धातुओंमें य आगम होता है। इतर उपान्त्य स्वरको गुण होता है।

अन्वभूमन अभूव नाऽशमयन्नमना अभूव माशोचम्।

सुमनासोऽपि महान्तं कालं स राज्यमन्वशासीत्तेनैव प्रजाश्चैनमाभार्षीत्। यथैव राजा सत्कार्याण्यकार्षीत्तदन्वमात्योऽपि द्विगुणितप्रजानुरागमचकार।

तदभूतमहोन्धकारा च पातालतलमिवावतीर्णो तत्र क्वाहमगाम किमकरवं किं व्यलपमिति सम्भ्रमत नाज्ञासिषम्। असत्य मे तस्मिन् वयो किमतिकठिनतयाऽस्य मुहूर्त्तस्य किमनेकदुःखसहनसहिष्णुतया हतशरीरस्य किं विहितया शोकस्य किं भाग्यतयास्य जन्मान्तरोपात्तस्य दुष्कृतस्य किं तु यत्नानिपुणतया विधेरस्य केन हेतुना नोद्गच्छन्ति स्म तन्न वाबेदिषम्।

[1]न तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते।

दुष्टात्मा नि शीकमपाश्नत् मराली न गतान्यसः।
धमरात्मी रक्षणाद्दिगाज्जि सम्प्रत्यन्तरम्॥
निर्विषेणापि सर्वेण कर्त्तव्या महती फटा।
विषं भवतु मा भूद्वा फटाटोपो भयङ्करः॥
नितरां नीचोऽस्मीति त्वं खेदं कूप मा कदापि कृथाः।
अत्यन्तसरसहृदयो यत परेषां गुणग्रहीताऽसि॥
भूपाश्चन्द्रमसोऽभीता नलनृपाद्या गता तथा।
शैलराजो वरोत्पथ द्विन्ध्य क्रोधवशानुग॥
स निवारयितुं शक्तो नान्य कश्चिद्‌ द्विजोत्तम।
ऋते त्वा हि महाभाग तस्मादेनं निवारय॥

१। बाध धातु आत्म० है। कोई कहता है— शीत हमको उतना कष्ट नहीं देता जितना कष्ट तुम्हारा अशुद्ध प्रयोग 'बाधति' दे रहा है। बाधति का अर्थ है—बाधति इति प्रयोग।

चिन्ता न्याय मजनापि स्वोदयाय
    मिन्याय विलयपथा भूषमायामीत ।
अमृतस्य कनकस्य किल कोकिलानां
    पालयित पदयपि त्यजितौ गतानि ॥

सा निशाप पलिष्ठा स्वयमाम नासन्ती यथा ।
यत् कोऽस्मिन्नुमत्क्रमवधौ काममोहितम् ॥
यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजन श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ॥

माधुर्ये[1] विद्युताऽ मालावाय
    मकारमिश्रे स्तरेऽप्युपाय ।
सर्वेत्र यात यतयाऽस्य वार
    समेत्र भाग तथ निन्दामि ॥

धातुपाठा महान् कश्चित् सकारभयनाशन ।
तत्र तीर्थं महाम्भोधि परमानन्दमाश्नवि ॥
येनाकारविचारेण शायते ज्ञानमुत्तमम् ।
तेनाभ्यन्तिकमेनाद्य पनाशो भवन्तु ॥
यक्ष्माणां महारत्न चित्तशिवमहासन् ।
अत प्रयाणात् प्राप्त तत्त्वज्ञानात्तमात्मन ॥

इसमें आलाप करते हुए राम और सीता की रात ही बीत गई ।
उससे सब आप चकित हुए ।
मैंने उससे पूछा, 'तुम बम्बई से कब लौटे ?'

१। संस्कृतके वर्तमानमें अशका अवकाश नहीं है। इत्थुचि वा बहुलवृद्धि भयमें सम्भव है इसलिये यहाँ ब व का प्रयोग किया गया है।

राजाने मन्त्रीसे कहा, "मैं देखता हूं कि मेरा जीवन निष्फल है"।

उसने ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी।

हे महाराज! यदि चन्द्रमामें गरमी वा सूर्यमें सर्दीका अभाव हो, तो युवराजमें दोषका भी अभाव है।

इसके बाद ज्यों ही समय बीता बिलारन उस पेड़के खोखलेसे चिड़ियोंके बच्चोंको निकाला और खा गया।

जो कोई अपने कर्तव्यमें दृढ़ रहता है और प्रतिदिन अधिकाधिक परिश्रम करता है, उसका जीवन सफल होता है।

मुख्यशब्द।

अतिकठिनता (स्त्री)—बड़ी कठोरता
अनुराग (अनुराग) पु—प्रेम
अम्बर (अम्बरम्) न—मेघ
अपाय (अपाय) पु—नाश
अब्ज (अब्जम्) न—कमल
असु (पु)—प्राण (प्राण शब्दके समान बहुवचनमें प्रयोग होता है
आली (स्त्री)—पङ्क्ति
कलकल (कलकल) पु—कोलाहल
क्रौञ्चमिथुन (क्रौञ्चमिथुनम्) न (क्रौञ्च एक पक्षी+मिथुन—न जोड़ा) क्रौञ्च पक्षियोंका जोड़ा
तरण (तरणम्) न—तैरना
दग्धदैव (दग्धदैवम्) न (दग्ध—दह् का भू कृ निन्दा+दैव—न भाग्य)—दुर्भाग्य
दुष्कृत (दुष्कृतम्) न—पाप
निषाद (निषाद) पु—एक म्लेच्छजाति
प्रतिष्ठा (स्त्री)—आदर
फटा (स्त्री)—फन
फटाटोप (फटाटोप) पु—(फटा+आटोप—पु विस्तार, आडम्बर)—सर्पका फणाका आडम्बर
बिम्ब (बिम्बम्) न—मण्डल
भवाम्भोधि पु (भव पु संसार+अम्भोधि पु समुद्र)—संसार सागर
भावनता (स्त्री)—भावुता
भ्रमराली (स्त्री)—भ्रमर पु+आली—स्त्री पङ्क्ति)—भ्रमरोंकी पङ्क्ति
मराली (स्त्री)—हंसी
मुक्ता (स्त्री)—मुक्ता,

राज्यभार (राज्यभार) पु —राज्यका भार
विभ्रम (विभ्रम) पु —घूमना फिरना
निश्चिन्तता—(स्त्री)—अचिन्तता
शकल (शकल) पु —टुकड़ा
असृज् (न)—रक्त
शष्पजाल (शष्पजालम्) न (शष्प पु + जाल न समूह)—शष्पोंका समूह
शीत (शीतम्) न —सरदी
शुकनास (शुकनास) पु —एक मन्त्रीका नाम
समरसिन्धु (पु)—युद्धसागर
समा—स्त्री (ब ब में प्रयोग होता है)—वर्ष
सहिष्णुता (स्त्री)—सहनशीलता
सरोरुह (सरोरुहम्) न —कमल
सुषमा (स्त्री)—शोभा
हतशरीर (हतशरीरम्) न सम (हत—हन् + त, निन्दित + शरीर न)—निन्दित शरीर

विशेषण ।

अनुग —पीछे चलनेवाला
अन्यत्रमनस् (बहु०)—जिसका मन दूसरी ओर लगा हुआ है
अभ्युद्गत (अभि + उत् + गम् + त)—उत्पन्न
उपात्त (उप + आ + दा + त)—गृहीत
गुणग्रहीतृ (गुण—पु १ सद्गुण, २ डोरी)—१ सद्गुणों का जाननेवाला, २ डोरीको पकड़नेवाला
द्विगुणित—दूना
नाशन —नाशक
निष्ठुर—क्रूर
निर्विष (बहु०)—विषशून्य
निःश्रीक (बहु०)—शोभारहित
नीच—१ गहिरा, २ तुच्छ, अधम
महाभाग—भाग्यवान्
मोहित (मुह—धा + त)—मोहित
रोषण—क्रुद्ध
विप्रकृत (वि + प्र + कृ + त)—अपमानित, विरोधित
शान्त (स्त्री शान्ता)—अचञ्चल
सकल (बहु० कलाभिरवयवैः सहितः सकलः)—सम्पूर्ण, सब
सरस (बहु०) १ जलपूर्ण, २ रसिक, सहृदय

धातु।

निर्+दिश् (निर्दिशति तु० पर०)—दिखाना

नि+वृ—प्रे० (निवारयति वृ—प्रे० भ्वा०, स्वा०, क्र्या० उभ०)—रोकना

वि+लप् (विलपति—भ्वा० पर०)—विलाप करना

वृ (वृणाति—वृणुते स्वा० उभ०)—ढांकना

अव्यय।

अनायासेन (अनायास का तृ० ए० व०)—बिना कष्टके

अनु—पश्चात्, बाद

इतः—यहांसे

नितराम्—अत्यन्त

मा—नहीं (अद्यतन भूतके साथ आज्ञाके अर्थमें प्रयोग किया जाता है।)

प्रतीपम्—विरुद्ध, उलटा

यत्प्रभृति—जबसे

स्म—१ भूत कालिक अर्थ बोध करानेके लिये वर्तमान कालिक क्रियाके साथ प्रयोग किया जाता है, २ मा तथा अद्यतनभूतके साथ प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ आज्ञा होता है।

पाठ ४१।

आशीर्लिङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, नामधातु।

कुशलं ते भूयात्—तुम्हारा मङ्गल हो।

केशवो वः शिवं दद्यात्—केशव तुमलोगोंको कुशल दे।

शिवो वः श्रियं पुष्यात्—शिव तुम लोगोंकी लक्ष्मीको बढ़ावे।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण—हे महाराज, यदि आप पृथ्वीरूप गौको दुहना चाहते हैं तो अब वत्सकी तरह इस लोक (प्रजाजन) का पोषण कीजिये।

शिखिधनम् कर्मधारय समास है। इस का दूसरी रीतिसे भी विग्रह हो सकता है—

१ शिखीव धनुः शिखिधनुष्मत् अथवा २ शिखिधनुरिव शिखिधनुष्मत्। प्रथम विग्रहमें धनु प्रधान है और यह उपमा अलङ्कार है। द्वितीय विग्रहमें शिखि प्रधान है और रूपक अलङ्कार बनता है। सामासिक शब्द है, लौकिक शब्द नहीं है, इसलिये उपमा अलङ्कार है। अत एव शिखिधनुः का शिखिधनरिव शिखिधनुष्मत् ऐसा विग्रह है।

निशि मन्दायते मनो दयितस्य रसादि—शिशिरऋतुमें सूर्यका भी तेज मन्द होता है।

दक्षिण उत्तर पूर्व, पर अवर, अपर, अधर ये 'समीप' सर्वनाम हैं। सर्वनाम के रूप पञ्चमी तथा सप्तमीमें ए व के इनके विकल्पसे सर्वनाम के समान रूप होते हैं। २१६ के पृष्ठमें टिप्पणी देखो।

सखीभी रचितैव नाक्वभ्यमानोऽपि जय—यह राजा अपने मित्रोंसे सूचना सहायक रहा है।

प्रेरणार्थक या णिजन्त बनाने के साधारण नियम पहिले लिखे गये हैं। कुछ अनियत रूप नीचे दिये जाते हैं —

ग—गापयति—ते, ध्या—ध्यापयति—ते, ग्लै—ग्लापयति—ते।

ऋ—अर्पयति, ह्री—ह्रेपयति—ते।

रुह्—रोहयति—ते—रोपयति—ते, हन्—घातयति—ते।

लभ्—लम्भयति—ते, रभ्—रम्भयति—ते।

नम्—नमयति—ते, नामयति—ते, उन्नम्—उन्नमयति—ते।

इस पाठमें आशीर्लिङ्, इच्छार्थक, अतिशयार्थक, तथा नामधातुओंका वर्णन किया गया है।

	भू—पर।			कृ—आत्म।		
प्र पु	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
म पु	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त	कृषीष्ठाः	कृषीयास्थाम्	कृषीढ्वम्
उ पु	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि

श्रि—श्रीयात्—श्रयिषीष्ट, स्तु—स्तूयात्—स्तोषीष्ट, यज्—इज्यात्—यक्षीष्ट, वच्—उच्यात्, दा—देयात्—दासीष्ट पा—पेयात्, स्था—स्थेयात्।

नियम :—

१। परस्मैपद प्रत्यय यासम् यास्, यात्, इत्यादि अविकारक हैं। ये आगे रहनेपर होनेवाले परिवर्तन प्रायः वे ही हैं जो कर्मणि तथा भावे प्रयोगका प्रत्यय य आगे रहनेपर हुआ करते हैं।

२। जेषीष्ट स्तोषीष्ट, कृषीष्ट—आत्मनेपद प्रत्यय विकारक हैं। गुण, तथा षीध्वम् का षीढ्वम् में परिवर्तन इत्यादि वे नियम वे ही हैं जो आत्मने चतुर्थ प्रकारके अद्यतनभूतके हैं।

सन्नन्त (इच्छार्थक)।

भू—बुभूषति (भवितुमिच्छति)		कृ—चिकीर्षति
पा—पिपासति (पातुमिच्छति)		ग्रह्—जिघृक्षति
जि—जिगीषति		दा—दित्सति
हन्—जिघांसति		धा—धित्सति
		आप्—ईप्सति
ज्ञा—जिज्ञासते	आत्म प्रत्यय लगते हैं।	रभ्—रिप्सते
श्रु—शुश्रूषते		स्व—सुषुप्सति (पर)
दृश्—दिदृक्षते		तॄ—तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति
स्मृ—सुस्मूर्षते		
मुच्—मुमुक्षति		लभ्—लिप्सते

पिपासु—पीनेकी इच्छा करनेवाला, पिपासा—प्यास

नियम—इच्छादर्शक प्रकृति धातुओं को स जोड़नेसे बनती है। यह स आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होता है और अभ्यासके अ को प्रायः इ होता है। कहीं स को इ आगम होता है कहीं नहीं।

इच्छार्थक सुलन्त प्रकृति है। इसलिए सेट् के समान इसके भी सब लकारोंमें रूप होते हैं।

कृ—कारय (प)—कारयति कारयतु अकारयत्, कारयेत्, कारयाञ्चकार—बभूव—आस, कारयिता कारयिष्यति अकारयिष्यत्, अचीकरत्, कार्यात्।

क्री—विक्रीय (बेचना)—विक्रीयति विक्रीयतु, अविक्रीयत्, विक्रीयेत्, विक्रीयाञ्चकार—बभूव—आस, विक्रीयिता, विक्रीयिष्यति, अविक्रीयिष्यत् अविक्रीयीत् विक्रीय्यात्।

यङन्त (अतिशयार्थक)।

भू—बोभूयते (फिर फिर अथवा अधिक होता है)—इससे क्रियाका बार २ या अधिक होना प्रतीत होता है।

जैसे - देदीप्यते [illegible], नृत्—नरीनृत्यते, अट्—अटाट्यते।

नियम —

धातुओं को य लगाकर यङन्त बनाये जाते हैं। इनको आत्मनेपदी प्रत्यय लगते हैं। य आगे रहनेपर धातुओंको द्वित्व होता है और अभ्यासको गुण होता है, चल्, नृत्, तथा अट् के रूप अनियत हैं।

यङ्लुगन्त (अतिशयार्थक जिसमें य का लोप होता है)।

भू—बोभवीति, रट्—रारटीति

इन रूपोंमें य का लोप होता है।

यङन्त तथा यङ्लुगन्त भी सब लकारोंमें रूप होते हैं।

नामधातु।

गगनायते—गगनमिवाचरति (आचारार्थे क्यङ्), तरुणायते।

तपस्यति—तप आचरति, नमस्यति—नमस्कार करोति।

मय्यपि सुखमनुभवन्नपि न प्रयोमि । यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम् ।
द्वारका रोहिणीजानिर्द्रष्टुं नेयेष ।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ।

तमेतमौपनिषदं पुरुषं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।

तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मानं पश्येत् ।

एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते । एष ह्येवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते ।

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ।

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।—अनुपममित्यर्थः । अनन्वया लङ्कारोऽयम् ।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत् ।
मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

एक एव खगमानी चिरं जीवतु चातकः ।
पिपासया वा म्रियते याचते वा पुरन्दरम् ॥
स विभोऽपरभूतायसे भवान् अयसुखासमरणोऽपि पावन ।
भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥
विलुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरश्छिनद्मि वा ।
किमु रोदिमि राटीमि किं कृपया मां न यदीक्षसे प्रभो ॥
रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी ।

गुणा वरं लोका अन्त्यजस्य दुःखयुक्तं
कृता भयानल किमिति जगता त्रिभायसम्पम् ।
यथा शार्दूलाय लघ्वञ्जनपद्यारि मधुरं
फलौ योऽस्या स्तौर धमति गरलं तु सहसम् ॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥
विना सीतादेव्या किमिव न हि दुःखं रघुपतेः
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति ।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः
किमित्येवं पुष्पजनपितनगमायता इव ॥
—इति कुशाग्रोक्तिरत्र पति ।

शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥

मेरी शक्ति थोड़ी और काम मैंने उठाया है इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। मैं एक छोटीसी नौकासे समुद्र पार किया चाहता हूं।

इस लोकमें सुखके बाद दुःख और दुःखके बाद सुख आता रहता है। कोई भी सदा सुखी वा दुःखी नहीं है।

एक अक्षर भी यदि एक अच्छी तरह जाना जाय, वह लोगोंके मनोरथको पूर्ण करता है। विद्याकी ऐसी शक्ति है।

उन लोगोंको, जो गोविन्दको प्रणाम करते हैं, कोई भय नहीं।

हे नृप! उससे कहो कि सुहार्दी पाण्डवोंने हमारे लड़कोंको क्या किया।

जो दुर्जनको सज्जन बनाना चाहता है, वह हाथोंसे समुद्रको पार करना चाहता है।

यह मनुष्यको धिक्कार है! उसके लड़के भी उसके शत्रुओंके समान व्यवहार करते हैं।

संज्ञाशब्द ।

अनन्वय (अनन्वय) पु —यह एक अलङ्कार है, जिसमें उपमान और उपमेय एक ही होते हैं ।

अनुवदन (अनुवदनम्) न —उच्चारण करना

अम्बुधि—(पु)—इससे चार संख्याका बोध होता है, क्योंकि समुद्र चार हैं ।

अवधि (पु)—सीमा

अवनि (स्त्री)—पृथ्वी

काम—(काम) पु —प्रेम

खगमणि—(पु, तत्पु०, खग पु आकाशमें चलनेवाला पक्षी + मणि पु रत्न)—पक्षियोंमें उत्तम

गरल—(गरलम्) न —विष

चातक—(चातक) पु —एक पक्षी

जीमूत (जीमूत) पु —मेघ

तरुणेन्दुशेखर पु (बहु०, तरुण विशे० छोटा + इन्दु—पु चन्द्र + शेखर—पु सिरपेंच) जिसका चन्द्रमा सिरपेच है, शिव

दैवत (दैवतम्) न —देवता

नग (नग) पु —इससे सात संख्याका बोध होता है ।

नेमि (पु)—पहियेकी हाल

पुरन्दर (पुरन्दर) पु —इन्द्र

पुरुष (पुरुष) पु —आत्मा

भव (भव) पु —१ जो उत्पन्न हुआ, २ शिव

मन्दाक्रान्ता—(स्त्री)—एक छन्दका नाम

मुण्ड (मुण्ड) पु —सिर

मैत्रेयी—(स्त्री)—याज्ञवल्क्यकी स्त्री

रस (रस) पु —इससे ६ संख्याका बोध होता है, क्योंकि रस छ है ।

रुद्र (रुद्र) पु —इससे ११का बोध होता है क्योंकि रुद्र ११ हैं ।

शरण (शरणम्) न —रक्षाका स्थान

शव (शव) पु —मृत शरीर

शिखरिणी (स्त्री)—एक छन्द

विशेषण ।

अनुपम (बहु०, अनु + उपमा—सादृश्य)—असदृश, असमान

अर्थिन्—चाहनेवाला

उपरत (उप + रम् + त)—विरक्त

औपनिषद—जिसका ज्ञान उपनिषद्में हो सकता है

कामदुह्—मनोरथ पूरा करनेवाला

खड्गचर्मधर—तलवार और ढाल लिये हुए

छिन्न (छिद्+त)—कटा हुआ

तितिक्षु—जो सर्दी गरमी सुख दुःख इत्यादिसे अविकृत रहता है

दान्त (दम्+त)—जिसने इन्द्रियोंका दमन किया है

दुस्तर—अत्यन्त असह्य

द्रष्टव्य (दृश्+तव्य)—देखने योग्य

निदिध्यासितव्य (नि+ध्यै—सन्नन्त+तव्य)—एकाग्र चित्तसे विचार करने योग्य

पावन—पवित्र

भवान्तक—भवोंका नाशक

मन्तव्य (मन्+तव्य)—विचार करने योग्य

रोहिणीकान्त (बहु०, रोहिणी कान्ता यस्य सः)—वह जिसकी स्त्री रोहिणी है, बलराम

लवण—खार, निमक

विषमेक्षण (बहु० विषम १ अयुग्म, २ अनुचित, पक्षपाती+ईक्षण नेत्र) १ जिसकी विषम अर्थात् तीन नेत्र हैं, २ जो पक्षपातसे देखता है

शान्त (शम्+त)—शान्त, जिसने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाया है

श्रोतव्य (श्रु+तव्य)—सुननेके योग्य

श्रद्धान्वित—श्रद्धावान्

समाहित (सम्+आ+धा+त)—जिसने निद्रा, आलस्य इत्यादि को दूर किया है और चित्तको विचार करनेमें एकाग्र किया है

सुप्रयुक्त—(सु+प्र+युज्+त)—जिसका प्रयोग अच्छी तरह किया गया

धातु।

उद्+नी (उन्नयति ते—भ्वा उभ)—ऊपर उठाना

प्रति+इ (प्रत्येति—अ पर)—विश्वास करना, पतियाना

वि+लुठ् (विलुठति-भ्वा पर.)—लोटना

रट्—(रटति भ्वा पर)—रटना, पुकारना

अव्यय ।

अत्यन्तम्—बहुत
अधः—नीचे
एकान्ततः—नियमसे, अवश्य
नीचैः—नीचे
यद्वा—अथवा (पक्षान्तर का बोध कराता है ।)

पाठ ४७ ।

स्त्रीप्रत्यय तथा पत्रलेखनका प्रकार ।

पहिले स्त्रीप्रत्ययोंका वर्णन किया गया है। इस पाठमें उनका विस्तारसे वर्णन किया जाता है ।

आ—अजा (बकरी) कोकिला चटका (चिड़िया) अश्वा, मूषिका (मूषकसे), बाला, वत्सा शूद्रा (बालो अर्थात् वयसे प्रथमे), ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, वृद्धा, स्थविरा ।

ई—गौरी, नर्तकी, हरिणी, मानुषी (मनुष्यसे), मत्सी (मत्स्यसे), वयसि (वयस् के प्रथमे)—कुमारी, किशोरी (परन्तु वृद्धा, स्थविरा)। पुंयोगे (उसकी स्त्री)—शूद्री गणकी

नियम—

१। अकारान्ता—अकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिङ्गसे पर आ या ई लगानेसे बनता है ।

बाधक—

(अ) इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुण—वरुणानी, भव—भवानी, रुद्र—रुद्राणी, शर्व—शर्वाणी, मृड—मृडानी, सूर्यस्य स्त्री सूर्या, मनोः स्त्री मनावी मनायी मनुवा, मातुल—मातुलानी—मातुली ।

(ब) कहीं २ आप् लग जाता है ।

महद्धिमं हिमानी, महदरण्यमरण्यानी, दुष्टो यवो यवानी, यवनानां लिपिर्यवनानी।

(क) कुछ शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप भिन्न २ अर्थों में होते हैं।

उपाध्याय—उपाध्यायस्य स्त्री उपाध्यायानी, उपाध्यायी वा—गुरुकी स्त्री; स्वयमध्यापिका—उपाध्याया—वा—स्वयं पढ़ानेवाली।

आचार्य—आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी; स्वयं व्याख्यात्री—आचार्या।

क्षत्रिय—क्षत्रियस्य स्त्री क्षत्रियी (पुंयोग)। क्षत्रियाणी—क्षत्रिया वा—क्षत्रिय जातिकी स्त्री।

[illegible]—[illegible] (अकृत्रिमा [illegible])—स्वाभाविक भूमि, [illegible] (कृत्रिमा)—कृत्रिम भूमि।

(ख) आ तथा ई दोनों—

पञ्चपुच्छी—च्छा, सुकेशी—शा, सुनासिकी—का, कृशोदरी—रा, बिम्बोष्ठी—ष्ठा, सदङ्गी—ङ्गा, मृगाक्षी—क्षा, चन्द्रमुखी—खा।

(ग) कृता [illegible], करणीया [illegible], [illegible] लघुतरा, लघुतमा, लघिष्ठा। कृत तथा विधि कृदन्त, तथा तर, तम, इष्ठ, में अन्त होने वाले शब्दोंका स्त्रीलिङ्ग का रूप आ लगानेसे बनता है। पर कृत कर्तरि [illegible] का स्त्रीलिङ्गका रूप ई लगानेसे बनता है।

२। इकारान्त—(अ) कृति, मति, नति, बुद्धि, नीति इत्यादि।

(ब) रजनि—नी, रात्रि—त्री, अवनि—नी, कोटि—टी, भूमि—मी, श्रेणि—णी।

(अ) ति में अन्त होनेवाले कृति, मति, नति, इत्यादि शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं।

(ब) अन्य प्रकार इकारान्त का इ तथा ई दोनों लगते हैं। पद्धति के अन्त में ति रहने पर भी पद्धति—ती दो रूप होते हैं।

पति का पत्नी, समान पतिर्यस्याः सा सपत्नी।

३। उकारान्त —पटु—पटु वा पटी, लघु—लघु वा लघ्वी, पर पाण्डु (पीला) का केवल पाण्डु, और पङ्गु (लगड़ा) का पङ्गू वा पङ्ग्वी होता है।

उकारान्त विशेषणशब्द स्त्रीलिङ्गमें विकल्पसे ई लगाकर रूप बनते हैं।

वामोरु यथा वा वामोरू, रम्भोरू (रम्भा स्त्री केलेका पेड़), करभोरू (करभ—कलाईसे कनिष्ठिका तकका हाथका पिछला भाग, अथवा हाथीकी सूँड़)।

बहु० के अन्त का ऊरु का स्त्रीलिङ्ग में ऊरू होता है।

४। ऋकारान्ता नकारान्ताश्च—कर्तृ कर्त्री, द्रष्टृ द्रष्ट्री, हस्तिन् हस्तिनी, राजन्—राज्ञी।

ऋकारान्त तथा नकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिङ्गके रूप ई लगानेसे बनते हैं।

बाधक—

(अ) पञ्चन्, सप्तन् इत्यादि नकारान्त संख्यावाचक तथा तिसृ और चतसृ (त्रि और चतुर् के आदेश)।

(ब) स्वसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ।

(क) मन् में अन्त होनेवाले शब्द—दामन्, सीमन्।

(अ) मतुप् (मत्)—बुद्धिमत् बुद्धिमती, भगवत् भगवती।

(ब) क्तवतु (वत्—कर्तरि भूत कृदन्त प्रत्यय)—कृतवत् कृतवती।

(क) क्वसु (वस्—परोक्षभूत कृदन्त प्रत्यय)—विद्वस्—विदुषी, जग्मिवस्—जग्मुषी तस्थिवस्—तस्थुषी (ई प्रत्यय भ अङ्गको लगता है)।

(ड) ईयसुन् (आपेक्षिक प्रत्यय ईयस्)—लघीयस् लघीयसी।

(इ) वतुप् (वत्, परिमाणवाचक)—तावत् तावती, यावत् यावती,

एतावत् एतावती, इयत्-इयती, कियत्-कियती।

(ग) शतृ (अत् पर वर्तमान कृदन्त प्रत्यय)—गच्छन्ती, पुष्यन्ती, चोरयन्ती, कारयन्ती, तुदती न्ती याती न्ती, करिष्यती न्ती, चिकीर्षती न्ती, परन्तु द्विषती, ददती, चिन्वती, सुन्वती, कुर्वती, क्रीणती। इनमें भ्वा, दि चु, तथा प्रेरणार्थकमें न् नित्य होता है, और तु और अदादि आकारान्त धातु पर भविष्यत् तथा पर सन्नन्त में विकल्पसे न् होता है।

५। उगिदन्ता—उन शब्दोंका स्त्रीलिङ्गके रूप, जिनके अन्तमें ऐसे प्रत्यय हों जिनके उ अथवा ऋ या लृ का लोप होता हो, ई लगानेसे बनते हैं। इस प्रकारके प्रत्यय ऊपर दिये हुए मतुप्, क्तवतु, इत्यादि हैं।

महती, भवती—महत् और भवत् (सर्वनाम) के स्त्रीलिङ्ग रूप भी ई लगाकर बनाये जाते हैं।

तय—पञ्चतयी, द्वितयी

द्वयस—जानुद्वयसी
दघ्न—ऊरुदघ्नी
मात्र—जलमात्री

(द्वयस, दघ्न, मात्र, परिमाण अर्थमें होते हैं। जानुदघ्न पय—घुटने तक जल।)

ठञ—वार्षिकी, मासिकी प्रामाणिकी।

दृश—तादृशी, मादृशी इत्यादि।

६। तय, द्वयस, मात्र, ठञ में अन्त होनेवाले शब्द, तथा तादृशके समान शब्दोंमें ई लगाकर स्त्रीलिङ्गके रूप बनाये जाते हैं।

अधोलिखित पत्र कालिदासके मालविकाग्निमित्र में मिला है—

स्वस्ति। यज्ञशरणात् सेनापति पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात् परिष्वज्य अनुदर्शयति। विदितमस्तु। योऽसौ राजसूययज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य संवत्सरोपावर्त

नीयो निरर्गलधुरगो विद्युतः स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थित । तत उभयोः सैन्ययोर्महानासीत् संमर्दः ।

ततः परान् पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना ।
प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः

सोऽहमिदानीमंशुमतेव सगरः पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये । तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसेवनायागन्तव्यमिति ॥

(अनुज्ञापयति—दिखाता है, यथालिखित प्रकारसे बताता है । विज्ञापयति छोटा बड़ेको, या बराबरीवाला बराबरको विनयसे लिखता है । इसका अर्थ 'प्रार्थना करना', 'सादर निवेदन करना' है । आज्ञापयति बड़ा छोटेको लिखता है । अनुज्ञापयति—निवेदयति । राजसूय नामक एक यज्ञ है, जो राज्याभिषेकके समयपर सार्वभौम राजासे किया जाता है । दीक्षित=जिसको यज्ञकी दीक्षा हुई । वत्सरं०—जो एक वर्ष बाद लौटाया जानेको है । निरर्गल —जिसका अर्गला यानी बाधा न हो, स्वतन्त्र । रोधस —नदी तट । अनीकम् सेना, अश्वानीकम् घोड़ोंकी सेना । प्रार्थितः —रोका गया, आक्रान्त । वाजिराज —अश्वोंमें उत्तम । अकालहीनम्—कालक्षेप न करते ।

श्री ।

स्वस्ति । श्रीमद्गुरुचरणकमलनिरन्तरपरिचरणप्राप्तनिखिलपुरुषार्थान् राजश्रिया विराजितान् राजमान्यान् देवदत्तशर्मण आशीर्भिरभिनन्द्य (अथवा अमुकशर्मणो नमस्कारततीः कृत्वा) विज्ञापनमिदं यत् भवल्लिखितं पुस्तकं समुपलभ्य प्रेषयामि । स्नेहं सदा सम्वर्धयतेति विज्ञापयति

संवत् १९७३ माघ कृष्णत्रयोदश्याम् । यज्ञदत्तशर्मा ॥

श्रीः ।

मैसूरपुरम्, २१।१।१० ।

श्रीमन् प्रियसुहृत्तम

गतमासस्य पञ्चविंशतितमेऽह्नि भवल्लिखितं पत्रं प्राप्य यथाकालं भवतः सुमङ्गलानन्दमन्वभूवम् । भवन्निर्दिष्टस्य पुस्तकस्य प्रेषयितुमिच्छावान् कृतो मम समीपे नास्त्यपि तत्र प्रेषयितुमिति मुधा चिन्तयामि तद्भूयोऽप्यन्यतो विचार्य निवेदयिष्यामि च तद्वृत्तान्तं यदि लभेय । शमस्तु । तद्भवतो निरन्तरं पौत्र पुत्रिकाद्युदन्तं ज्ञापनाय च सुहृदमाशासे ।

भवदीय

नारायणशास्त्री ॥

गद्यतरङ्गिणी पत्र लिखनका ढंग समझनेके लिये ये दो पत्र पर्याप्त हैं ।

अत्रानुपाख्यायते—सत्यकामो जाबालो मृतपितृको जाबालां स्वमातरं पप्रच्छ मातः अहमाचार्यकुले ब्रह्मचर्यं वस्तुमिच्छामि किं गोत्रोऽहमस्मीति । सोवाच अहं बहु चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे नाहमेतद्वेद यद्गोत्रस्त्वमसि, सत्यकामो नाम त्वमसि, जबाला तु नामाहमस्मि । अतः सत्यकामो जाबाल इत्येव स्वमात्मानमाचार्याय ब्रूहीति । स गौतमं प्रत्येत्य ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्यामीति भगवन्तमुपेयां गौतमेन किंगोत्रस्त्वमिति पृष्टो मातुर्यथोक्तं सर्वं सत्यमुक्तवान् । तमनन्तरं गौतमस्तं प्रथमं—नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानां गवां चतुःशतसङ्ख्यानां रक्षणाय नियोजयामास । स ताः आदाय यावत् सहस्रसङ्ख्या न भविष्यन्ति तावन्न निवर्त इति प्रति ज्ञाय प्रायश उपस्थितः तृणजलसमृद्धं प्रापयामास । यदा ता सहस्रं सम्पन्ना अथ तमाचार्यकुलं प्रापयितुमृषभ उवाच—प्राप्ताः सोम्य सहस्रं स्मः इति प्रापय

न आचार्यकुलम् । इत्युक्त्वा स श्रमणस्तस्मै सत्यकामाय पाण्डुरकृशाश्च चतुष्पञ्चे ग्रहाण एक पञ्चमुक्तवान् । ततोऽत्रशिष्टांस्तेन् पालनविधिं च समादिश्य क्वचित् । तथाभूत आचार्यकुल प्राप्य आचार्य उवाच—सत्यकाम ब्रह्मविदिव भासि, कस्त्वामनुशशास । अन्यो मनुष्येभ्य इति सत्यकाम उवाच । परन्तु न तावता मम सन्तोष । यत आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधुतमत्वं प्रापयतीति भगवद्भ्यः श्रुतमस्ति । भगवांस्त्वेव मे ब्रवीतु मिच्छामीति । तमाचार्यस्तदेवास्मिंश्चिदन्तं ब्रह्म तस्य पुनरप्युक्तवानिति ।

भक्तलक्ष्मणमहितो रघुपतिश्च पञ्चवटीपावने इयमीयमाणोऽप्यमुम् मिव विमानमध्यास्ते ।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं
हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः ।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः ॥

सेयं स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥

पूर्व वय यथ पूर्वमियाम्नोऽस्मतिरायपो ।
किमासतसधुना मिथु पूर्व पूर्व सय सयम् ॥

जापीव मिथुनि वरा परितप्यमानो
रंगात समुद्र इव प्रवर्तन्ति यूयम् ।
आप्नु परित्यजति भिन्नधर्माश्रयो
शाकम्भपावन्दिनयाश्रयोऽति विनुम् ॥

स धन न च राजसमृद्धय न हि विद्यातिमिरत्वकारणे ।
यदि पोदि मनासि त । कटकामोंकुलरक्षिता कृतम् ॥

सुमित्रयमानस्य त्रिस्वमलाचार (सम्पूर्णधर्मकीर्तिविरचित... इति पाठम् । अशुद्धो भाषामार्ग) पुस्तकस्थाप प्रथमा स्मृतिः रक्षिता ।

अभी सेनापति अपनी उत्साहवर्धक वाणी समाप्त भी न करने पाया था (अनवसितवचन एव सेनापतौ), कि सिपाहियोंने कमर कसी और लड़नेके लिये तयार हो गये।

मान लिया कि (कामम्) अमुक काम अवश्य करना चाहिये, पर मैं यह वृत्तान्त राजासे नहीं कह सकता।

ज्यों २ तुम अपने कर्तव्यका विचार करोगे त्यों २ तुम्हारा शोक अधिक होगा (यथा यथा—तथा तथा)।

“इन्द्रके मित्र लोग उससे शत्रुओंको जीत रहे (इति का प्रयोग करो) पावन वर्षोंका प्रभाव है” ऐसा राजाने मातलिसे कहा।

धनका आश्रय लेना अच्छा, पर अभिमानियोंकी सेवा करना अच्छा नहीं (वरम्—न तु)।

रोगके उत्पन्न होते ही (जातमात्र रोगम्) उसके दूर करनेका यत्न करना चाहिये।

रथको रोको जितनेमें (यावत्) मैं उतरता हूँ।

यह आश्चर्य है कि मेरे बार २ उपदेश करनेपर भी (अनादरषष्ठी या अनादरसप्तमीका प्रयोग करो) तुम सन्मार्गसे भटके।

शब्दार्थ।

अङ्ग (अङ्ग) पु—सखा
अघ (अघम्) न—पाप
इन्दु (पु)—१ चन्द्र, २ इससे १ संख्याका बोध होता है।
उर्वी (स्त्री)—पृथ्वी
ऋषभ (ऋषभ) पु—बैल, वायु देवता, जिसने देहके शरीरमें प्रवेश किया था
किम्प्रभु (पु)—कुत्सितस्वामी प्रभुत्व)—दुष्ट राजा
गति (स्त्री)—ज्ञान
गौतम (गौतम) पु—एक ऋषि
ग्रह (ग्रह) पु—१ ग्रह, २ इससे ९ का बोध होता है।
जाबाल (जाबाल) पु—एक मुनि
जाबाला (स्त्री)—किसी स्त्रीका नाम

दृश् (स्त्री)—दृष्टि
नूपुर (नूपुरम्) न—पायजेब
भङ्गि (स्त्री)—तरङ्ग
मुनि (पु)—१ ऋषि २ इससे ७ का बोध होता है।
मौन (मौनम्) न—चुप रहना
विप्रयोग (विप्रयोग) पु—वियोग
वृन्द (वृन्दम्) न—समूह।
व्याघ्री (स्त्री)—शेरनी
सत्यकाम (सत्यकाम) पु—एक मुनिका नाम
हंस (हंस) पु—सूर्य।

विशेषण।

अभिश्लिष्ट (अभि+श्लिष्—४ पर +त)—लगा हुआ
कृश—दुबला
चतुष्पाद् (चतुर्+पाद् पु—चौथाई हिस्सा, चत्वारः पादाः यस्य स चतुष्पाद्)—चार चरणका (पाद चतुर्थांश, चार दिशायें मिलकर १ पाद और ४ कलायें होती हैं)
तरङ्गित (स्त्री ०ता)—जिसमें तरङ्ग बने हुए हैं
तावत्—उतना
परिचारक—सेवक
ब्रह्मविद्—ब्रह्म या परमात्माको जाननेवाला
मित—(मा—३ आ +त)—नपा हुआ
षोडशकल—जिसके १६ भाग हैं (४ दिशायें, पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिव्, समुद्र, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, तथा मन, ये ब्रह्मकी १६ कलायें हैं।)
समद्गु (मद्गु पु एक जलचर पक्षी, यहाँ इसका अर्थ प्राण है)—प्राणसहित
समृद्ध (सम्+ऋध्—दि, ४ पर +त)—पूरा
सम्पन्न (सम्+पद्—दि आ +त)—हुआ

धातु।

अनु+आप् (अन्वाप्नोति, ५ पर)—पहुंचना
अप (अपयति से णु उभ)—पालना
उप+आ+ख्या (उपाख्याति, २

पर)—प्रदान करना, शिक्षा कहना

नि+युज् (नियोजयति ते)—लगाना

परि+तप् (परितपति-अयति स, स्वा पर न उभ)—घबराना

परि+स्रु (परिस्रवति स्वा पर)—टपकना; बहना

वि+वच् (विवक्ति अ पर)—विशेषत कहना, बाक २ और [illegible] कहना

सं+श्रु (संशृणुते—स्वा आ)—किसीकी बात सुनना

अव्यय।

इति यावत्—दूसरे शब्दोंमें, अर्थात्।

चिरम्—बहुत

तदनन्तरम्—उसके बाद

मनाक्—थोड़ा

वामत—उलटे क्रमसे

---

१ । चटकदम्पत्यो ।

अस्ति कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे चटकदम्पती तमालतरुकृतनिलयौ प्रतिवसत स्म । अथ तयोर्गच्छता कालेन सततिरभवत् । अन्य स्मिन्नहनि प्रमत्तो वनगज कश्चित्त तमालवृक्ष घर्मार्तश्छायार्थी समाश्रित । ततो मदोत्कर्षात्ता तस्य शाखा चटकाश्रिता पुष्क राग्रेणाकृष्य बभञ्ज । तस्या भङ्गेन चटकाण्डानि सर्वाणि विशी र्णानि । आयु शेषतया च चटकौ कथमपि प्राणैर्न वियुक्तौ । अथ चटका स्वाण्डभङ्गाभिभूता प्रलापान् कुर्वाणा न किञ्चित्सुखमास साद । अत्रान्तरे तस्यास्तान् प्रलापाञ्छ्रुत्वा काष्ठकूटो नाम पक्षी तस्या परमसुहृत्तद्दुखदुःखितोऽभ्येत्य तामुवाच । भगवति कि वृथा प्रलापेन । उक्त च ।

नष्ट मृतमतिक्रान्त नानुशोचन्ति पण्डिता ।
पण्डितानां च मूर्खाणां विशेषोऽय यत स्मृत ॥

तथा च ।

अशोच्यानीह भूतानि यो मूढस्तानि शोचति ।
स दु खे लभते दु ख द्वावनर्थौ निषेवते ॥

अन्यच्च

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्त प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवश ।
तस्मान्न रोदितव्य हि क्रिया कार्याश्च शक्तित ॥

चटका प्राह । अस्त्येतत् । पर दुष्टगजेन मदात्मम मतान क्षय कृत । तद्यदि मम त्व सुहृत्सत्यस्तदस्य गजापसदस्य कोऽपि वधोपायश्चिन्त्यताम् यस्यानुष्ठानेन मे सततिनाशदु खमपसरति । उक्त च ।

आपदि येनापकृत येन च हसित दशासु विषमासु
अपकृत्य तयोरुभयो पुनरपि जात नर मन्ये ॥

काष्ठकूट आह । भगवति सत्यमभिहित भवत्या ।

स सुहृद् व्यसने य स्यादन्यजात्युद्भवोऽपि सन् ।
वृद्धौ सर्वोऽपि मित्र स्यात् सर्वेषामेव देहिनाम् ॥
स सुहृद् व्यसने य स्यात् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान् ।
स भृत्यो यो विधेयज्ञ सा भार्या यत्र निर्वृति ।

तत् पश्य मे बुद्धिप्रभावम् । पर ममापि सुहृद्भूता वीणारवा नाम मक्षिकास्ति । तत्तामाहूयागच्छामि येन स दुरात्मा दुष्टगजो वध्यते । अथासौ चटकया सह मक्षिकामासाद्य प्रोवाच । भद्रे ममेष्टेय चटका केनचिद् दुष्टगजेन पराभूताण्डस्फोटनेन । तत्तस्य वधोपायमनुतिष्ठतो मे साहाय्य कर्तुमर्हसि । मक्षिकाप्याह । भद्र किमुच्यतेऽत्र विषये । उक्त च ।

पुन प्रत्युपकाराय मित्राणा क्रियते प्रियम् ।
यत् पुनर्मित्रमित्रस्य कार्य मित्रैर्न कि कृतम् ॥

सत्यमेतत् । पर ममापि भेको मेघनादो नाम मित्र तिष्ठति । तमप्याहूय यथोचित कुर्म । उक्त च ।

हितै साधुसमाचारै शास्त्रज्ञैर्मतिशालिभि ।
कथचिन्न विकल्पन्ते विद्वद्भिश्चिन्तिता नया ॥

अथ ते त्रयोऽपि गत्वा मेघनादस्याग्रे समस्तमपि वृत्तान्त निवेद्य तस्थु । अथ स प्रोवाच । कियन्मात्रोऽसौ वराको गजो महाजनस्य कुपितस्याग्रे । तन्मदीयो मन्त्र कर्तव्य । मक्षिके त्व गत्वा मध्याह्नसमये तस्य मदोद्धतस्य गजस्य कर्णे वीणारवसदृश शब्द कुरु येन श्रवणसुखलालसो निमीलितनयनो भवति । ततश्च काष्ठकूटचञ्च्वा स्फोटितनयनोऽन्धीभूतस्तृषार्तो मम गर्ततटाश्रितस्य सपरिकरस्य शब्द श्रुत्वा जलाशय मत्वा समभ्येति । ततो गर्तमासाद्य पतिष्यति पञ्चत्व यास्यति चेति । एव समवाय कर्तव्यो यथा वैरसाधन भवति । अथ तथानुष्ठिते स मत्तगजो मक्षिकागेयसुखान्निमीलितनेत्र काष्ठकूटहृतचक्षुर्मध्याह्नसमये भ्राम्यन् मण्डू

शब्दानुसारी गच्छन् महतीं गर्तामासाद्य पतितो मृतश्च। अतोऽहं ब्रवीमि—

चटकाकाष्ठकूटेन मक्षिकादर्दुरैस्तथा।
महाजनविरोधेन कुञ्जरः प्रलयं गतः॥

२। वामदेवशिष्यकथिता कुमारवार्ता।

कदाचिद्वामदेवशिष्यः सोमदेवशर्मा नाम कश्चिदेकं बालकं राजपुरी निक्षिप्याभाषत। देव रामतीर्थे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मया काननावनौ वनितया कयापि धार्यमाणमनन्यसुलभाकारं कुमारं विलोक्य सादरमभाणि। स्थविरे का त्वम्। एतस्मिन्नटवीमध्ये बालकमुद्वहन्ती किमर्थमायासेन भ्रमसीति। वृद्धयाप्यभाणि। मुनिवर कालयवननाम्नि द्वीपे कालगुप्तो नाम धनाढ्यो वैश्यवरः कश्चिदस्ति। तन्नन्दिनीं नयनानन्दकारिणीं सुवृत्तां नामैतस्माद् द्वीपादागतो मगधनाथमन्त्रिसंभवो रत्नोद्भवो नाम रमणीयगुणालयो व्यवहार्युपयेमे। कालक्रमेण नताङ्गी गर्भिणी जाता। ततः सोदरविलोकनकुतूहलेन रत्नोद्भवस्तया सह प्रवहणमारुह्य पुष्पपुरमभिप्रतस्थे। कल्लोलमालिकाभिहतः पोतः समुद्राम्भस्यमज्जत्। तां लग्नां धात्रीभावेन कल्पिताहं कराभ्यामुद्वहन्ती फलकमेकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम्। सुहृज्जनपरिवृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनोपायेन तीरमगमद्वा न जानामि। क्लेशस्य परां काष्ठामधिगता सुवृत्तास्मिन्नटवीमध्येऽद्य सुतमसूत। प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छायशीतले तरुतले निवसति। विजने वने स्थातुमशक्ततया जनपदगामिनं मार्गमन्वेष्टुमुद्युक्तया मया विवशायास्तस्याः समीपे बालकं निक्षिप्य गन्तुमनुचितमिति कुमारोऽप्यानायीति। तस्मिन्नेव क्षणे वन्यो वारणः कश्चिददृश्यत। तं विलोक्य भीता सा बालकं निपात्य प्राद्रवत्। अहं समीपलतागुल्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽतिष्ठम्। निपतितं बालकमाददति गजपतौ कण्ठीरवो भीमरवो महाग्रहेण न्यपतत्। भयाकुलेन

दन्तायमेन झटिति वियति समुत्पात्यमानो बालको ऽपतत्। स चैव तत्तदग्राग्रासमासीनेन वानरेण कश्चित् पक्वफलबुद्ध्या परिगृह्य फले सरसतया विततस्कन्धभूमौ निहितोऽभूत्। सोऽपि मर्कटः क्वचिदगात्। केसरिणा करिणं निहत्य कुत्रचिद्गामि। ततोऽन्वेषणार्थं गतोऽहमपि बालकं शनैरवरोह्यादायतावत् वनान्तरे वनितामन्विष्याविलोकनेन मानीय गुरवे निवेद्य समर्पयन् भवन्निकटमानीतवानस्मीति।

३। सिंहशशकयोः।

कस्मिंश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति स्म। अथासौ वीर्यातिरेकान्नित्यमेवानेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयन्नोपरराम। अथान्येद्युस्तद्वनजाः सर्वे सारङ्गवराहमहिषशशकादयो मिलित्वा तमभ्युपेत्य प्रोचुः। स्वामिन् किमनेन सकलमृगवधेन नित्यमेव यतस्तवैकेनापि मृगेण तृप्तिर्भवति। तत् क्रियतामस्माभिः सह समयधर्मः। अद्य प्रभृति तवात्रोपविष्टस्य जातिक्रमेण प्रतिदिनं एको मृगो भक्षणाय समेष्यति। एवं कृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेशं विनापि भविष्यत्यस्माकं पुनः सर्वोच्छेदनं न स्यात्। तदेष राजधर्मोऽनुष्ठीयताम्। उक्तं च।

शनैः शनैश्च यो राज्यमुपभुङ्क्ते यथाबलम्।
रसायनमिव प्राज्ञः स पुष्टिं परमां व्रजेत्॥

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य भासुरक आह। अहो सत्यमभिहितं भवद्भिः। परं यदि ममोपविष्टस्यात्र नित्यमेव नैकः श्वापदः समागमिष्यति तन्नूनं सर्वानपि भक्षयिष्यामि। अथ ते तथैव प्रतिज्ञाय निर्वृतिभाजस्तत्रैव वने निर्भयाः पर्यटन्ति। एकश्च प्रतिदिनं तेषां मध्यात् तस्य भोजनार्थं मध्याह्नसमये क्रमेणोपतिष्ठते। अथ कदाचिज्जातिक्रमाच्छशकस्यावसरः समायातः। स समस्तमृगैः प्रेरितोऽनिच्छन्नपि मन्दं मन्दं गत्वा तस्य वधोपायं चिन्तयन् वेलातिक्रमं कृत्वा व्याकुलितहृदयो यावद्गच्छति तावन्मार्गे गच्छता

कूप सदृष्ट । यावत् कूपोपरि याति तावत् कूपमध्य आत्मन प्रति-
बिम्ब ददर्श । दृष्ट्वा च तेन हृदये चिन्तित यद्भव्य उपायोऽस्ति ।
अह भासुरक प्रकोप्य स्वबुद्ध्यास्मिन् कूपे पातयिष्यामि । अथासौ
दिनशेषे भासुरकसमीप प्राप्त । सिंहोऽपि वेलातिक्रमेण क्षुत्क्षाम
कण्ठ कोपाविष्ट सृक्कणी परिलेलिह्यमानो व्यचिन्तयत् । अहो
प्रातराहाराय नि सत्त्व वन मया कर्तव्यम् । एव चिन्तयतस्तस्य
शशको मन्द मन्द गत्वा प्रणम्य तस्याग्रे स्थित । अथ त प्रज्वलिता
त्मा भासुरको भर्त्सयन्नाह । रे शशकाधम एकस्तावत् त्व लघु
प्राप्तोऽपरतो वेलातिक्रमेण । तदस्मादपराधात् त्वा निपात्य प्रात
सकलान्यपि मृगकुलान्युच्छेदयिष्यामि । अथ शशक सविनयमुवाच ।
स्वामिन् नापराधो मम न च सत्त्वाना तच्छ्रूयता कारणम् ।
सिंह आह । सत्वर निवेदय यावन्मम दंष्ट्रान्तगतो न भविष्यसीति ।
शशक आह । समस्तमृगैरद्य जातिक्रमेण मम लघुतरस्य प्रस्ताव
विज्ञाय पञ्चभि शशकै सहाह प्रेषित । ततश्चाहमागच्छन्नन्तराले
महता केनचिदपरेण सिंहेन विवरान्निर्गत्याभिहित । रे क्व प्रस्थिता
यूयम् । अभीष्टदेवता स्मरत । ततो मयाभिहितम् । वय स्वामिनो
भासुरकसिंहस्य सकाश आहारार्थं समयधर्मेण गच्छाम । ततस्ते
नाभिहितम् । यद्येव तर्हि मदीयमेतद्वन मया सह समयधर्मेण
समस्तैरपि श्वापदैर्वर्तितव्यम् । चौररूपी स भासुरक । अथ यदि
सोऽत्र राजा ततो विश्वासस्थाने चतुर शशकानत्र धृत्वा तमाहूय
द्रुततरमागच्छ येन य कश्चिदावयोर्मध्यात् पराक्रमेण राजा भविष्यति
स सर्वानेतान् भक्षयिष्यतीति । ततोऽह तेनादिष्ट स्वामिसकाशमभ्या
गत । एतद्वेलाव्यतिक्रमकारणम् । तदत्र स्वामी प्रमाणम् । तच्छ्रुत्वा
भासुरक आह । यद्येव तत् सत्वर दर्शय मे त चौरसिंह येनाह
मृगकोप तस्योपरि क्षिप्त्वा स्वस्थो भवामि । शशक
तर्ह्यागच्छतु स्वामी । एवमुक्तावे व्यवस्थित ।

य कूपो दृष्टोऽभूत्तमेव कूपमासाद्य भासुरकमाह। स्वामिन् कस्ते प्रताप सोढु समर्थ। त्वा दृष्ट्वा दूरतोऽपि चौरसिंह प्रविष्ट स्वदुर्ग तदागच्छ येन दर्शयामीति। भासुरक आह। दर्शय मे दुर्गम्। तदनु दर्शितस्तेन कूप। सोऽपि मूर्ख सिंह कूपमध्ये आत्मप्रतिबिम्ब जलमध्यगत दृष्ट्वा सिंहनाद मुमोच। तत प्रतिशब्देन कूपमध्याद् द्विगुणतरो नाद समुत्थित। अथ तेन त शत्रु मत्वात्मान तस्योपरि प्रक्षिप्य प्राणा परित्यक्ता। शशकोऽपि हृष्टमना सर्वमृगाना नन्द्य तै सह प्रशस्यमानो यथासुख तत्र वने निवसति स्म। अतो ऽह ब्रवीमि—

यस्य बुद्धिर्बल तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मत्त शशकेन निपातित॥

४। सर्पमण्डूककथा।

कस्मिंश्चित् कूपे गङ्गदत्तो नाम मण्डूकराज प्रतिवसति स्म। स कदाचिद्दायादैरुद्वेजितोऽरघट्टघटीमारुह्य निष्क्रान्त। अथ तेन चिन्तित दायादाना मया प्रत्यपकार कर्तव्य इति। एव चिन्तयन् बिले प्रविशन्त कृष्णसर्पमपश्यत्। त दृष्ट्वा भूयोऽप्यचिन्तयद्यदेन तत्र कूपे नीत्वा सकलदायादानामुच्छेद करोमि। उक्त च।

शत्रुमुन्मूलयेत् प्राज्ञस्तीक्ष्ण तीक्ष्णेन शत्रुणा।
व्यथाकर सुखार्थाय कण्टकेनैव कण्टकम्॥

एव विभाव्य बिलद्वार गत्वा समाहूतवान्। एहि एहि प्रियदर्शन एहि। तच्छ्रुत्वा सर्पश्चिन्तयामास। य एष मामाह्वयति स स्वजातीयो न भवति यतो नैषा सर्पवाणी। तदत्रैव दुर्गे स्थितस्तावद्वेद्मि कोऽय भविष्यतीति। आह च। भो को भवान्। स आह। अह गङ्गदत्तो नाम मण्डूकाधिपतिस्त्वत्सकाशे मैत्र्यर्थमागत। तच्छ्रुत्वा सर्प आह। भो। अश्रद्धेयमेतद्यत्तृणाना वह्निना सह सङ्गम।

गङ्गदत्त आह । सत्यमेतत् स्वभाववैरी त्वमस्माकम् । परं परपरिभवात् प्राप्तोऽहं ते सकाशम् । सर्प आह । कथय कस्मात्ते परिभव । स आह । दायादेभ्य । सोऽप्याह । क ते आश्रयो वाप्या कूपे तडागे ह्रदे वा । तत् कथय स्वाश्रयम । तेनोक्त पाषाणचयनिबद्धे कूपे । सर्प आह । अहो अपदा वय तत्रास्ति तत्र मे प्रवेश प्रविष्टस्य च स्थान नास्ति यत्र स्थितस्तव दायादान व्यापादयामि । तद्गम्यताम् । गङ्गदत्त आह । भो समागच्छ त्वम् । अह सुखोपायेन तत्र तव प्रवेश कारयिष्यामि । तथा तस्य मध्ये जलोपान्ते रम्यतर कोटरमस्ति तत्र स्थितस्त्व लीलया दायादान् व्यापादयिष्यसि । तच्छ्रुत्वा सर्पो व्यचिन्तयत् । अह तावत् परिणतवया कदाचित् कथचिन्मूषकमेक प्राप्नोमि । तत् सुखावहो जीवनोपायोऽयमनेन कुलाङ्गारेण मे दर्शित । तद्गत्वा तान् मण्डूकान् भक्षयामीति । एव विचिन्त्य तमाह । भो गङ्गदत्त यद्येव तदग्रे भव येन तत्र गच्छाव । गङ्गदत्त आह । भो प्रियदर्शन अह त्वा सुखोपायेन तत्र नेष्यामि स्थान च दर्शयिष्यामि । पर त्वयास्मत्परिजनो रक्षणीय । केवल यानह तव दर्शयिष्यामि त एव भक्षणीया इति । सर्प आह साम्प्रत त्व मे मित्र जातम् । तन्न भेतव्य तव वचनेन भक्षणीयास्ते दायादा । एवमुक्त्वा बिलान्निष्क्रम्य तमालिङ्ग्य च तेनैव सह प्रस्थित । अथ कूपमासाद्यारघट्टघटिकामार्गेण सर्पस्तेन स्वालय नीत । ततश्च गङ्गदत्तेन कृष्णसर्प कोटरे धृत्वा दर्शितास्ते दायादा । ते च तेन शने शनैर्भक्षिता । अथ मण्डूकाभावे सर्पेणाभिहितम । भद्र नि शेषितास्ते रिपवस्तत् प्रयच्छान्यन्मे किचिद्भोजन यतोऽह त्वयात्रानीत । गङ्गदत्त आह । भद्र कृत त्वया मित्रकृत्य तत्साम्प्रत मनेनैव घटिकायन्त्रमार्गेण गम्यतामिति । सर्प आह । भो गङ्गदत्त न सम्यगभिहित त्वया । कथमह तत्र गच्छामि । मदीय बिलदुर्गमन्येन रुद्ध भविष्यति । तस्मादत्रस्थस्य मे

प्रयच्छ । नो चेत् सर्वानपि भक्षयिष्यामीति । तच्छ्रुत्वा गङ्गदत्तो व्याकुलमना नित्यमेकैकं तस्मै ददाति । सोऽपि तं भक्षयित्वा तस्य परोक्षेऽन्यानपि भक्षयति । अथान्येद्युस्तेनापरान् मण्डूकान् भक्षयित्वा गङ्गदत्तसुतो यमुनादत्तो भक्षितः । तं भक्षितं मत्वा गङ्गदत्तस्तारस्वरेण धिक् धिक् प्रलापपरः कथञ्चिदपि न विरराम । ततः स्वपत्न्याभिहितः —

किं क्रन्दसि दुराक्रन्द स्वपक्षक्षयकारक ।
स्वपक्षस्य क्षये जाते को नस्त्राता भविष्यति ॥

तदद्यापि विचिन्त्यतामात्मनो निष्क्रमणमस्य वधोपायश्च । अथ गच्छता कालेन सकलमपि कवलितं मण्डूककुलम् । केवलमेको गङ्गदत्तस्तिष्ठति । ततः प्रियदर्शनेन भणितम् । भो गङ्गदत्त बुभुक्षितोऽहं निःशेषिताः सर्वे मण्डूकाः । तद्दीयतां मे किञ्चिद्भोजनं यतोऽहं त्वयात्रानीतः । स आह । भो मित्र न त्वयात्र विषये मयावस्थितेन कापि चिन्ता कार्या । तद्यदि मां प्रेषयिष्यसि ततोऽन्यकूपस्थानपि मण्डूकान् विश्वास्यात्रानयामि । स आह । मम तावत्त्वमभक्ष्यो भ्रातृस्थाने । तद्यद्येवं करोषि तत् साम्प्रतं पितृस्थाने भवसि तदेवं क्रियतामिति । सोऽपि तदाकर्ण्यारघट्टघटिकामाश्रित्य तस्मात् कूपान्निष्क्रान्तः । प्रियदर्शनोऽपि तदाकाङ्क्षया तत्रस्थः प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति । अथ चिरादनागते गङ्गदत्ते प्रियदर्शनोऽन्यकोटरनिवासिनीं गोधामुवाच । भद्रे क्रियतां स्तोकं साहाय्यं यतश्चिरपरिचितस्ते गङ्गदत्तः । तद्गत्वा तत्सकाशं कुत्रचिज्जलाशयेऽन्विष्य मम सन्देशं कथय । यदागम्यतामेकाकिनापि भवता । त्वया विना नाहं वस्तुं शक्नोमि । यदि तव विरुद्धमाचरामि तत् सुकृतमन्तरे मया विधृतमिति । गोधापि तद्वचनाद्गङ्गदत्तं द्रुततरमन्विष्य प्रियदर्शनसन्देशं कथयामास । तदाकर्ण्य गङ्गदत्त आह—

बुभुक्षितः किं न करोति पापं
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ।
आख्याहि भद्रे प्रियदर्शनस्य
न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम् ॥

---

५ । मान्धातृवृत्तान्तः ।

पुरा किलेक्ष्वाकुवंशप्रभवो युवनाश्वो नाम महीपतिर्बभूव । धर्मभर्ता वरः स पृथिवीपालो बहुभिर्भूरिदक्षिणैः क्रतुभिरीजे । अनपत्यत्वात् स राजर्षिर्मन्त्रिषु स्वराज्यमाधाय वानप्रस्थो बभूव । ततः शास्त्रदृष्टेन विधिनात्मानं संयोज्य कदाचिदुपवासेन दुःखितः पिपासाशुष्कहृदयो भृगोराश्रमं प्रविवेश । तामेव रात्रिं महात्मा भृगुनन्दनो युवनाश्वस्य पुत्रकारणादिष्टिं चकार । मन्त्रपूतेन वारिणा महान् कलशस्तत्र पूर्वमेव समाहितोऽतिष्ठत् प्राश्य तस्य पत्नी शक्रसमं सुतं प्रसवीत । यस्मिन् कलशे तत् सुसंस्कृतं वारि निहितमासीत् तं कलशं वेद्यां न्यस्य महर्षयः सुषुपुः । रात्रिजागरणाच्छ्रान्तांस्तानृषीन् समतीत्य शुष्ककण्ठः पिपासार्तः पानीयार्थी तमाश्रमं प्रविश्य स राजा भृशं पानीयमभ्ययाचत । किं तु श्रान्तस्य शुष्केण कण्ठेन क्रोशतस्तस्य याचनां न कोऽपि शुश्राव । ततः स पार्थिवस्तं कलशं जलपूर्णं दृष्ट्वा वेगेनाभ्यद्रवदम्भः पीत्वा व्यवासृजत् । शीतलं तोयं पीत्वा पिपासार्तः स नृपः सुसुखी बभूव । ततस्ते मुनयो निस्तोयं कलशं दृष्ट्वा कस्येदं कर्मेति पप्रच्छुः । तदाकर्ण्य युवनाश्वो ममेदं कर्मेति सत्यं प्रत्यवदत् । न युक्तं कृतं त्वयेति भगवान् भार्गवस्तमाह । मया ह्यत्र दारुणं तप आस्थाय तव पुत्रार्थं जलमाहितं ततस्त्वया यदद्भक्षणं कृतं तन्न युक्तं किन्त्वेतद्दैवकृतमन्यथाकर्तुं न शक्यम् । यतो मत्तपोवीर्यसंभृता आपस्त्वया पीता अतस्त्वमात्मना शक्रसमं पुत्रं जनयिष्यसि ।

यथ परमाद्भुतामिति स्वस्कृते विधाव्याख्यो धीर गर्भधारणञ्च मेदं न समवाप्स्यामि। ततो यथगते पुत्रे तस्य गाम्रो यामं याम त्रिनिर्मित महातेजा सुतो नियन्तामनच गुयमात्र मरपति कृतुराविगत्। न पुत्र दिदृक्षु शक्रमाश्वोपागमत देवा यदृच्छन् किं धास्यत्यय पुत्र इति। तत शक्रमाम्रातय प्रदेशिनी समभिसदधे मामय धास्यतीत्युक्तवाय।

मामय धास्यतीत्येव भाषिते चैव यदृच्छा।
मान्धातेति च नामास्य चक्रुः सेन्द्रा दिवौकसः॥
सोऽयं मान्धातातिरिक्तजन्मा नृपोऽप्रतिहतचक्र राज्य बुभुजे॥

६। कुमारं चन्द्रापीडं प्रति महाराजाज्ञा॥

कुमार महाराज समाज्ञापयति। पूर्णा नो मनोरथाः। अधीतानि शास्त्राणि। शिक्षिता सकला कला। गता सर्वास्वायुधविद्यासु परां प्रतिष्ठाम्। अनुमतोऽसि विनिर्गमाय विद्यागृहात् सर्वाचार्यै। उपगृहीतशिक्ष गन्धगजकुमारकमिव वारिबन्धाद्विनिर्गतमभिनवयौवन कलाकलाप पौर्णमासीशशिनमिव नवोदित पश्यतु त्वा जन। अनुभवन्तु सफलतामतिचिरदर्शनोत्कण्ठितानि लोकलोचनानि। त्वदर्शन प्रति तैः समुत्सुकान्यतीव सर्वाण्यन्तःपुराणि। अयमेव भवतो दशम संवत्सरो विद्यागृहमधिवसत। प्रविष्टोऽसि षष्ठमनुभवन् वयम्। एवं संपिण्डितेनामुना षोडशेन प्रवर्धसे। तदद्यप्रभृति निर्गत्य दर्शनोत्सुकाभ्यो दत्त्वा दर्शनमखिलमातृभ्योऽभिवाद्य च गुरुजनमगतनियन्त्रणो यथासुखमनुभव राज्यसुखानि नवयौवनललितानि च। सम्मानय राजलोकम्। पूजय द्विजातीन्। परिपालय प्रजा। आनन्दय बन्धुवर्गम्। अयं च त्रिभुवनैकरत्नमनिलगरुडसमजव इन्द्रायुधनामा तुरङ्गम प्रेषितो महाराजेन द्वारि तिष्ठति। एष खलु देवस्य पारसीकाधिपतिना त्रिभुवनाश्चर्यमिति कृत्वा "जलधिजलादुत्थितम

योनिजमिदमश्वरत्नमासादितं मया महाराजाधिरोहणयोग्यम्" इति संदिश्य प्रहित । दृष्ट्वा च निवेदितं लक्षणविद्भि । "देव यान्युच्चै-श्रवस श्रूयन्ते लक्षणानि तैरयमुपेत । नैवंविधो भूतो भावी वा तुरङ्गम इति। तदयमनुगृह्यतामधिरोहणेन। इदं च मूर्धाभिषिक्त-पार्थिवकुलप्रसूतानां विनयोपपन्नानां शूराणामभिरूपाणां कलावतां च कुलक्रमागतानां राजपुत्राणां सहस्रं परिचारार्थमनुप्रेषितं तुरङ्गमारूढं द्वारि प्रणामलालसं प्रतिपालयति। इत्यभिधाय विरत-वचसि बलाहके चन्द्रापीड पितुराज्ञां शिरसि कृत्वा नवजलधरध्वान-गम्भीरया गिरा "प्रवेश्यतामिन्द्रायुध इति निर्जिगमिषुरादिदेश ॥

७। चन्द्रापीडं प्रति शुकनासोपदेश ।

समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं चन्द्रापीडं कदाचिद्दर्शनार्थमागतमारूढविनयमपि विनीततरमिच्छञ्छुकनासोऽमात्य सविस्तर-मुवाच। तात चन्द्रापीड विदितवेदितव्यस्याधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गत एवाभानुभेद्यमरत्ना-लोकोच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरि-णामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमद । विषमो विषयविषास्वादमोह । नित्यमस्नानशौचवध्यो रागमलावलेप । घोरा च राज्यसुखसंनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे। गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरू-पत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरंपरा सर्वा। अवि-नयानामेकैकमप्येषामायतनं किमुत समवाय । यौवनारम्भे च प्राय शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धि । भवा-दृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणा । अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम्। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टार । आलोकयतु तावत् कल्याण

भिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यमित्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वेवोद्गता। इयमनार्या लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। परिपालितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। तदस्मिन् महामोहकारिणि यौवने कुमार तथा प्रयतेथा यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः पित्रा च समारोपितसंस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरं च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्। आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति। इत्येतावदभिधायोपशशाम॥

८। ब्रह्मज्ञानविषयकः गुरुशिष्यसंवादः।

श्रुतिस्मृतिभिर्गृहीतपरमात्मलक्षणः शिष्यः संसारसागरादुत्तितीर्षुः पृच्छेत्—कस्त्वमसि सौम्येति।

स यदि ब्रूयात्—ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यासं गृहस्थो वा । इदानीमस्मि परमहंसपरिव्राट् संसारसागराज्जन्ममृत्युमहाग्राहादुत्तितीर्षुरिति ।

आचार्यो ब्रूयात्—इहैव तव सौम्य मृतस्य शरीरं वयोभिरद्यते मृद्भावं वापद्यते । तत्र कथं संसारादुत्तर्तुमिच्छसीति । न हि नद्या अवरे कूले भस्मीभूते नद्याः पारं तरिष्यसीति ।

स यदि ब्रूयात्—अन्योऽहं शरीरात् । शरीरं तु जायते म्रियते वयोभिरद्यते मृद्भावमापद्यते शस्त्राग्न्यादिभिश्च विनाश्यते व्याध्यादिभिश्च संयुज्यते । तस्मिन्नहं स्वकृतधर्माधर्मवशात् पक्षी नीडमिव प्रविष्टः पुनः पुनः शरीरविनाशे धर्माधर्मवशात् शरीरान्तरं यास्यामि पूर्वनीडविनाशे पक्षीव नीडान्तरम् । तस्मादित्थं यथाह शरीरादन्य । शरीराण्यागच्छन्नपगच्छन्नस्मि च वासांसीव पुरुषस्येति ।

आचार्यो ब्रूयात्—साधुवादी । सम्यक् पश्यसि कथं मृषावादी ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यासं गृहस्थो वा इदानीमस्मि परमहंसपरिव्राडिति ।

स यदि ब्रूयात्—भगवन् कथमहं मृषावादीत्यमिति ।

तं प्रति ब्रूयादाचार्यः—यतस्त्वं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं शरीरं जात्यन्वयवर्जितस्यात्मनः प्रत्यभ्यज्ञासीर्ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वय इत्यादिना वाक्येनेति ।

स यदि पृच्छेत्—कथं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं शरीरं कथं वाहं जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इति ।

आचार्यो ब्रूयात्—शृणु सौम्य यथेदं शरीरं त्वत्तो भिन्नं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं त्वं च जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इत्युक्त्वा तं स्मारयेत् परमात्मलक्षणं श्रुतिस्मृत्युक्तमिति ॥

८ । नीतिः ।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ १ ॥
माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥ २ ॥
लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रमिवाचरेत् ॥ ३ ॥
लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः ।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥ ४ ॥
एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ५ ॥
एकेनापि कुवृक्षेण कोटरस्थेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥ ६ ॥
उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे शत्रुविग्रहे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥ ७ ॥
परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥ ८ ॥
दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम् ॥ ९ ॥
दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ १० ॥
सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः ।
मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते ॥ ११ ॥
अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च ।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत् ॥ १२ ॥

यस्मिन् देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥
मनसा चिन्तितं कर्म वचसा न प्रकाशयेत् ।
अन्यलक्षितकार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते ॥ १४ ॥
ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेषस्तथैव च ।
पुनश्च वर्धते यस्मात् तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥ १५ ॥
यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते ।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव तु ॥ १६ ॥
आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥ १७ ॥
पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ॥ २८ ॥
अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥ १९ ॥
किं तस्य मानुषत्वेन बुद्धिर्यस्य न निर्मला ।
वृद्धापि किं फलं तस्य येन विद्या न सञ्चिता ॥ २० ॥
यदि नित्यमनित्येन निर्मलं मलवाहिना ।
यशः कायेन लभ्येत किं नु लब्धमतः परम् ॥ २१ ॥
दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सितापि मधुरैव ।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम् ॥ २२ ॥

१०। राजभक्तिः ।

सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च ।
अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः ॥ १ ॥
इन्द्रात् प्रभुत्वं तपनात् प्रतापं
क्रोधं यमाद्वैश्रवणाच्च वित्तम् ।

चातुर्वर्ण्यं च निराधिमाद्यं
दाराश्च रक्षा क्रियते शरीरम् ॥ २ ॥
सधर्मयशो राजा समृद्धा संप्रकीर्तितम् ।
तस्मात् स्पर्धयेव यत्नेन परिक्षितम् ॥ ३ ॥
सर्वस्वमपहारायि हि वा नय स्वयम् ।
गृहस्थकर्म सदा प्रजाहिताद्राजा ॥ ४ ॥
यदि प्रणयनाद्य पुरो पश्यति शुभमाम् ।
दण्डानां च विनाशेन न दृश्यते ॥ ५ ॥
अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत् प्रभुः ॥ ६ ॥
बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ ७ ॥
एकमेव दहत्यग्निर्नरं दुरुपसर्पिणम् ।
कुलं दहति राजाग्निः सपशुद्रव्यसञ्चयम् ॥ ८ ॥

११। अराजकं राष्ट्रम्।

(रामायण—अयोध्याकाण्ड—सर्ग ६७)

इक्ष्वाकूणामिहाद्यैव कश्चिद्राजा विधीयताम् ।
अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात् ॥ १ ॥
नाराजके जनपदे बीजमुष्टिः प्रकीर्यते ।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे ॥ २ ॥
अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके ।
इदमत्याहितं चान्यत् कुतः सत्यमराजके ॥ ३ ॥
नाराजके जनपदे धनवन्तः सुरक्षिताः ।
शेरते विवृतद्वाराः कृषिगोरक्षजीविनः ॥ ४ ॥
नाराजके जनपदे बद्धघण्टा विषाणिनः ।
अटन्ति राजमार्गेषु कुञ्जराः षष्टिहायनाः ॥ ५ ॥

नाराजके जनपदे वणिजो दूरगामिनः ।
गच्छन्ति क्षेममध्वानं बहुपण्यसमाचिताः ॥ ६ ॥
यथा ह्यनुदका नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम् ।
अगोपाला यथा गावस्तथा राष्ट्रमराजकम् ॥ ७ ॥
नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित् ।
मत्स्या इव जना नित्यं भक्षयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥
राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम् ।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ९ ॥
यमो वैश्रवणः शक्रो वरुणश्च महाबलः ।
विशिष्यन्ते नरेन्द्रेण वृत्तेन महता ततः ॥ १० ॥
अहो तम इवेदं स्यान्न प्रज्ञायेत किंचन ।
राजा चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुनी ॥ ११ ॥

---

१२ । पञ्चवटी ।

(रामायण—अरण्यकाण्ड—सर्ग १५)

ततः पञ्चवटीं गत्वा नानाव्यालमृगायुताम् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो भ्रातरं दीप्ततेजसम् ॥ १ ॥
आगताः स्म यथोद्दिष्टं यं देशं मुनिरब्रवीत् ।
अयं पञ्चवटीदेशः सौम्य पुष्पितकाननः ॥ २ ॥
सर्वतश्चार्यतां दृष्टिः कानने निपुणो ह्यसि ।
आश्रमः कतरस्मिन्नो देशे भवति संमतः ॥ ३ ॥
रमते यत्र वैदेही त्वमहं चैव लक्ष्मण ।
तादृशो दृश्यतां देशः संनिकृष्टजलाशयः ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः संयताञ्जलिः ।
सीतासमक्षं काकुत्स्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

परवानस्मि काकुत्स्थ त्वयि वर्षशतं स्थिते।
स्वयं तु रुचिरे देशे क्रियतामिति मां वद॥ ६॥
सुप्रीतस्तेन वाक्येन लक्ष्मणस्य महाद्युतिः।
विमृशन् रोचयामास देशं सर्वगुणान्वितम्॥ ७॥
स तं रुचिरमाक्रम्य देशमाश्रमकर्मणि।
हस्ते गृहीत्वा हस्तेन रामः सौमित्रिमब्रवीत्॥ ८॥
अयं देशः समः श्रीमान् पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः।
इहाश्रमपदं रम्यं यथावत् कर्तुमर्हसि॥ ९॥
इयमादित्यसङ्काशैः पद्मैः सुरभिगन्धिभिः।
अदूरे दृश्यते रम्या पद्मिनी पद्मशोभिता॥ १०॥
यथाख्यातमगस्त्येन मुनिना भावितात्मना।
इयं गोदावरी रम्या पुष्पितैस्तरुभिर्वृता॥ ११॥
हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता।
नातिदूरे न चासन्ने मृगयूथनिपीडिता॥ १२॥
मयूरनादिता रम्याः प्रांशवो बहुकन्दराः।
दृश्यन्ते गिरयः सौम्य फुल्लैस्तरुभिरावृता॥ १३॥
इदं पुण्यमिदं रम्यमिदं बहुमृगद्विजम्।
इह वत्स्याम सौमित्रे सार्धमेतेन पक्षिणा॥ १४॥
एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणः परवीरहा।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः॥ १५॥

१३। श्रीनिवासस्थानानि।

(महाभारत—अनुशासनपर्व—११ अध्याय)

युधिष्ठिर उवाच।

कीदृशे पुरुषे तात स्त्रीषु वा भरतर्षभ।
श्री पद्मा वसते नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

भीष्म उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।
रुक्मिण्यो देवकीपुत्रसन्निधौ पर्यपृच्छत ॥ २ ॥
नारायणस्याङ्कगतां ज्वलन्तीं दृष्ट्वा श्रियं पद्मसमानपक्ष्माम् ।
कौतूहलाद्विस्मितचारुनेत्रा पप्रच्छ माता मकरध्वजस्य ॥ ३ ॥
कानीह भूतान्युपसेवसे त्वं सन्तिष्ठसी कानि च सेवसे त्वम् ।
तानि त्रिलोकेश्वरभूतकान्ते तत्त्वेन मे ब्रूहि महर्षिकन्ये ॥ ४ ॥
एवं तदा श्रीरभिभाषमाणा देव्या समक्षं गरुडध्वजस्य ।
उवाच वाक्यं मधुराभिधानं मनोहरं चन्द्रमुखी प्रसन्ना ॥ ५ ॥

श्रीरुवाच ।

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने ।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे ॥ ६ ॥
नाकर्मशीले पुरुषे वसामि न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने ।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवृत्ते न चाविनीते न गुरुष्वसूयके ॥ ७ ॥
ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमाना क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र ।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु नरेषु संगुप्तमनोरथेषु ॥ ८ ॥
स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते ।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे क्षान्तासु दान्तासु तथाबलासु ॥ ९ ॥
स्वाध्यायनित्येषु सदा द्विजेषु क्षत्रे च धर्माभिरते सदैव ।
वैश्ये च सत्याभिरते वसामि शूद्रे च शुश्रूषणनित्ययुक्ते ॥ १० ॥

---

१४ । दम्पतीस्नेह ।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय १४४)

भीष्म उवाच ।

अथ वृक्षस्य शाखाया विहङ्गः ससुहृज्जनः ।
दीर्घकालोषितो राजंस्तत्र चित्रतनूरुहः ॥ १ ॥

तस्य कल्याणी भार्या धर्मिष्ठा पतिव्रता ।
प्राप्तो न रजनीं दृष्ट्वा स पश्चात् पर्यतप्यत ॥ २ ॥
यावत्तव सहवासाय प्रागच्छति मे प्रिया ।
किं नु तत्कारणं येन साद्यापि न निवर्तते ॥ ३ ॥
यदि नास्ति भविष्यामि प्रियायाः सम कानि ।
मया विरहितं दीनं शून्यमद्य गृहं मम ॥ ४ ॥
पुत्रपौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः ।
भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत् ॥ ५ ॥
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम् ॥ ६ ॥
यदि सा रक्तनेत्रान्ता निदाघा मधुरस्वरा ।
यस्य भार्येति मे कान्ता न कार्यं जायितेन मे ॥ ७ ॥
न भुङ्क्ते मय्यभुक्ते या नाश्नाति स्नाति दुःखिता ।
नातिष्ठत्युपविष्टे न शेते च शयिते मयि ॥ ८ ॥
हृष्टे भवति सा हृष्टा दुःखिते मयि दुःखिता ।
प्रोषिते दीनवदना क्रुद्धे च प्रियवादिनी ॥ ९ ॥
पतिधर्मरता साध्वी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
यस्य स्यादीदृशी भार्या धन्यः स पुरुषो भुवि ॥ १० ॥
सा हि शान्ता क्षुधार्ता च जानीते मां तपस्विनी ।
अनुरक्ता स्थिरा चैव भक्ता स्निग्धा यशस्विनी ॥ ११ ॥
वृक्षमूलेऽपि दयिता यस्य तिष्ठति तद् गृहम् ।
प्रासादोऽपि तया हीनः कान्तार इति निश्चितम् ॥ १२ ॥
धर्मार्थकामकार्येषु भार्या पुंसः सहायिनी ।
विदेशगमने चास्य सैव विश्वासकारिका ॥ १३ ॥
भार्या हि परमो ह्यर्थः पुरुषस्येह पठ्यते ।
असहायस्य लोकेऽस्मिँल्लोकयात्रासहायिनी ॥ १४ ॥

तथा रोगाभिभूतस्य नित्यं कृच्छ्रगतस्य च ।
नास्ति भार्यासमं मित्रं नरस्यार्तस्य भेषजम् ॥ १५ ॥
नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः ।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे ॥ १६ ॥
यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥ १७ ॥

भीष्म उवाच ।

एवं विलपतस्तस्य द्विजस्यार्तस्य वै सदा ।
गृहीता शकुनिघ्नेन भार्या शुश्राव भारती ॥ १८ ॥

कपोत्युवाच ।

अहोऽतीव सुभाग्याऽहं यस्या मे दयितः पतिः ।
असतो वा सतो वापि गुणानेव प्रभाषते ॥१९॥
सा हि स्त्रीत्वं गन्तव्या यस्या भर्ता तु तुष्यति ।
तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
अग्निसाक्षिकमस्येतत् भर्ता हि दैवतं परम् ॥ २० ॥
दावाग्निनेव निर्दग्धा सपुष्पस्तवका लता ।
भस्मीभवति सा नारी यस्या भर्ता न तुष्यति ॥ २१ ॥

---

१५ । संयम ।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय २२१)

भीष्म उवाच ।

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १ ॥
तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि पाण्डव ।
तदिन्द्रियाणि संयम्य तपो भवति नान्यथा ॥ २ ॥

१८। आत्मज्ञानम्—कर्त्तव्यज्ञानम्।

(महाभारत—शान्तिपर्व—अध्याय ३२८)

किं ते धनेन किं बन्धुभिस्ते किं ते पुत्रैः पुत्रक यो मरिष्यसि।
आत्मानमन्विच्छ गुहां प्रविष्टं पितामहास्ते क्व गताश्च सर्वे ॥ १ ॥

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम् ॥ २ ॥

अनुगम्य विनाशान्ते निवर्तन्ते हि बान्धवाः।
अग्नौ प्रक्षिप्य पुरुषं ज्ञातयः सुहृदस्तथा ॥ ३ ॥

एवमभ्याहते लोके कालेनोपनिपीडिते।
सुमहद् धैर्यमालम्ब्य धर्मं सर्वात्मना कुरु ॥ ४ ॥

अथेमं दर्शनोपायं सम्यग्यो वेत्ति मानवः।
सम्यक् स्वधर्मं कृत्वेह परत्र सुखमश्नुते ॥ ५ ॥

न देहभेदे मरणं विजानतां न च प्रणाशः स्वनुपालिते पथि।
धर्मं हि यो वर्धयते स पण्डितो य एव धर्माच्च्यवते स दह्यते ॥ ६ ॥

यस्तु भोगान् परित्यज्य शरीरेण तपश्चरेत्।
न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तन्मे बहुमतं फलम् ॥ ७ ॥

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
अनागतान्यतीतानि कस्य ते कस्य वा वयम् ॥ ८ ॥

अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।
न तं पश्यामि यस्याहं तं न पश्यामि यो मम ॥ ९ ॥

न तेषां भवता कार्यं न कार्यं तव तैरपि।
स्वकृतैस्तानि जातानि भवांश्चैव गमिष्यति ॥ १० ॥

इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवतामपि नश्यति ॥ ११ ॥

सञ्चिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः।
ततः क्लेशमवाप्नोति परत्रेह तथैव च ॥ १२ ॥

पश्यसि छिन्नभूतं हि जीवलोकं स्वकर्मणा ।
तत् कुरुष्व तथा पुत्र कृत्स्नं यत् समुदाहृतम् ॥ १३ ॥
तदेतत् सम्प्रहृष्यैव कर्मभूमिं प्रपश्यत ।
शुभान्याचरितव्यानि परलोकमभीप्सता ॥ १४ ॥
धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते
बलेन किं येन रिपुं न बाधते ।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत्
किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी ॥ १५ ॥

---

१६ । अजविलापः ।

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ १ ॥
कुसुमान्यपि गात्रसङ्गमात् प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत् प्रहरिष्यतो विधेः ॥ २ ॥
अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥ ३ ॥
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥ ४ ॥
अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥ ५ ॥
मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ॥ ६ ॥
शशिनं पुनरेति शर्वरी दयिता द्वन्द्वचरं पतत्रिणम् ।
इति तौ विरहान्तरक्षमौ कथमत्यन्तगता न मां दहेः ॥ ७ ॥
नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम् ।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम् ॥ ८ ॥

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम् ।
पृषतीषु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलतासु विभ्रमाः ॥ ८ ॥
त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया ।
विरहे तव मे गुरुव्यथं हृदयं न त्ववलम्बितुं क्षमाः ॥ १० ॥
धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः ।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे ॥ ११ ॥
गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥ १२ ॥

---

२० । प्रकीर्णानि सुभाषितपद्यानि ।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥ १ ॥
यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ॥ २ ॥
धनैर्निष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति
धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके
धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ॥ ३ ॥
वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयः पक्वफलाम्बुभोजनम् ।
तृणानि शय्या वसनं च वल्कलं
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ ४ ॥

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥ ५ ॥
निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ६ ॥
दानाय लक्ष्मीः सुकृताय विद्या
चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसि यस्य
वन्द्यस्त्रिलोकीतिलकः स एव ॥ ७ ॥
तापं हन्ति सुखं सूते सौभाग्यं कुरुते यशः ।
अमृतस्य प्रकारोऽयं दुर्लभः साधुसंगमः ॥ ८ ॥
रसायनमयी शीता परमानन्ददायिनी ।
नानन्दयति कं नाम साधुसङ्गतिचन्द्रिका ॥ ९ ॥
यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगङ्गया ।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ १० ॥
पात्रं पवित्रयति नैव गुणान् क्षिणोति
स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते ।
दोषावसानरुचिरश्चलतां न धत्ते
सत्संगमः सुकृतसद्मनि कोऽपि दीपः ॥ ११ ॥
उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १२ ॥
प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।

उदकममृतकल्पं ते ददुर्जीवितान्त
न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥ १३ ॥
उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
विकसति यदि पद्मं पर्वतानां शिखाग्रे ।
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्नि—
र्न चलति खलु वाक्यं सज्जनानां कदाचित् ॥ १४ ॥
परीक्षका यत्र न सन्ति देशे
नार्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि
न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम् ॥ १५ ॥
अतिपरिचयादवज्ञा सन्ततगमनादनादरो भवति ।
मलये भिल्लपुरन्ध्री चन्दनतरुकाष्ठमिन्धनं कुरुते ॥ १६ ॥
गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति पण्डिताः ॥ १७ ॥
दिनमेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना ।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता ॥ १८ ॥
गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम् ।
काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः ॥ १९ ॥
नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा ।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः ॥ २० ॥
काव्यान्यपि यदीमानि[1] व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत् ।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥ २१ ॥
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।

१। अर्थात् अतिमलिनान्यपि कविता ।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥ २२ ॥
केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजाः ।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥ २३ ॥
साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ २४ ॥
इतरतापशतानि यथेच्छया
वितर तानि सहे चतुरानन ।
अरसिकेषु रसाभिनिवेदनं
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥ २५ ॥
अन्धाः सर्वे बधिरलोकनिवासभूमौ
किं कूजितेन ननु कोकिल कोमलेन ।
एते हि दैवहतकास्त्वदभिन्नवर्णं
त्वां काकमेव कलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥ २६ ॥
सपदि विलयमेतु राज्यलक्ष्मी—
रुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः ।
अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो
मम तु मनो न मनागपैतु धर्मात् ॥ २७ ॥
भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै—
र्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभि—
स्स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ २८ ॥

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्धपरार्धभिन्ना
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥ २९॥

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥ ३०॥

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनान्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां लक्षणम्॥ ३१॥

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥ ३२॥

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद्भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले—
ष्वेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥ ३३॥

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम्—
मसन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्॥ ३४॥

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।

अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभिभवसारा परकथा
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ ३५ ॥
यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव पुरुषैः कार्यः प्रयत्नो महान्
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ ३६ ॥
गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥ ३७ ॥
चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः ।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः
संमीलने नयनयोर्न हि किंचिदस्ति ॥ ३८ ॥
झटिति प्रविश गेहं मा बहिस्तिष्ठ कान्ते
ग्रहणसमयवेला वर्तते शीतरश्मेः ।
अयि सुविमलकान्तिं प्रेक्ष्य नूनं स राहु-
र्ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ३९ ॥
पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासा ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥ ४०
काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥
यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ४२ ॥

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ ४३ ॥
पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ४४ ॥
अनुमतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः ।
परभृतविरुतं कलं यथा प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम् ॥ ४५ ॥
अभिजनवतो भर्तुः श्लाघ्ये स्थिता गृहिणीपदे
विभवगुरुभिः कृत्यैस्तस्य प्रतिक्षणमाकुला ।
तनयमचिरात् प्राचीवार्कं प्रसूय च पावनं
मम विरहजां न त्वं वत्से शुचं गणयिष्यसि ॥ ४६ ॥

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ ४७ ॥

विरलविरलाः स्थूलास्ताराः कलाविव सज्जनाः
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः ।
अपसरति च ध्वान्तं चित्तात् सतामिव दुर्जनो
व्रजति च निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमिनामिव ॥ ४८ ॥
अभूत् पिङ्गा प्राची रसपतिरिव प्राप्य कनकं
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।
क्षणात् क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः ॥ ४९ ॥

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥ ५० ॥

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि
मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि ।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात् ॥ ५१ ॥

नन्वात्मान बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत् कल्याणि त्वमपि सुतरा मा गम कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्त सुखमुपनत दु खमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ५२ ॥

श्यामास्वङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपात
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ ५३ ॥

घृष्ट घृष्ट पुनरपि पुनश्चन्दन चारुगन्ध
छिन्न छिन्न पुनरपि पुन स्वादु चैवेक्षुकाण्डम् ।
दग्ध दग्ध पुनरपि पुन काञ्चन कान्तवर्ण
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ॥ ५४ ॥

घटो जन्मस्थान मृगपरिजनो भूर्जवसन
वने वास कन्दैरशनमपि दु स्थ वपुरिदम् ।
अगस्त्य पाथोधि यदकृत कराम्भोजकुहरे
क्रियासिद्धि सत्त्वे भवति महता नोपकरणे ॥ ५५ ॥

दूरादर्थ घटयति नव दूरतश्चापशब्द
त्यक्त्वा भूयो भवति निरत सत्सभारञ्जनेषु ।

मन्दं मन्दं रचयति पदं श्लोकचित्तानुकम्पा
कामं मत्तो कविरिव सदा खेदभारैरसुप्तः ॥ ५६ ॥

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह गुरुं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिरं मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशाने शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः ॥ ५७ ॥

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्णविभवः ।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु—
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ ५८ ॥

यत्र नास्ति दधिमन्थनघोषो यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि ।
यत्र नास्ति गुरुगौरवपूजा तानि किं बत गृहाणि वनानि ॥५९॥

राम —सौमित्रे ननु सेव्यतां तरुतलं चण्डांशुरुज्जृम्भते
लक्ष्मण —चण्डांशोर्निशि का कथा रघुपते चन्द्रोऽयमुन्मीलति ।
राम — वत्सैतद्विदितं कथं नु भवता
लक्ष्मण — धत्ते कुरङ्गं यतः
राम —क्वासि प्रेयसि हा कुरङ्गनयने चन्द्रानने जानकि ॥६०॥

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिश्वासपवनः ।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् ससखि विपरीतं जगदिदम् ॥ ६१ ॥

कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम् ।
जानात्येकः शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतच्चिरमनुगतं तत् प्रिये किं करोमि ॥ ६२ ॥

वाहारी मन्मथग्रस्ता प्रमथ क्षयदूषिता ।
पयोधीपकृतामात्यौ भाणमङ्गं सुभाषितम् ॥ ६३ ॥

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिराद्दृश्यसे
का वार्ता ननु दुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।
एवं ये समुपागतान् प्रणयिनः प्रह्लादयन्त्यादरात्
तेषां युक्तमशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तुं सदा ॥ ६४ ॥

मा गा इत्यपमङ्गलं व्रज पुनः स्नेहेन हीनं वचः
तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरु ह्येषाप्युदासीनता ।
नो जीवामि त्वया विनेति वचनं संभाव्यते वा न वा
तन्मां शिक्षय नाथ यत् समुचितं वाच्यं त्वयि प्रस्थिते ॥ ६५ ॥

मा भूत् सज्जनसङ्गो यदि सङ्गो मा पुनः स्नेहः ।
स्नेहो यदि मा विरहो यदि विरहो मा पुनश्च जीवितम् ॥ ६६ ॥

बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि ।
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥ ६७ ॥

पत्नी कुप्यति तात मूर्ध्नि विधृता गङ्गेयमुत्सृज्यतां
विद्वन् षण्मुख सततं मयि रता तस्या गतिं वा वद ।
कोपाटोपवशाद्विरुद्धवदनः प्रत्युत्तरं दत्तवान्
अम्भोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारांनिधिर्वारिधिः ॥ ६८ ॥

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥ ६९ ॥

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥ ७० ॥

यस्या न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान् न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात् ।

पीतोऽम्भो मलयानिलो यदि करैस्पृष्टवानद्रुमा
  स्तेयं शक्रदिगोष्ठीकधनिका भजति विभाव्यताम् ॥ ७१ ॥
  रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता—
    मम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।
  केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति धरणीं गर्जन्ति केचिद्वृथा
    यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥७२॥
यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून् मृषा
  नैषां गर्वगिरः शृणोषि न पुनः प्रत्याशया धावसि ।
काले बालतृणानि खादसि सुखं निद्रासि निद्रागमे
  तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किं नाम तप्तं तपः ॥ ७३ ॥
आयातः समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
  स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु—
  र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥ ७४ ॥
    शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
    शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ७५ ॥

---

२१ । स्तुतिपद्यानि ।

करबदरसदृशमखिलं भुवनतलं यत्प्रसादतः कवयः ।
पश्यन्ति सूक्ष्ममतयः सा जयति सरस्वती देवी ॥ १ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ २ ॥

शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमपि वरं दक्षिणाङ्गे वहन्तम्।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितं चाङ्कुशं वामभागे
नानालंकारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं भजामि॥ ४॥
रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥ ५॥
असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥ ६॥
महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥ ७॥
यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै—
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥ ८॥
रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥ ९॥
इतो न किंचित् परतो न किंचिद्
यतो यतो यामि ततो न किंचित्।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित्
स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित्॥ १०॥

उद्धृत गद्यपद्योंपर टिप्पणी।

१।—वन दुर्गे (दुर्ग=स्थान)—वनभूमिमें। चटकदम्पती—(चटक—एक पक्षी+दम्पती, द्वन्द्व स०, जाया च पतिश्च जायापती जम्पती दम्पती वा)—चटक पक्षियोंका जोड़ा। निलय—स्थान। गच्छता कालेन—समयके बीतनेपर। घर्मार्त (घर्मेण आर्त, आर्त=आ+ऋत, ऋ का भूत कृदन्त आ+ऋ=आर् ६७ पृष्ठमें टिप्पणी देखो)—गर्मीसे पीड़ित। मदोत्कर्षात् (उत्कर्ष=आधिक्यम् अधिकता)—मदकी अधिकतासे। पुष्करम् सूंड। विशीर्णानि (वि+शॄ—क्र्यादि पर का भूतकृदन्त)—तोड़े। आयु शेषतया=आयु शेषौ ययोस्तौ आयु शेषौ तयोर्भाव आयु शेषता तया—क्योंकि आयु समाप्त न हुई थी, आयुके अवशेष होनेसे। चटकौ =चटकश्च चटका च—एकशेष समास। पितरौ तथा श्वशुरौ ये दूसरे प्रकार समासके उदाहरण हैं। मातापितरौ तथा श्वश्रूश्वशुरौ ये पितरौ तथा श्वशुरौ के वैकल्पिक रूप हैं। कदाचित्—किसी प्रकार। विशेष—भेद। कोष्णाश्रु (कोष्णम् अश्रु कर्म)—कुछ गरम आंसू। (मध्यमपदलोपी समा० ईषत् उष्णम् कोष्णम्)। गजापसदस्य (अपसद पु० नीच, समासके अन्तमें इसका अर्थ 'अधम' 'निन्दित' होता है।)—नीच गजका। अन्यजात्युत्पन्न दूसरी जातिमें उत्पन्न। विधेयज्ञ (उपपदसमास विधेयं जानातीति विधेयज्ञः)—जो यह जानता है कि क्या करना चाहिये। सुहृद्वता—मित्रकी तरह। उत्तरपक्षस्य भूतप्रेत समाप्त। अभी इसका अर्थ स्पष्ट होता है। स्वरूपार्थोऽपि भूतप्रेत उत्तरपक्षस्य—इस प्रकार, समीपमानीत्—समीपप्राप्तिय। स्फोटनम् फोड़ना। मतिशालिभि—मत्या शालन्ते शोभन्ते ते मतिशालिनस्तैः। उन लोगोंसे जो बुद्धिसे चमकते हैं। न विकल्पन्ते—सन्देह नहीं होते, पक्का होते हैं। नया—नीतिमार्ग। कियन्मात्र (कियती मात्रा यस्य स)—कितने गिनतीका। छोटा बेचारा। मध्याह्नसमये—मध्याह्न मध्याह्न।

इसका तत्पुरुषसमास या बहुव्रीहिसमास करते हैं। (न्हः पर्तैक दशमस्थानतत्कालाद् रवि ।।३।६।८०। बाद् समासान्तः । [illegible] इत्यादि पूर्व होनेपर रात्रि शब्दमें समासान्त अच् प्रत्यय होता है। इसलिए रात्रिका रात्र होता है। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्र (द्वन्द्व), रात्र पूर्व पूर्वरात्र, मध्यम: रात्रेः रात्रिस मध्यरात्रः। इसीप्रकार पुण्याह, सुपा रात्राः समाहारो द्विरात्रम्, अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्र (प्रादिसमास)। 'अह्नो ऽह्न एतेभ्यः' ५।४।८८। सर्व इत्यादि पूर्व होनेपर अहन् को अह्न होता है। सर्वाह्न, पूर्वाह्न। परन्तु यदि सङ्ख्यावाचक या पुण्य, सुदिन पूर्व हों तो अहन् को अह्न होता है, अह् भी होता अव्याहम् (पर न [illegible] अह्नको न [illegible]—[illegible] ग्रहण नहीं करता है।) सुघाहश्यः अनादार: [illegible]। [illegible] वन, ये सब [illegible] एवं तथा पुण्यपुण्य पुलिङ्गमें होते हैं। (रात्राह्नाहाः पुंसि' २।४।२९।)। पुण्य सुदिनाभ्यामह्नः क्लीबता—पुण्याहम्। सुदिनाहम्। [illegible]—[illegible]। यज्ञ—क्लीº, [illegible]। वनचितरूह। वैदिकोंसे वर्जित। ग्रास—समु—[illegible]—[illegible]। समवाय—समूह। पञ्चास यावति = [illegible] पांच सदर्थ मिलेसा। समूक—मेंढक।

२।—अवनि ना—पृथ्वी। [illegible]—[illegible]—[illegible] याग। वष्टु०, क्रियाविशे०, [illegible] समसि [illegible] प्रथम पु एकवचन, [illegible] हे हूर्ं। वैमत्र = वैमपु अर, सम० तत्पु०, एस [illegible] यज्ञोंका निषेध है। वैमानो अर तथा वैवदेनु अर ये निधारणयज्ञों तथा निधारणयज्ञोंके उदाहरण हैं। वैमाना अर में समास नहीं हो सकता। न निर्धारणे २।२।१०।—निर्धारण या षष्ठी का न [illegible]। नन्दिनी—लड़की। [illegible]—[illegible]। [illegible]—विवाह किया। [illegible]—[illegible], समानपुत्र पक्ष स, समानक स्थानमें स हुआ है। प्रथ्यच्यम्—[illegible]। पोत—नाव। अभिपरस्य—[illegible], [illegible], [illegible] ये पद २।१।९८ स्या धातुसे आत्मनेपद होता है। समवधानिय का २।३।२१। कल्लोल—बड़ा तरङ्ग।

मालिका—समूह। धात्रीभावेन कल्पिताहम्—मैं जो उसकी धाई बनाई गयी थी। फलकम्—पटिया। परां काष्ठामधिगता—जो सीमातक पहुंची थी। विचेतना—विगता चेतना यस्याः सा। प्रच्छायशीतले—प्रकृष्टा छाया यस्य तत् प्रच्छायं प्रच्छायं च तत् शीतलं च प्रच्छायशीतलं तस्मिन् (विशेषणसमास, कर्म० स०)। जनपदगामिनम् (जनपदं गच्छतीति जनपदगामी तम्)—गांवकी ओर जानेवाला। वारण—बाण। प्रासवत्—भाला। गुल्मक—ग्राम—समूह। कण्ठीरव—सिंह (कण्ठे रवो यस्य)। आक्रन्दति—आक्रन्दत् की सप्तमीका एकवचन। आक्रन्दत् = आ + क्रन्द्—जु० पर का वर्तमान कृदन्त। दाप्, दद, चकास्, जागृ, तथा जुहोत्यादि गणके धातुओंसे वर्तमान कृदन्तमें—जिसमें प्रथम पुरुषके बहुवचनमें अनुनासिक नहीं लगता—पुल्लिङ्गके सर्वनामस्थानमें अनुनासिक नहीं लगता, तथा नपुंसकलिङ्गके स, हि, तथा सम्बोधनके बहुवचनमें विकल्पसे अनुनासिक लगता है—ददत्, ददतौ, ददतः ददतम् ददतौ। न० प्र० ददत्, ददती, ददति ददन्ति। दन्तावल—हाथी। (वल = मत्वर्थीय प्रत्यय। अन्तिम स्वरको दीर्घ होता है—जैसे कृषीवल—खेतिहर)। समासीनम् (समासीन—सम्+आसका वर्तमान कृदन्त है। यह अनियत है)—बैठे हुए। निकट—कटच्—सामीप्य निकटमें प्रत्यय पा०।

३।—क्रियतां समयबन्धः (समय = इकरार) इकरार किया जाय। शुष्कास्यकण्ठ—जिसका गला मुखसे सूख गया था। शुष से धातु क्त पर का भूत कृदन्त है। (शुषो कः ८।२।५१ से क्त के त को क होता है)। सृक्किणी परिलेलिह्यमान—'प्रान्तावोष्ठस्य सृक्किणी' इत्यमरः—सृक्कि = ओठोंके किनारे। परिलेलिह्यमान—बार२ चाटता हुआ। यङन्त लिह धातुका वर्तमान कृदन्त। भ्रमयन्—भ्रम् (भ्रमयते)। यह प्रायः आत्मनेपद है। विश्रामस्थाने—आरामके स्थान।

४।—दायाद—दायमादत्ते इति दायादः—उत्तराधिकारी। अरघट्टघटीम्—घट चक्रके डब्बे, अरैर्घट्यते रच्यते इत्यरघट्टः—कुएंसे पानी

निकालनेका यन्त्र मराठी । आहूतवान् आ+ह्वे (बुला लाना) का कर्तरि भूतकृदन्त । परोक्षभूतमें ह्वे को सम्प्रसारण होता है । जुहाव—अजुहव, भूयात्—आशीः (आशीर्लिङ्), अभूत्—अनद्यतन (लुङ्) । अपह्नुवम्—अपिन्हव । भृता (भृ—अध्यय + या जु० उभ०) । परिहृतत्रपा —परिहृत त्रपा यया सा , जिसने लज्जा छोड़ दी , दृढ इति यावत् । प्रलाप पर —प्रलाप पर प्रधान यस्य सा । रोनेमें लगा हुआ , जो रोता जाता था । कवलितम्—कवलोऽस्य सञ्जात इति ग्रसन बनाया गया । बुभुक्षित —भूखा । सम्मग्न भुज्का भूत कृदन्त । मायां—स्त्री०—दया । सुकृतशपथं मया क्रियतम्—एक प्रकारकी कसम । मैं अपने पुण्योंकी कसम खाता हूँ । यदि मैं झूठ हूँ तो मेरा सब पुण्य नष्ट हो जाय ।

५ ।—भूरि प्रचुर । धननित्य —नित्य = आसक्त , धारव धनमें रहता हुआ । वृष्टि—धारा । क्रोश —क्रुश्—रोना पर—चिल्लाना । प्रत्याचितम्—प्रत्य = प्रत्यागे । धावते=दूधेगा । अर्भक —शिशु । आस्ये—मुखमें । दन्तिका—अङ्गुली । निर्वीकाश —जो मोक्ष देता है निर्वीकाश । पुनान्दानिस्तात् साधु —यह शुद्ध है क्योंकि यह पचोद्यादि गणमें है । निर्वाकाश का बन्दे निर्वेकार होता है ।

६ ।—सकला —(प्रसु०, कलाभि अङ्गे सहिता)—सब । गन्धगज-कुमारकम—गन्धयुक्तो गज गन्धगज (मध्यमपदलोपी स०)—उत्तम गज । युवावस्थामें गजोंके गण्डस्थलसे एक सुगन्ध रस बहता है जिसको मद या दान कहते हैं । कुमारक में 'क' यह प्रत्यय अल्पत्व प्रथम बाल्यत्वका बोध कराता है । वारिबन्धात्—उस स्थानसे जहाँ गज बाँधे जाते हैं । वारि री—गजोंके बाँधनेकी जगह । अनन्ततमनककल कलापम्—१ जिसने सब कलाएँ प्राप्त की , २ जिसमें सब कलायें प्राप्त हुई हैं , पूर्ण चन्द्र । कलाप = समुदाय । सफलताम्—फलेन सहितानि सफलानि तेषां भावस्तता ताम् । एव सम्मिश्रितानाधुना प्राप्ये = अब मेरा आपसे वध ये बड रहे हैं जो कई वर्षोंके इकट्ठा होनेपर आया है । अथवा मैं आपको सोल

इधर वर्ष मास होनेपर बधाई देता हूँ, जो इस प्रकार कई वर्षोंसे इकट्ठा होनेपर आया है। नियन्त्रणम्—प्रतिबन्ध। ललितम् क्रीडा। लल्—इच्छा या चु उभय का भावकृदन्त (भावे क्त)। ललना शब्द, जिसका अर्थ स्त्री है, इसीसे बना हुआ है। त्रिभुवनाश्चर्यमिति कृत्वा—यह सोचकर कि यह तीनों लोकोंमें एक अद्भुत वस्तु है। वज्रम्—इन्द्रका अस्त्र। एवंविध—बहु० एवं विधा प्रकारो यस्य स। परिचारायम्—परिचाराय इव यथा स्यात्तथा (अव्य० तत्पु०, क्रियावि०) अभिरूप—सुन्दर। कुलक्रमागत :—कुलपरम्परासे चला आया हुआ। शिरसि कृत्वा—शिरोधार्य कर। अशनि —वज्र।

१ :—अर्धनायम्—अर्धनाय इव यथा स्यात्तथा। यह बहु० तत्पु० है और आगमम् का क्रियाविशेषण है। यह नित्य समास है। वह समास जिसका विग्रह नहीं हो सकता या जिसके पदोंको अलग कर दिखाया जा नहीं सकता, नित्यसमास है। ('अविग्रहोऽस्वपदविग्रहो वा नित्यसमास')। इस प्रकार खट्वारूढ नित्यसमास है, जिसका अर्थ जाल्म या नीच है। विद्यार्थीको जमीनपर सोना चाहिये। यदि वह खटियापर सोये तो वह खट्वारूढ कहाता है, जिसका अर्थ नीच है। इस शब्दसे प्राचीन समयकी विद्यार्थिशिक्षाका परिचय मिलता है। (अधीन सह नित्यसमासो विशेष्यलिङ्ग च)। अमात्य—अमा सह (राज्ञा) भव अमात्य अमा अव्यय। अमावास्या—अमा सह वसत सूर्याचन्द्रमसौ यस्यां तिथौ सा। केवल च केवल। यह 'इति विस्तरेणाभिधीयसे' से साथ अन्वित है। इति=इति इतो, इस लिये। अनेक कारण हैं जिससे तुमको विस्तारसे कहा जाता है। अभानुभेद्यम्—भानुना भेद्यं भानुभेद्यम् न भानुभेद्यमभानुभेद्यम्। नञ् तत्पु०—(तमस्) को सूर्यसे नष्ट नहीं किया जा सकता। यौवनप्रभवम्—यौवन प्रभव उत्पत्तिस्थान यस्य तत्—यौवनसे उत्पन्न हुआ अज्ञान। साधारण अन्धकारसे यह अन्धकार भिन्न है। साधारण अन्धकार सूर्यसे नष्ट किया जा सकता है, रत्नोंकी कान्तिसे दूर हो सकता है,

दीपांश प्रकाशसे हटाया जा सकता है, और अद्भुत मदिरा नहीं होता। यौवनप्रभव तम उपमेय है, और 'साधारण तम' उपमान है। यहाँ उपमेयाधिक्यपर्यवसायी व्यतिरेक अलङ्कार है। रागमलावलेप = विषयप्रेमकी प्रवृत्तिसे उत्पन्न होनेवाला मल। अक्षालनशोधनीय = जो स्नानकी शुद्धिसे नष्ट नहीं हो सकता। गर्भेश्वरत्वम्—जन्मसिद्ध सार्वभौमता। अविनयाना समवाय = एषामेकैकमप्यविनयानामायतनं समवाय (उनका समूह) अविनयानामायतनमिति किमुत (किं वक्तव्यम्)—अर्थ इनमें प्रत्येक अविनयका स्थान है, तब इनके समुदायकी क्या बात है। इसको कैमुतिक न्याय कहते हैं। अभिनव यौवन यस्य स अभिनवयौवन तस्य भाव अभिनवयौवनत्वम्। इसी प्रकार अप्रतिमरूपत्वम् तथा अमानुषशक्तित्वम् का विग्रह करना चाहिये। कालुष्यम्—मालिन्य, कलुष मटमैला। भवादृश—भवादृश् श क्ष ये तीन रूप हैं। ऐसे २ और शब्दोंके भी तीन रूप होते हैं, जैसे—तादृश् श क्ष। अपगतमल मल—मलम् धूल, मालिन्य, अपवित्र विचार। गभस्ति पु स्त्री—किरण। गभस्तिमत्—सूर्य। कल्याणाभिनिवेशी—कल्याणे अभिनिवेश कल्याणाभिनिवेश, सोऽस्यास्तीति कल्याणाभिनिवेशी, तत्पु० स० को इन् प्रत्यय लगाया गया है।—जो अच्छे विषयकी ओर लगा हुआ है। (अभिनिवेश—भक्ति, गाढ़प्रेम)। राग =१ रंग, २ प्रेम। एकान्तवक्रता=१ अत्यन्त टेढ़ापन, २ अत्यन्त टेढ़े मार्गसे चलना। चञ्चलता=१ फुर्ती, २ अस्थिरता। मोहनशक्ति=१ मोहित करनेकी शक्ति, २ वशीकरण। मद=१ नशा, २ गर्व। नैष्ठुर्यम्—१ कड़ापन, २ क्रूरता। इस प्रकार इन शब्दोंके दो २ अर्थ हैं, और यहाँ अलङ्कार श्लेष है। दो अर्थोंमें एक पारिजातपल्लव इन्दुशकल इत्यादिकी तरफ लगता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीकी तरफ। शकल:—टुकड़ा। कालकूटम्—विष। विरहविनोदचिह्नानि—वियोगको दूर करनेके लक्षण। पलायते—भाग जाय—ज्यों आत्म के पूर्व परा होता है तब परा के र् को ल् हो जाता है। अय् के परस्मैपदम् अयाङ्गमें—अनुष्ठ—आत्म रूप होते हैं।

अभिसन—उन्नत वंश। कामम्—मान लिया, चाहे ऐसा हो। समारोपित—जिसमें उपनयन इत्यादि संस्कार पिताके द्वारा किये गये हैं। तरल—चञ्चल। अप्रतिबुद्ध—जिसको प्रकाश अथवा ज्ञान नहीं हुआ। मुखरीकृतवान्—मुखसे कहलवाया। कृत मयेत्यम्—कृतवानस्मीत्यम्। धातुके अकर्मक होनेपर अर्थमें भेद नहीं होता। गतोऽहं ग्रामम् और गतवानहं ग्रामम् का अर्थ एक ही है—मैं गांव गया। इम्मेव= पुरुषमिव दुर्विनीता लक्ष्मी अलीकरातीति। विजयस्व—वि तथा परा पूर्वक जि धातु आत्मनेपद है। विपराभ्यां जेः १।३।१९॥ सिद्धादेश—वह जिसकी आज्ञा अवश्य सफल हो।

८।—श्रुतिस्मृतिनिर्णीतपरमात्मलक्षणम्—जिसने वेद तथा धर्मशास्त्रसे आत्माका अनुभव किया है। परमहंसपरिव्राट्—संन्यासियोंके चार भेद हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस तथा परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठता दिखाता है। इस प्रकार परमहंस सबसे श्रेष्ठ है। न हि—निश्चय। जब नदीका समीपका तट टलकर खाद्य हो जाता है तो कोई नदी पार करना नहीं चाहता। इसी प्रकार जब यह शरीर पक्षियोंसे खाया जाता वा खाद्य हो जाता है तो कोई इस संसारसे मुक्त होना नहीं चाहता। तो तुम क्यों मुक्त होना चाहते हो? पार और अवार (समीप तथा दूरका तट) से पारावार शब्द बना हुआ है जिसका अर्थ समुद्र है। ग्राह—घड़ियाल। वयम्—न पक्षी। साध्ववादीः—अब तुम ठीक कहते हो। पहिले तुमने झूठ क्यों कहा—'मैं एक विशिष्ट कुलमें ब्राह्मण और ब्रह्मचारी था, और अब मैं परमहंस हूं'। मृषोद्य—असत्य। अन्यदन्यत्र—असो अन्यत्र यहां थ = इस वाक्यका। प्रत्यभ्यजानीः ०—तुमने शरीरको पहिचाना, जिसको कई जातियां वंश तथा संस्कार हैं, जिस प्रकार आत्माको पहिचाना, जिसको न जाति है, न वंश और न संस्कार।

९ —परमानन्दमाधवम्—विष्णु जो परम आनन्दका आत्मा है। मा = लक्ष्मी + धव = पति। सत्—सत्ता या स्थिति, चित्—ज्ञान, और

भावार्थ प्रकाशन कराया जा सकता है, और बहुत सौहार्द नहीं होगा। दोर्दण्डजात तथा उचित है, और 'भावशबल नाम' अलङ्कार है। यहाँ पर मधुलिह्नामपदगामी सात्त्विक भावक र है। दारुणारम्भेष। —निरुपदिष्टो विनुद्धैः सुगम हावभावा नाम। ध्यानवशीकृतम्। —जो कार्य बुद्धिमें भा नहीं हो सकता। संस्कारजम्—तत्सम्बन्धी सार्थकता। प्रतिमपामा ... (मुक्ता बहुल) प्रतिनयनात्मा... (कि भवत्येत्)—जब इसमें पूर्व प्रतिनयका रूप है, तब इसके अनुभवको क्या ध न है। इसका कीर्तिक भाव कहते हैं। प्रतिमय योग्य पद्य स प्रतिनवयीयम तदर्थ प्रतिनवयोगमम्। इसी प्रकार उपलिखकलसु तथा वयासुकूलितम का विग्रह करना चाहिये। कान्तयम्—कान्तिम, कान्त सहरेखा। मधुर —मध ह्र ऽ च य तीन पद हैं। यहाँ २ चार प्रकारके भी तीन पद कहे हैं, जैसे—सात्त्विक। भावतमन मम —मत्तम् पुष्प, कालिम, पर विष्णुविचार। नवनिल्पु पौ —किरण। नवकिञ्चत—पुष्प। कल्याणी मिश्रितो—कल्याणी अभिमिश्रय कल्याणाभिमिश्रम, कौशल्याशति कल्याणी मिश्रितो सात्त्वि० स० को बहु प्रत्यय लगाया गया है।—जो उसमें किसी प्रकार लगा हुआ है। (अभिमिश्रण—मलि, सादृश्य)। रागः=१ रंग, २ प्रेम। उत्कलितजता=१ प्रथम उद्गम, २ ... मानसिक चलना। चञ्चलता=१ फुर्ती, २ अधीरता। मादनशक्ति=१ मोहित करनेकी शक्ति, २ वशीकरण। मद=१ नशा, २ गर्व। भेदपद—१ पछतावा, २ क्रोध। इस प्रकार इस श्लोकमें २ अर्थ हैं, और यहाँ अलङ्कार सौम्य है। इन अर्थोंमें एक पारिजातपुष्प इन्दुशकल इत्यादि तरफ लगाता है और दूसरा अर्थ लक्ष्मीकी तरफ। अकाल :—दुष्कर। कालकूटम्—विष। विरहविनोदनानि—वियोगको दूर करनेका साधन। पलायते—जब अर्थ—क्या आरम्भ का पूर्व पता जाता है, तब पता कैसे दूर हो जाता है। अथ च परासुसार्थ समास्तके—बहुत—अत्र कम होते हैं।

अभिजन—उन्नत वंश। कामम्—मान लिया, चाहे ऐसा हो। समारोपित—जिसमें उपनयन इत्यादि संस्कार पिताके द्वारा किये गये हैं। तरल—चञ्चल। अप्रतिबुद्ध—जिसको प्रकाश अथवा ज्ञान नहीं हुआ। मुखरीकृतवान्—मुझसे कहलवाया। कृत समर्थम्—कृतवानहमिदम्। धातुके सकर्मक होनेपर अर्थमें भेद नहीं होता। गतोऽहं ग्रामम् और गतवानहं ग्रामम् का अर्थ एक ही है—मैं गांव गया। इन्दोः—पुरुषमिव दृष्टिनीता लक्ष्मी वशीकरोतीति। विजयस्व—वि तथा परा पूर्वक जि धातु आत्मनेपद है। जिपराभ्यां जेः १।३।१९॥ सिद्धारंभ—वह जिसकी आशा अवश्य सफल हो।

८।—श्रुतिस्मृतिनिरूपितपरमात्मलक्षणम्—जिसने वेद तथा धर्मशास्त्रसे आत्माका अनुभव किया है। परमहंसपरिव्राट्—संन्यासियोंके चार भेद हैं—कुटीचक, बहूदक, हंस तथा परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठता गिनी जाती है। इस प्रकार परमहंस सबसे श्रेष्ठ है। नदि—निश्चय। जब नदीका समीपका तट डूबकर खाक हो जाता है तो कोई नदी पार करना नहीं चाहता। इसी प्रकार जब मृत शरीर पक्षियोंसे खाया जाता या खाक हो जाता है तो कोई इस संसारसे मुक्त होना नहीं चाहता। तो तुम क्यों मुक्त होना चाहते हो? पार और अवार (समीप तथा दूरका तट) से पारावार शब्द बना हुआ है जिसका अर्थ समुद्र है। श्वाद—चण्डाल। श्वपच्—न पची। साध्वयान्नी—अब तुम ठीक कहते हो। पहिले तुमने झूठ क्यों कहा—'मैं एक विशिष्ट कुलमें ब्राह्मण और ब्रह्मचारी था, और अब मैं परमहंस हूं'। मृषोद्य—असत्य। अन्योऽन्वयः—अन्यो अन्वय यस्य स = इस वाक्यका। प्रत्यभ्यज्ञाय०—तुमने शरीरको पहिचाना, जिसको कई जातियां वंश तथा संस्कार है, जिस प्रकार आत्माको पहिचाना, जिसको न जाति है, न वंश, और न संस्कार।

९—परमानन्दमाधवम्—विष्णु जो परम आनन्दका आत्मा मा=लक्ष्मी+धव=पति। सत्—सत्ता या स्थिति, चित्—ज्ञान,

आनन्द (सुख) ये तीन परमात्माका स्वरूप हैं। बक—बगुला। वञ्चयतु—ठगना। कार्यकाल=उनका उपयोगका समय। सिता—सफेद—मिसरी।

१० ।—अर्क—सूर्य। लोकपाल—लोकके पालक। तपन—सूर्य। वैश्रवण—कुबेर। वित्ताप्पत्यो—वित्तपति—धनपति—कुबेर, और अप्पति—जलपति—वरुण। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाण पद प्रत्येक सम्बध्यते—पतिशब्द भी वित्त और अप इन दोनोंके अन्तमें है, वित्त तथा अप दोनोंके साथ सम्बन्धित होता है। अर्थात् इस शब्दका अर्थ है—वित्तपति तथा अप्पति। व्यलीकेन—कपटसे। द्रुतम्—शीघ्र। विद्रुत—भागा हुआ। मनुष्य इति—उसको मनुष्य जानकर। दुष्प्रधर्षिणम्—जो उसके पास कठिनतासे पहुंच सकता है।

११ ।—इक्ष्वाकु—इक्ष्वाकु राजाके वंशका। बीजमुष्टि प्रकीर्यते=मुट्ठीभर बीज नहीं छोड़े जाते, बीज नहीं बोये जाते (क्योंकि फसलके समय चोरोंका डर रहता है—फलकाले लुण्टाकशङ्कया) पितु पुत्रो—यहां=पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानता, और न स्त्री पतिकी आज्ञा मानती है। क्योंकि आज्ञाओंको उल्लङ्घन करनेवालेका दण्ड देनेवाला कोई नहीं। अत्याहितम्—बड़ा भय। 'अत्याहितं महाभीतिः' इत्यमरः। शितादिन—अच्छे दांतवाले। पायस—मधु अन्नम्। तम—कृष्ण। पल्पम्—कीच वन। विभजन्—विभाग करता हुआ। रक्षकम्—जीवन। धर्म च धर्मध्व—धर्म तथा धर्मके प्रवर्तक। यहांका तात्पर्य—यमको केवल पापियोंका दण्ड करनेकी शक्ति है, कुबेरको आश्रय धन देनेकी, इन्द्रको केवल मनुष्योंके रक्षण करनेकी, और वरुणको केवल जलको अपने अधिकारमें ले जानेकी शक्ति है। परन्तु राजामें इन चारों शक्तियोंके रहनेसे यह राजन बड़े चरित्रसे उन सबसे श्रेष्ठ है।

१२ ।—नाना—अन्य भिन्न। ध्यान—मन, धर्म। सन्निकृष्ट—समीप। बद्धाञ्जलि—जो प्रणामके लिये हाथ जोड़े हुए हैं। परवानस्मि—ऋषिने=जब आप मेरे साथ हैं तो मैं चाहे १०० जप तक आपका अधीन हूं,

अर्थात् मैं पापी स्वतन्त्र नहीं । यथार्हम्—यथायोग्य । सदृश—तुल्य । सुरभि—सुन्दर । भाजित्त—पवित्र । चक्रवाक—यह पक्षी रातको अपनी प्रियासे वियुक्त होता है । पत्तिया=घटायुधा । कन्दरा—गुहा । आसन्न—समीप ।

१३ ।—भरतर्षभ—भरतेषु ऋषभस्तत्सम्बुद्धौ भरतर्षभ—भरत वंशीयोंमें श्रेष्ठ । ऋषभ, शार्दूल, सिंह, पुङ्गव इत्यादि समासके उत्तरपदमें सदा प्रयुक्त होते हैं और इनका अर्थ 'श्रेष्ठ' होता है । 'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः ॥ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे—उपमित अर्थात् उपमेयका व्याघ्र इत्यादिके साथ समास होता है, जब साधारण धर्मका वाचक कोई पद न हो । पुरुष व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्र, पर पुरुषो व्याघ्र इव शूर । यहां 'शूर' यह साधारण धर्मवाचक पद है, इसलिये समास नहीं होता । नसोम—ना सोम इव । श्री—सौन्दर्य, शोभाय, इत्यादिकी शोभा । पद्मा—लक्ष्मी । मकरध्वजगन्ध—मधुरगन्धका । प्रगल्भ—ढीठ आदमीमें । दवपरे=देव पर प्रधान वस्तु यस्य स दवपर तस्मिन् देवपरे । उन्नीय—उभार प्रकृतिका । (उत्+हृ—घ आत्मन का भूतकृ) । साङ्कुरितो=जिसमें अंकुर है । अनूयक—नापसन्द करनेवाला । कृतात्मन्—जितेन्द्रिय, पवित्र । ध्यानमध्यनिष्ठ—ध्यानमें लगा हुआ, निष्ठ=निमग्न । अगुप्तमनोरथेषु—उन लोगोंमें जिनके अभिप्राय गुप्त हैं, जिनके मनमें एक और वचनमें दूसरी बात है ।

१४ ।—जनपद—देश । कल्पशाता—कल्प प्रातरदुर्व था—प्रात काल । आकीर्णम् (आ+कृ (किरति) तु पर का भूत कृदन्त)—व्याप्तम्—भरा हुआ । तर्षिनो—प्यासी (मौनता निवासा है) । कृच्छ्रम्—कष्ट । भेषजम्—औषध । शकुनिघ्नेन—शकुनि हन्तीति शकुनिघ्नस्तेन—बहेलियेसे । अग्निसाक्षिकम्—अग्नि साक्षी यस्मिन्कार्य । एतत्—भर्ता हि ३ रस परमेतत् । स्तनक—गुच्छा ।

१५ । — स्फुरति—स्फुर् (स्फुर्ज) का पर यत प्र पु ए व ।

१६।—] विसृजन्—निवास विहार यथोचित स्थित था मैं विमानों मृजात्मात्। शैलोंमें गुहा। परायणम्—पर व ऊपर व उतरें व पावनीति—पुन तथा प्रसादको कारयामास। सर्वं प्रसूद—सरीर स— सर्वं प्रसूत सत्त्व मनोज्ञ प्रसादनीय शरीरात्, प्रसूनम्—पुष्पोंव शिरसि।

१७।—वैकल्यमतम्—विकारम्—वशात् (खुद) मानुषिकमपेक्षितम् ध्यानुचिन्तनमित्यर्थः। दुःख भेदकरम्। दुःखका विकार न करना ही उसका दूर करनेको कहा है। मुमुक्षु—लोभ करे। विषयाद—सद्गि —प्रत्यागमन विषयोंका प्रेम कर आसक्ति है और उसका कारण है यथा तत्त्वज्ञ निवृत्ति—उस आता हुआ रुकना नहीं। अनाचार चला है आता है। यदि—'यथोपपन्न निवृत्ति' पाठ हो तो उसका अर्थ—उस बिना यत्नके नहीं ठहर सकता। अध्यात्मरति—आत्मन्यधिकृत्याध्यात्मम्, अध्यात्मे रतिर्यस्य स। निरामिष—सांसारिक विषयोंसे विमुख पुरुष।

१८।—पुलक—निधपुत्र। शुचौ प्रतिमुक्त—शून्यसे भीतर बैठा हुआ। न हि प्रतीक्षते—क्रमम्—एषु यह देहनको प्रतीक्षा नहीं करता कि इसके जीवनका कार्य समाप्त हुआ या नहीं। न इसमें विज्ञानतार— यह न समझना कि शरीरका परिवर्तन करता है। जब मनुष्य मरता है तो उसका आत्मा दूसरे शरीरमें जानेके लिये प्रथम शरीरको छोड़ता है। न तम किञ्चित् प्राप्य—तेन किञ्चित्त्व प्राप्यमिति न यदि तु प्राप्नोति। हो नहीं प्रकृतार्थ दृढीकुर्वन—जो न प्रकृत अर्थको दृढ़ करता है।

१९।—बाष्पगद्गदम्—बाष्प गद्गद विशीर्णाक्षर यथा स्यात्तथा आंसुओंसे गला रुकनेके कारण लड़खड़ाता उच्चार्य। अय—लोहा। कैव कथा शरीरिषु—चेतन जीवोंकी बात ही क्या है? जब लोहेके समान अचेतन पदार्थ भी गरमीसे मुलायम हो जाता है तो चेतन जीवों की शोकसे सन्ताप तथा मृदु होनेमें आश्चर्य क्या है। हन्त—हाय! प्रहरिष्यतः —मारनेकी चाहनेवाले। अथवा—दूसरे पक्षमें—पक्षान्तर द्योतक। हिम— सेकविपत्ति—जो ओसके गिरनेमें नष्ट होती है। पूर्वनिदर्शनम्—पहिला

उदाहरण। अथवा कल्पित रूप वचसा—इस मालाको ईश्वर रूप बनाया है। अथवा विधेय है। वाक्यमें दो भाग होते हैं—उद्देश्य और विधेय। इनमें विधेय प्रधान रहता है। निश्चायक वचनात्मका लिङ्ग विधेयके अनुसार होता है। विधेयप्राधान्यादेव इति पुंल्लिङ्गता। इसी प्रकार—शैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य। कृतपुण्य—पुण्य कृत कृतपुण्यम्। सुप्सुप समास। शक्रपति—शक्रस्य पति न स्वर्गेन—नामका राजा। भावस्निग्ध—(भाव स्वभाव)—स्वाभाविक। शर्वरी—स्त्री—रात्रि। द्वन्द्वचर—जोड़ोंमें चलनेवाले। चकवा चकई अपनी प्रियाके साथ चलता तथा रात को वियुक्त होता है। पतत्रिणाम—पक्षियोंको। पतत्र डैना। वामोरु—वामौ सुन्दरौ ऊरू जङ्घे यस्याः सा वामोरू तत्सम्बुद्धौ वामोरु। (समासमें स्त्रीलिङ्गमें ऊरु का ऊरू होता है—यदि समासका पूर्वपद उपमानवाचक या संहित, वाम, इनमें कोई हो। जैसे—रम्भोरू, करभोरू)। ('ऊरूत्तरपदादौपम्ये' ४।१।६९॥ 'संहितशफलक्षणवामादेश्च' ४।१।७०॥)। कलम्—अव्यक्त और मधुर। अन्यभृतासु—कोकिलाओंमें। परभृता अन्यभृता (दूसरेसे पोषित) का अर्थ कोयल है। क्योंकि इनके अण्डे कौओंसे बढ़ाये जाते हैं। अत एव परभृत् (पर बिभर्तीति, जो दूसरेका पोषण करता है) का अर्थ कौवा है। वल्लरीषु—व्रततियोंमें। विभ्रमा—विलास। कलाविधौ—कलाओंके करनेमें करुणाविमुखेन—विगतं मुखं यस्य स विमुखः, करुणाया विमुखः करुणाविमुखस्तेन।

२०।—अर्थोष्मणा—धनकी गरमीसे। त्रिलोकीतिलक—त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी (समाहारद्विगु। इसी प्रकार अष्टाध्यायी, चतुःसूत्री, पञ्चवटी) त्रिलोक्यास्तिलक भूषण त्रिलोकीतिलक तीनों लोकका भूषण। शीतसितयशा—शीता चासौ सिता च शीतसिता तथा। शीतल और श्वेत (गङ्गा), दृश्यको आनन्द देनेवाली और निष्कलङ्क।

पात्र पवित्रयति०—दोषम पात्रको मलिन करता है, परन्तु ...
साथ मैत्री पुरुषको पवित्र, तथा

गुण (यती) को नष्ट करता है, पर सज्जनोंकी मित्रता गुणोंको नष्ट नहीं करती, उनको बढ़ाती है। दीपक स्नेह (तेल) को नष्ट करता है सज्जनोंकी मित्रता स्नेह (प्रेम) को नष्ट नहीं करती। दीपक मल (काजल) को उत्पन्न करता है, सज्जनोंकी मित्रता मल अर्थात् दुष्ट विचारोंको उत्पन्न नहीं करती। दीपक दशा (रात्रि) के अन्तमें शोभा नहीं देता सज्जनोंकी मित्रता दोषोंके नष्ट होनेसे शोभा देती है। दीपक चञ्चल है, सज्जनोंकी मैत्री चञ्चल नहीं। इस प्रकार सच्चरित्र पुरुषोंके या सज्जनोंका एक अवर्णनीय दीपक है। यहाँपर सज्जनोंकी मित्रता आधार और दीपकोंसे श्रेष्ठ कही गयी है। इस प्रकार उपमेय उपमानसे श्रेष्ठ होनेके कारण व्यतिरेक अलङ्कारकी ध्वनि निकलती है। पवित्रयति (नामधातु, पवित्रं करोति)।

मार्ष्टि—मृजो शुद्धमपकर्षति न मलनीयम् (नामधातु)।

प्रतिभावत—जिसकी कल्पनाशक्ति है। प्रतिभा—"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता"—नवीन२ कल्पनाओंके उत्पन्न करनेवाली बुद्धि। प्रतिभाके बिना उत्तम काव्य नहीं बन सकता। कस्यचित्—कस्यचिदेव न सर्वस्य।

नाकस्थित—कविता न जाननेसे मनुष्यकी हानि स्वर्ग का दण्ड नहीं होता। सज्जन कहते हैं कि दुष्टकाव्य बनाना साक्षात् मरना (कीर्तिका नाश) अर्थात् पूर्ण अनादर है।

व्याख्यागम्यानि—यदि ऐसी (कृत्रिम सौन्दर्ययुक्त) कविताओंका अर्थ शास्त्रोंके समान केवल टीकाओंके सहारे लग सकता है, तो विषय यह तीक्ष्ण बुद्धि लोगोंके लिये सुन्दर है, परन्तु हाय! मन्दबुद्धिवालोंकी दुर्दशा है। इसका भाव यह है कि कविता स्पष्ट और सुबोध होनी चाहिये। उसके समझनेके लिये शास्त्रोंके समान टीकाओंकी आवश्यकता न होनी चाहिये। दुर्मेधस—"नित्यमसिच् प्रजामेधयोः" ५।४।१२२॥ इस का पाठ देखो। प्रज्ञा तथा मेधान्त बहुव्रीहिसे असिच् समासान्त

प्रत्यय होता है। अर्थात् प्रजा तथा मेधाका प्रजस् तथा मेधस् होता है, यदि उससे पूर्व नञ् (अ या अन्), दुस्, और सु हो। (अप्रजाः सुप्रजाः, अमेधाः इत्यादि)।

मूर्धजाः —मूर्ध्नि जायन्ते इति मूर्धजाः केशाः ।

जीवमान —जीव् धातु पर है, पर यहां ताच्छील्यके अर्थमें चानश है। जीवमान का अर्थ है जिसको जीनेकी आदत है। 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' ।३।२।१२९।—चानश (आन, आत्म का वर्तमान कृदन्त प्रत्यय) ताच्छील्य अर्थमें धातुओंको लगाया जाता है। यह इन अर्थोंमें भी लगाया जाता है जहां वयसका बोध हो या शक्ति मालूम हो। भोगं भुञ्जान —जिसको सुख उपभोग करनेकी आदत है। कवचं बिभ्राण —जो कवच धारण करने योग्य वयस् को पहुंचा। शत्रून्निघ्नान —जिसको शत्रुओंके मारनेकी शक्ति है।

भागधेयम्—भाग एव भागधेयम्—धेय स्वार्थवाचक प्रत्यय है, अर्थात् इसके लगानेसे प्रकृतिके अर्थमें कोई भेद नहीं होता। नाम एव नामधेयम्, बाल एव बालक (क स्वार्थवाचक है), शुक्लमेव शौक्ल्यम्।

इतरतापशतानि—अरसिकोंके सामने रसपूर्ण वचन कहनेके कष्टको छोड़ इतर सैकड़ों कष्ट।

अस्मा सखे०—यह अन्योक्ति या अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण है। जब अप्रस्तुत (अवर्णनीय) की प्रशंसा अर्थात् कथनसे प्रस्तुत (वर्णनीय) की प्रतीति होती है तब अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार होता है। अरसिकोंके सामने रसपूर्ण वचन कहना वैसा है जैसे बहिरोंसे बसे हुए स्थानपर कोकिलकी बोली। कविका अभिप्राय विद्वान्को उपदेश देनेमें है कि वह अरसिकोंके सामने अपनी विद्वत्ता न दिखावे।

दैवहतका —दैव हत निन्द्य येषां ते। यहां निष्ठान्त या भूतकृदन्त उत्तरपदके समान प्रयुक्त हुआ है। आहिताग्नि या अग्न्याहित (जिसने अग्निका आधान किया है) दोनों रूप होते हैं। कलानभिज्ञा —

१ और ७ में या उपमानोपमेय प्रकृत न होकर अप्रकृत हैं, २ में प्रकृत ...
वहाँ जाता।

स्तना इस। समास (श्लेष)—स कृ।

मालाङ्क २०— तीन स्त्रियोंके समान है, दूसरी माला याद करना ...
है—इत्यादि।

त्रिभुवनं ...—उपमा— ...।

यद्यपि समास पहले तीन वाक्योंमें विशेष बात कही गयी है, जिसका समर्थन चतुर्थ वाक्यसे सामान्य किया गया है। इस प्रकार का सामान्य विशेषका, या विशेषसे सामान्यका समर्थन किया जाता है तो अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है।

> उक्ति सामान्यविशेषयोः समर्थनं यत्र विशेषः।
> सामान्यसमर्थन ... अर्थान्तरन्यास ॥

अर्थान्तरन्यास वह अलङ्कार है जिसमें कोई कोई बात कह उसके समर्थनमें अन्य दूसरी बात कहना है।

पूर्वापरार्धभिन्ना—जिसके पूर्वभागमें छाया छोटी २ होती जाती है, उसी प्रकारकी खलोंकी मित्रता होती है, जिनके उत्तर भागमें छाया बड़ी २ होती है, उसी प्रकारकी सज्जनोंकी मित्रता होती है।

सज्जना —उत्तम विचार सज्जनोंको कामवेगवाले। अनुविधयम्—अनुसरणीयम्। दुर्लभम्—दुर्लभम्। असिधाराव्रतम्—असिधाराव्रतमथ च दुष्करम्—तलवारकी धारपर चलनेके समान कठोर। 'एकशयने प्रमदया सह निधाय ... यत्र ब्रह्मचर्येण ... असिधाराव्रतम्'—यह लिखकर टीकाकारकी परिभाषा है।

सम्प्रतिविधि —प्रतिविधि संस्कार करनेके विषयमें घबड़ाहट। ... कथन वाग्भूषणे —समासमें अपने ऊपर किये गये उपकारोंका कहना। अनुरक्षण —... अभाव। निरभिमानता —... अभिमान

उपमान एव सारो यस्या सा—दूसरोंके विषयकी बात निन्दासे शून्य होनी चाहिये ।

लालायते—लार टपकाता है । अमित्रायते अमित्र इव आचरति—इन शब्दोंमें क्यङ् (य) प्रत्यय लगाकर संज्ञाओंसे धातु बनाये गये हैं ।

प्रणयगर्भगिर —प्रणय गर्भे यासां ताः प्रणयगर्भाः, प्रणयगर्भाः गिरः येषां ते प्रणयगर्भगिरः (बहुब्रीहिगर्भो बहुब्रीहि)। वे लोग जिनकी वाणी प्रेमपूर्ण है । चकासन्ति—शोभते हैं । सम्मीलन० यह श्लोक भोज प्रबन्धमें है । पहिले तीन चरणोंमें राजा भोज अपने सुखका बखान करता है और चाहता है कि चतुर्थ चरण बनावें कि इतनेमें एक चोर जो महलमें घुसा था चतुर्थचरणको पूर्ण करता है, जो प्रथम तीन चरणोंके साथ खूब मेल खाता है और इसका तात्पर्य यह है कि आंख मूंदनेपर (मरणके बाद) इनमेंसे कोई चीज नहीं रहती ।

झटिति—शीघ्र । प्रिये ! चन्द्रग्रहण समीप है । तुम्हारा मुखचन्द्र निष्कलङ्क है परन्तु पूर्णचन्द्र सकलङ्क है । इसलिये पूर्णचन्द्रको छोड़ राहु तुम्हारे मुखचन्द्रको पकड़ेगा । अतः शीघ्र भीतर जाओ । यहां व्यतिरेकालङ्कारध्वनि है । अर्थात् व्यतिरेक अलङ्कार जिसमें उपमानसे उपमेयका आधिक्य वर्णित है, व्यङ्ग्य है ।

पुरा—पूर्वकालमें कवियोंकी गिनती होनेपर कनिष्ठिका कालिदासके लिये उपयुक्त हुई । अबतक कालिदासके तुल्य कविके न होनेसे अनामिका नाम सार्थक हुआ । शिवने अपनी अंगुलीसे ब्रह्माका सिर काटा इसलिये यह अपवित्र हुई उसको पवित्र करनेके लिये धार्मिक विधियोंमें अङ्गुलीमें इसको अंगूठी पहिनी जाती है । अङ्गुष्ठ, तर्जनी या प्रदेशिनी मध्यमा, अनामिका, और कनिष्ठिका ये अंगूठेसे लेकर क्रमसे सब अंगुलियोंके नाम हैं ।

यास्यसि—यास्यति—जायगी , न वह गयी न जा रही है । यह जान का है, तो भी मैं अत्यन्त व्याकुल हूं । सदृष्टम्—सम्यक् दृष्टम् । कलुष

शत्रु। वैमुख्यम्—प्रतिकूलता। विसदृशः—विपरीत। इतरथा—विपरीत प्रकार—अर्थात् जिसका व्यवहार उसके विपरीत है। क्वापि—कम कहीं। कुसुमायुध—कुसुमधनु।

दृष्टान्तजीवातु—प्रयोजक कारण है। जीव धातुसे जीवातु शब्द बना है। जीवातुः प्राणेष्वित्। जीवित रहनेके लिए ‘जीवातु’ को प्रयोग करना सार्थक है। दृष्टान्तोऽत्र उदाहरण ज्ञातव्य विषय प्रसङ्गः (वह (उदाहरण) होगी जीवित)।

यथा दि०—याच—कमा, परोहर। चिन्त—निहित।

प्रवासम्—अपना।

रथाभाम्—चमत्कार।

रथपति—यारा।

स्नानस्य०—घरोत्ताल—६ करमसमयण जीत। दह गोशाला प्रशासकी उक्ति है।

रसायनानि—रसा प्रयमानि मादकानि—शुष्का इव उत्पन्न करनेवाले मधुर वस्तु।

दोषाकरोऽपि—दोषाकर —१ रात्रिका उत्पादक, २ दोषनिधि। कुटिल :—१ टेढ़ा, २ अस्वाभाविक। कलङ्कित —१ कलङ्कवाला, २ कलङ्की। मित्रावसानसमये०—१ सूर्यास्तके समय उदय होनेवाला, २ अपने मित्रकी विपत्ति के समय प्रसन्नतासे इस प्रकार अर्थ समझना यहाँ भी श्लेष है। दोषाकर —चन्द्र का उदाहरण है, क्योंकि यहाँ भिन्न भिन्न अर्थ के बोधके लिये पदमें भङ्ग किया गया है, दोषां रात्रिं करोतीति दोषाकर (दोषा+कर) तथा दोषाणामाकर इति दोषाकर (दोष+आकर)। कुटिल इत्यादि अभङ्ग के उदाहरण हैं। अपि से विरोधाभासकी प्रतीति होती है। जहाँ प्रथम देखनेमें विरोध मालूम होता है और पश्चात्में विरोधका परिहार होता है उसको विरोधाभास अलङ्कार कहते हैं।

मन्दारमाल०—३२ वां और ४० वां श्लोक कालिदासके मेघदूतसे लिये गये हैं। एक यक्ष, जो किसी गुनहसे शापसे अपनी प्रियासे विमुक्त हुआ है, मेघके द्वारा अपनी प्रियाके पास सन्देश भेज रहा है।

श्यामालङ्कृत ०—श्यामा—एक लताका नाम। चण्डी—मानिनी स्त्री।
पाथोधि —पाथांसि जलानि दधातीति पाथोधिजलधि समुद्र इत्यर्थ।

दुराश्रय घटयति—१ मन्त्री दूरसे अपने कार्यको सिद्ध करता है, २ कवि अपने शब्दोंसे अनुप्रास निकालता है। अपशब्दम्—१ बहुत शब्द, २ व्याकरणसे अशुद्ध शब्द। पदं रचयति—१ मन्त्री उपायका अवलम्बन करता है, २ कवि पदकी रचना करता है।

यत्र मांसि—यह श्लोक प्राचीनकालको गृहस्थोंका चित्र खड़ा करता है। यह घर घर नहीं है जिसमें दही नहीं मथा जाता, जिसमें बालक नहीं, और जिसमें बड़ोंके प्रति उचित आदर नहीं दिखाया जाता, किन्तु वह वन है।

सौमित्रे—यह श्लोक राम तथा लक्ष्मणके संवादके रूपमें रामकी सीतावियोगकी व्यथाका वर्णन करता है। विरहकी दशामें विरही लोगोंको चन्द्र इत्यादि शीतल पदार्थ गरम मालूम होते हैं। रामको चन्द्रमें सूर्यका भ्रम होता है। लक्ष्मण कहते हैं कि यह चन्द्र है, क्योंकि इसमें कुरङ्ग (मृगाकार कलङ्क) है। इससे रामको मृगनयना सीताका स्मरण होता है और वह सीताको 'कुरङ्गनयने', 'चन्द्रानने' इन पदोंसे सम्बोधन करते हैं।

हिमांशु ०—यह तथा इसके बादका श्लोक सीताके प्रति रामके सन्देशका वर्णन करते हैं, जो सन्देश हनुमान् से कहा गया था।

व्यतिकर —वृत्तान्त। कभी २ इसका अर्थ मिश्रण होता है, जैसे व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च, उत्तररामचरित।

मा गा ०—हे मित्र, मुझे सिखाओ कि तुम्हारे जानेपर मैं तुमसे क्या कहूं। यदि मैं कहूं कि 'मत जाओ', तो यह अमङ्गल होगा, यदि

[illegible]

[illegible] — [illegible] ।

[illegible] है।

[illegible]

[illegible] है। [illegible] है, [illegible] है। [illegible] है कि [illegible] है। [illegible] है — [illegible]

[illegible] परीक्षा प्रयोग [illegible] है।

[illegible] — [illegible] लिए [illegible] है। [illegible] '[illegible]' [illegible]। [illegible] (इस प्रकार [illegible] है)। [illegible] ([illegible])। इसका [illegible] '[illegible]' है।

[illegible] — [illegible]

है कि वे जिस किसीको देखें उसीकी मिथ्यास्तुति न करें। यह स्वाभिमानका उपदेश करता है।

चाटु पठन्ति—चाटु से नामधातु—गीता करते हैं।

यदृच्छया मुकुरीयसे—यह भी अन्योक्तिका उदाहरण है। इससे कवि स्वाभिमानी तथा सन्तोषी पुरुषका वर्णन करता है।

निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषम्=निर्गतः दौवारिकः (द्वारपाल) यस्मात् तत् निर्दौवारिकम्। निर्दया चासौ उक्तिश्च निर्दयोक्तिः। निर्दयोक्त्या अपरुषम् निर्दयोक्त्यपरुषम्—निर्दौवारिकं च तन्निर्दयोक्त्यपरुषं च निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषम्—परमेश्वरके भवनपर कोई द्वारपाल नहीं जो लोगोंको भीतर जानेसे रोके और न वहां कोई ऐसा आदमी है जो कठोर वचन कहे।

श्रीवत्साङ्क—श्रीवत्स चिह्नसे युक्त। श्रीवत्स—वक्षसि रोमावर्त—वक्षःस्थलका केशोंका भंवरा। भागवतमें कथा है कि यह भृगुके लात मारनेका चिह्न है। एकबार भृगुको यह जाननेकी इच्छा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव इनमें सबसे श्रेष्ठ कौन है। भृगु इन तीनोंके यहां गये और उनके सामने अविनय किया। ब्रह्मा तथा शिव उस अविनयको न सह सके। इसके अनन्तर भृगु विष्णुके यहां गये और उनके हृदयपर लात मारी। भगवान् विष्णु कुछ न बोले। यही श्रीवत्स चिह्न है।

हृत्कल्पितम्—मनसे कल्पित। यह श्लोक मानसिक पूजाका वर्णन करता है।

भेदप्रतिपत्ति—भेदका ज्ञान। मैं उनको भिन्न नहीं समझता।

रामो राजमणि०—इस श्लोकमें रामशब्दके सब विभक्तियोंके एक वचनके रूप दिखाई देते हैं।

परिशिष्ट (क)।

कृ धातुके रूप।

कृ—पर (कर्तरि)—करोति (लट्), करोतु (लोट्), अकरोत् (लङ्), कुर्यात् (लिङ्), चकार (लिट्), कर्ता (लुट्), करिष्यति (लृट्) अकरिष्यत् (लृङ्), अकार्षीत् (लुङ्), क्रियात् (आशीर्लिङ्)।

कृ—आत्मने (कर्तरि)—कुरुते, कुरुताम् अकुरुत, कुर्वीत, चक्रे, कर्ता, करिष्यते, अकरिष्यत, अकृत कृषीष्ट।

कृ—(कर्मणि)—क्रियते, क्रियताम्, अक्रियत, क्रियेत, चक्रे कर्ता—कारिता, करिष्यते—कारिष्यते अकरिष्यत—अकारिष्यत, अकारि, कृषीष्ट—कारिषीष्ट।

कृ—णिजन्त तथा सन्नन्तके रूप ३१२ वें पृष्ठमें दिये गये हैं।

कृ—(यङ्) चेक्रीयते इत्यादि, यङ्लुगन्त—चकरीति—चर्कर्ति—चरिकर्ति—चरीकर्ति।

कृदन्त—कुर्वत् (शतृ पर), कुर्वाण (शानच्—आत्म), क्रियमाण (कर्मणि शानच्), कृत (निष्ठा—क्त), कृतवत् (कर्तरि निष्ठा—क्तवतु) करिष्यत् (भविष्यति शतृ), करिष्यमाण (भवि आत्म शानच्), कृत्वा (अव्यय कृदन्त), कार कारम् (णमुल्), कर्तुम् (तुमुन्), चकृवस् (क्वसु), चक्राण (आत्म कानच्), कार्य (ण्यत्), कारित—(णिजन्त से क्त), कारयत् (णिजन्त—शतृ), कारयित्वा, कारयितुम्, चिकीर्षत्—चिकीर्षमाण इत्यादि।

ऊपर दिये हुए रूप केवल 'कृ' के हैं। इनको देखनेसे विद्यार्थियोंको साहित्यमें आनेवाले रूपोंके पहिचाननेमें सुगमता होगी।

लकारों के प्राचीन नाम—भवन्ती (लट्) परोक्षा (लिट्) अनद्यतना (भूता) वा ह्यस्तनी (लङ्) अद्यतनी (लुङ्), भविष्यन्ती (लृट्) अनद्यतनी (भाविनी) वा श्वस्तनी (लुट्) अतिसर्ग (लोट्) विधात्रिका (लिङ्) आशी (आशीर्लिङ्) क्रियातिपत्तिका (लृङ्), पञ्चमी तथा सप्तमी ये भी लोट् तथा लिङ् के नाम हैं। क्योंकि पाणिनिके लकारोंके क्रमसे यह पाँचवां तथा सातवां लकार है—लट्, लिट् लुट् लृट् लेट् (छन्दोमात्रगोचर—केवल वेदमें) लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्।

परिशिष्ट (ख)।

पाणिनीय पद्धति।

संस्कृत वैयाकरणोंमें पाणिनिका नाम प्रसिद्ध है। पाणिनिका व्याकरण … आठ अध्यायोंमें है, अष्टाध्यायीके नामसे प्रसिद्ध है। अष्टाध्यायीकी टीकाओंमें भट्टोजीदीक्षितकी सिद्धान्तकौमुदी बहुत प्रचलित है। संस्कृ… व्याकरणके उत्तम ज्ञानके लिये सिद्धान्तकौमुदीका पढ़ना आवश्यक है … सिद्धान्तकौमुदीका संक्षेप लघुसिद्धान्तकौमुदी है। इस ग्रन्थको पढ़नेमें … इच्छुक रत्नमालाके लिये मार्ग सुगम करना ही इस परिशिष्टका उद्देश है।

पाणिनिके नियम संक्षिप्त हैं और बहुत अर्थका बोध कराते हैं। ये सूत्र … कहाते हैं। अतिसंक्षिप्त होनेके कारण इनका कण्ठ करना सुगम है। और इस कारण ये व्याकरणका पढ़ना सुगम बनाते हैं। 'सङ्कल… लिका' पढ़ते समय इन सूत्रोंका अभ्यास करनेसे व्याकरणके नियमोंका मनपर संस्कार दृढ़ होगा। सूत्रोंके समझनेके लिये कुछ संज्ञाओं और परिभाषाओं (सूत्रव्याख्यान) का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है … पाणिनिके व्याकरणके मूलभूत अधोलिखित चौदह माहेश्वर (शिवसे प्राप्त) सूत्र हैं —

अइउण्। ऋऌक्। एओङ्। ऐऔच्। हयवरट्। लण्। ञमङ… णनम्। झभञ्। घढधष्। जबगडदश्। खफछठथचटतव्। कपय्। … शषसर्। हल्।

इन चौदहों सूत्रोंके अन्तिम अक्षर तथा लण् में ल का अ इत् कहाते हैं। इस प्रकार ण्, क्, ङ् इत्यादि इत् हैं। ह, य, इत्यादि व्यञ्जनोंके साथ का अ अक्षरोंके उच्चारणमें सुगमता होनेके लिये है। इन सूत्रोंसे किसी प्रकारको इत् वर्णके साथ मिलानेसे अण्, अच्, झल्, अल् इत्यादि निकलते हैं। ये प्रत्याहार कहाते हैं। इनसे पहिले अक्षरसे लेकर इत् तकके वर्णोंका (इत् छोड़कर) बोध होता है। इस प्रकार अक से क् को

से ऋ तकके सब वर्णों (अ, इ, उ, ऋ)का बोध होता है। अच् से सब स्वरोंका बोध होता है। 'हयवरट्' के ह से 'हल्' के ल् तक हल् प्रत्याहार है जिससे सब व्यञ्जनोंका बोध होता है।

स्वर तीन प्रकारके हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर प्लुत होता है। इनमें प्रत्येक स्वर दो प्रकारका होता है—अनुनासिक और अननुनासिक। इस प्रकार स्वर छः प्रकारके हैं। उदात्त अनुदात्त, तथा स्वरित ये भी तीन स्वरके भेद हैं, जो वेदमें पाये जाते हैं। इस रीति से अ इ, उ इन में प्रत्येकके अठारह भेद हैं। ऋ के भी अठारह भेद हैं। ऌ को दीर्घ नहीं होता इस लिये उसके १२ भेद हैं। ऋ तथा ऌ ये सवर्ण हैं, और इनके ३० प्रकार हैं। ए, ऐ, ओ तथा औ का ह्रस्व नहीं होता, इस लिए इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके हैं।

ऊपर लिखे हुए विषयका पढ़नेसे यह मालूम होगा कि अण प्रत्याहार किसी स्वरका बोध कराता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध कराता है। परन्तु यदि इस स्वरके बाद 'त्' हो तो उसीका बोध होता है जिसके बाद 'त' है। अक् कहनेसे सब प्रकारके अ इ उ, ऋ तथा ऌ का बोध होता है। अत् से सब प्रकारके ह्रस्व अ, आत् से दीर्घ आ के सब प्रकारोंका बोध होता है।

स्थानानि (उच्चारणके इन्द्रिय) १० वां पृष्ठ देखो।

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः (अ, कु कवर्ग, ह् तथा विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय हैं)।

इचुयशानां तालु (इ, चु—चवर्ग य् तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय हैं)।

ऋटुरषाणां मूर्धा (ऋ टु—टवर्ग र् तथा ष् इनका मूर्धस्थान है, अर्थात् ये मूर्धस्थानीय हैं)।

ऌतुलसानां दन्ताः (ऌ, तु तवर्ग, ल् तथा स् इनका दन्तस्थान है, अर्थात् ये दन्तस्थानीय हैं)।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ (उ, पु पवर्ग तथा उपध्मानीय * इनका ओष्ठ स्थान है, अर्थात् ये ओष्ठ्यस्थानीय हैं)।

ञमङणनानां नासिका च (ञ्, म्, ङ्, ण्, न् इनका नासिका स्थान भी है अर्थात् ये नासिकास्थानीय भी हैं)।

एदैतोः कण्ठतालु (ए तथा ऐ का + कण्ठ तथा तालु स्थान है)।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् † (ओ औ का कण्ठ तथा ओष्ठ स्थान है)।

वकारस्य दन्तोष्ठम् (व् का दन्त तथा ओष्ठ स्थान है)।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् (जिह्वामूलीय का स्थान जिह्वाका मूल है)।

नासिकानुस्वारस्य (अनुस्वारका नासिका स्थान है)।

सन्धिनियमाः ।

१। प्रति+उत्तरम्=प्रत्युत्तरम्, मधु+अरि=मध्वरि, पितृ+अय=पित्रय, लृ+आकृति=लाकृति ।

§ इको यणचि । ६।१।७७॥ इक्—इ, उ, ऋ, लृ—के स्थानमें यण् अर्थात् य्, व्, र्, तथा ल् होते हैं, यदि उनके आगे अच् या स्वर हो। ९९ वें पृष्ठमें यह नियम देखो।

२। दैत्य+अरि=दैत्यारि, श्री+ईश=श्रीश, वधू+उत्तम=वधूत्तम, दातृ+ऋकार=दातॄकार, होतृ+लृकार=होतॄकार ।

---

* क ख के पूर्व अर्धविसर्गसदृश जिसको जिह्वामूलीय तथा प फ के पूर्व अर्धविसर्गसदृश जिसको उपध्मानीय कहते हैं। राम+करोति=राम करोति वा राम ᳵ करोति, राम+पाति=राम पाति वा राम ᳶ पाति। जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीयके लिखनेका प्रकार यह है।

† यदि 'ओष्ठ' के पूर्व 'अ' हो तो कण्ठ्य तथा ओ मिलकर ओ या औ होता है। जैसे—कण्ठौष्ठम् वा कण्ठोष्ठम्।

§ अष्टाध्यायीके प्रति अध्यायमें चार पाद हैं और पादोंमें सूत्र हैं। यह छठे अध्यायके प्रथम पादका ७७ वां सूत्र है। इसी प्रकार सूत्रोंके साथ दिये हुए अङ्कोंको समझना चाहिये।

से ऋ_तकका सब वर्णों (अ, इ, उ, ऋ) का बोध होता है। अच् से सब स्वरोंका बोध होता है। 'हयवरट्' के ह से 'हल्' के ल् तक हल् प्रत्याहार है जिससे सब व्यञ्जनोंका बोध होता है।

स्वर तीन प्रकारके हैं। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत। दूरसे किसीको पुकारनेमें सम्बोधनका अन्तिम स्वर प्लुत हो जाता है। इनमें प्रत्येक स्वर दो प्रकारका होता है—अनुनासिक और अननुनासिक। इस प्रकार स्वर छः प्रकारके हैं। उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित ये भी तीन स्वरके भेद हैं, जो वेदमें पाये जाते हैं। इस रीतिसे अ, इ, उ इन में प्रत्येकके अठारह भेद हैं। ऋ के भी अठारह भेद हैं। लृ का दीर्घ नहीं होता इस लिये उसके १२ भेद हैं। ऋ तथा लृ ये सवर्ण हैं, और इनके ३० प्रकार हैं। ए, ऐ, ओ, तथा औ का ह्रस्व नहीं होता, इस लिये इनमें प्रत्येक १२ प्रकारके हैं।

ऊपर लिखे हुए विषयका पढ़नेसे यह मालूम होता कि जब प्रत्याहार किसी स्वरका बोध कराता है तो अपने सब प्रकारोंका बोध कराता है। परन्तु यदि उस स्वरके बाद 'त्' हो तो उसीका बोध होता है जिसके बाद 'त्' है। अक् कहनेसे सब प्रकारके अ, इ, उ, ऋ तथा लृ का बोध होता है। अत् से सब प्रकारके ह्रस्व अ, आत् से दीर्घ आ के सब प्रकारोंका बोध होता है।

स्थानानि (उच्चारणके इन्द्रिय) १० वीं पृष्ठ देखो।

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः (अ, कु कवर्ग, ह् तथा विसर्ग इनका कण्ठ स्थान है, अर्थात् ये कण्ठस्थानीय हैं)।

इचुयशानां तालु (इ, चु—चवर्ग य् तथा श् इनका तालु स्थान है, अर्थात् ये तालुस्थानीय हैं)।

ऋटुरषाणां मूर्धा (ऋ, टु—टवर्ग र् तथा ष् इनका मूर्धस्थान है, अर्थात् ये मूर्धस्थानीय हैं)।

लृतुलसानां दन्ताः (लृ तु तवर्ग, ल् तथा स् इनका दन्तस्थान है, अर्थात् ये दन्तस्थानीय हैं)।

रहनेवाले अय्, आय्, अव्, आव् (ए, ऐ, ओ तथा औ के आदेशके) य् वा व् का विकल्पसे लोप होता है।

२४वें पृष्ठमें ६ वां नियम देखो।

७। ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्। १।१।११॥ ईकारान्त, ऊकारान्त, तथा एकारान्त द्विवचन प्रगृह्य कहाता है। २९ वां पृष्ठ ४ थां नियम।

८। यदि कृष्ण अत्र गोचरति वा यदि कृष्णात्र गोचरति (अत्र प्लुतो विकल्प्यते)—कवी + आगच्छत = कवी आगच्छत, हरी + एतौ = हरी एतौ, विष्णू + इमौ = विष्णू इमौ, पचेते + इमौ = पचेते इमौ, अमी + ईशा = अमी ईशा —

प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्। ६।१।१२५॥ स्वर आगे रहनेपर प्लुत और प्रगृह्य को नित्य प्रकृतिभाव होता है, अर्थात् इनमें कोई सन्धिकार्य नहीं होता। २९ वां पृष्ठ नियम ४, तथा ६५ वां पृष्ठ टिप्पणी १ में देखो।

९। हर्यनुभव वा हर्य्यनुभव, कर्ता वा कर्त्ता, वर्तमान वा वर्त्तमान —

अचो रहाभ्यां द्वे। ८।४।४६॥ स्वरसे पर रहनेवाले र् वा ह् से आगे यर् को विकल्पसे द्वित्व होता है। ७१ पृष्ठ २ नियम।

१०। बिम्ब + ओष्ठ = बिम्बोष्ठ वा बिम्बौष्ठ, स्थूल + ओतु = स्थूलोतु वा स्थूलौतु —

ओत्वोष्ठयोः समासे वा (वार्तिक)—समासमें अ वर्णसे आगे यदि ओतु वा ओष्ठ आवे तो पर का (ओतु वा ओष्ठ का) रूप विकल्पसे होता है।

११। हरे + अव = हरेऽव, विष्णो + अव = विष्णोऽव—

एङः पदान्तादति। ६।१।१०९॥ अ आगे रहनेपर पदान्तमें रहनेवाले एङ् को पूर्वरूप एक आदेश होता है, अर्थात् अ का लोप होता है। २३वां पृष्ठ नियम ४।

अकः सवर्णे दीर्घः ।६।१।१०१॥ सवर्ण (समान) अच् आगे रहनेपर अक् को दीर्घ एकादेश होता है। १८ वें पृष्ठमें ६ वां नियम देखो।

२। उप+इन्द्र=उपेन्द्र, परम+ईश्वर=परमेश्वर, रमा+ईश=रमेश, चन्द्र+उदय=चन्द्रोदय, गङ्गा+उदकम्=गङ्गोदकम्, कृष्ण+ऋद्धि=कृष्णर्द्धि, तव+लृकार=तवल्कार —

अदेङ् गुणः ।१।१।२॥—अत् अ तथा एङ्—ए, ओ गुण कहाते हैं। ५ वां पृष्ठ देखो। आद्गुणः ।६।१।८७॥ अवर्णके आगे यदि अच् हो तो उन दोनोंके स्थानमें एक गुण आदेश होता है। १८ वें पृष्ठमें ८ वां नियम देखो।

४। कृष्ण+एकत्वम्=कृष्णैकत्वम्, परम+ऐश्वर्यम्=परमैश्वर्यम्, गङ्गा+ओघ=गङ्गौघ, महा+औषधि वा ओषधि=महौषधि।

वृद्धिरादैच् ।१।१।१॥ आत्—आ, तथा ऐच्—ऐ, औ वृद्धि कहाती हैं। ५ वें पृष्ठमें ११ वां नियम देखो। वृद्धिरेचि ।६।१।८८॥ (आत् एचि वृद्धिः)—यदि अवर्णसे आगे एच् हो तो उन दोनों स्वरोंके स्थानमें एक वृद्धि आदेश होता है १४ वें पृष्ठमें ३रा नियम देखो।

५। हरे+ए=हरये, विष्णो+ए=विष्णवे, नै+अक=नायक, पौ+अक=पावक —

एचोऽयवायावः ।६।१।७८॥ अच् आगे रहनेपर एच्के स्थानमें अय्, अव्, आय्, आव् ये आदेश होते हैं। २४ वें पृष्ठमें ५वां नि० देखो।

६। हरे+इह=हर इह वा हरयिह, विष्णो+इह=विष्ण इह वा विष्णविह, श्रियै+उद्यत=श्रिया उद्यत वा श्रियायुद्यत, गुरौ+अपि=गुरा अपि वा गुरावपि—

सुप्तिङन्तं पदम् ।१।४।१४॥ सुप् (कारक विभक्तियां) वा तिङ् (लकारोंके प्रत्यय) जिनके अन्त में हों वे पद कहाते हैं।

१४ वां पृष्ठ ४था नियम देखो।

लोपः शाकल्यस्य ।८।३।१९॥ शाकल्याचार्यके मतसे पदके अन्तमें

य रहनेवाले वर्ग का सवर्ण वर्ण अर्थात् ष होता है। दूसरे मतसे ट का विकल्पसे लोप होता है। ६४ पृष्ठ, टिप्पणी देखो।

१८। तद्+हितम्=तद्धितम् वा तद्धितम्, वाक्+हरि = वाग्हरि वा वाग्घरि —

झयो होऽन्यतरस्याम्। ८।४।६२॥ झय परस्य हस्य (पूर्वसवर्ण विकल्पेन)—झय् (वर्गके पहिले ४ वर्ण) से पर रहनेवाले ह् को विकल्पसे वर्गका चतुर्थ वर्ण होता है (क्योंकि वर्गका चतुर्थ ह् का सवर्ण है, जो घोष तथा महाप्राण है) १०८ पृष्ठ, १२ नियम देखो।

१९। तत्+शिव=तच्शिव वा तच्छिव, तत्+श्लोक=तच्-श्लोक वा तच्छ्लोक, पर वाक्+श्चोतति—

शश्छोऽटि। ८।४।६३॥ छत्वममीति वाच्यम्। झय से पर रहनेवाले श् को विकल्पसे छ् होता है, यदि उसके आगे अट् या कात्यायनके अनुसार अम् हो ९२ पृष्ठ टिप्पणी देखो।

२०। उद्+पतति=उत्पतति—

खरि च। ८।४।५५॥ (झलां खरि चर्)—खर् आगे रहनेपर झल् को चर् होता है। ११ वां पृष्ठ देखो।

२१। पुष्पम्+हरति=पुष्पं हरति, त्वम्+करोषि=त्वं करोषि या त्वङ्करोषि हरिम्+वन्दे=हरिं वन्दे या हरिम्वन्दे।

मोऽनुस्वारः। ८।३।२३॥ (पदान्तस्य, हलि) हल् आगे रहने पर पदान्त में रहनेवाले म् का विकल्पसे अनुस्वार होता है १८ पृष्ठ नियम ५।

२२। प्रत्यङ्+आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण्+ईश=सुगण्णीशः, सन्+अच्युत=सन्नच्युत :—

ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्। ८।३।३२॥ ५६ पृष्ठ, नि ५।

२३। शार्ङ्गिन्+छिन्धि=शार्ङ्गिञ्छिन्धि, कान्+चन=कांचन, विडालान्+ताडयति=विडालांस्ताडयति—

व्यञ्जनसन्धि।

१२। वाक् + ईश = वागीश, चित् + रूपम् = चिद्रूपम्—
झलां जशोऽन्ते। ८।२।३९॥ पदके अन्तमें रहनेवाले झल् का जश् होता है। ७१ पृष्ठ नियम ३ (ख)।

१३। हरिस् + शेते = हरिश्शेते, रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति, सत् + चित् = सच्चित्, सत् + जन = सज्जनः, शार्ङ्गिन् + जयति = शार्ङ्गिञ्जयति—
स्तोः श्चुना श्चुः। ८।४।४०॥ स् तथा तवर्ग का श् तथा चवर्ग का योग रहनेपर श् तथा चवर्ग होता है। २८ पृष्ठ नि ७।

१४। रामस् + षष्ठ = रामष्षष्ठ, तत् + टीका = तट्टीका—ष्टुना ष्टुः॥ ८।४।४१॥ स् तथा तवर्ग को ष् तथा टवर्ग का योग रहनेपर ष् तथा टवर्ग होता है। ३० पृष्ठ, नियम ६।

१५। तत् + मरणम् = तद्मरणम् वा तन्मरणम्, एतत् + मुरारि = एतद्मुरारि वा एतन्मुरारि, सत् + मात्रम् = सन्मात्रम्, चित् + मयम् = चिन्मयम्, वाक् + मयम् = वाङ्मयम्—
यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा। ८।४।४५॥ अनुनासिक आगे रहनेपर पदके अन्तमें रहनेवाले यर को अनुनासिक विकल्पसे होता है। प्रत्यये भाषायां नित्यम्। ७१ पृष्ठ नि ३ (ख) ३ (क)।

१६। तत् + लय = तल्लय, विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति—
तोर्लि। ८।४।६०॥ ल् आगे रहनेपर तवर्गको परसवर्ण होता है। १२१ वा पृष्ठ देखो।

१७। उत् + स्थानम् = उत्थानम्, उत् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्। उत्स्थानम् तथा उत्स्तम्भनम् भी होता है पर प्रयोगमें कम आता है।
उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य। ८।४।६१॥ उत् पूर्वक स्था तथा स्तम्भ् धातुको पूर्वसवर्ण होता है। दूसरे मतसे स्था तथा स्तम्भ के स् का उसको

२९ । हरि + शेते = हरिश्शेते वा हरि शेते, हरि + स्फुरति = हरिस्स्फुरति, हरि स्फुरति, वा हरिस्फुरति—

वा शरि । ८।३।३६॥ शर् आगे रहनेपर विसर्गको विकल्प होता है अर्थात् वह कायम रहता है। ३४ पृष्ठ, नि १।

खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्यः—ऐसा शर् जिसके बाद खर् हो, आगे रहनेपर विसर्गका विकल्पसे लोप होता है। राम + स्थाता, राम स्थाता, वा रामस्थाता।

३० । स + शम्भु = स शम्भु, एष + विष्णु = एष विष्णु, पर एषक + रुद्र = एषको रुद्र, अस + शिव = अस शिव, वा असश्शिव, एष + अनु = एषोऽनु—

एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि । ६।१।१३२॥ हल आगे रहने पर ककाररहित एतद् तथा तद् के सु का लोप होता है, पर नञ् समास में नहीं होता। (इसलिये एषको रुद्र और असः शिव) ४४ पृष्ठ नियम २।

अन्तर्गत सन्धि ।

३१ । पितृ + नाम = पितृणाम्, कर् + न = कर्ण, कृष् + न = कृष्ण रामेण, रामाणाम्, रामान्—

रषाभ्यां नो णः समानपदे । ८।४।१॥ एक ही पदमें र् तथा ष के आगे आनेवाले न् को ण् होता है। १० पृष्ठ, नि १।* ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्—ऋ के आगे आनेवाले न् को ण् होता है। १० पृष्ठ, नि १। अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि । ८।४।२॥ अट्, कु—कवर्ग, पु—पवर्ग, आङ् (उपसर्ग आ) नुम् (अनुस्वार) इनका व्यवधान होनेपर भी, अर्थात् ऋ, र् वा ष तथा न् के बीचमें अट् इत्यादि रहनेपर भी न् को ण् होता है। पृष्ठ १० नियम २।

---

* पाणिनिके सूत्रोंकी न्यूनता कात्यायनने अपने वार्तिकसे पूरी की। वार्तिकके अन्तमें वाच्यम् वा वक्तव्यम् आता है। इन दोनोंकी न्यूनता भाष्यकार पतञ्जलिने पूरी की जिनके नियम इष्टि कहे जाते हैं। इष्टियोंके अन्तमें 'इष्यते' आता है।

मय्युदासयमात् ।८।३।३२।। ३८ पृ, नि ३ । ङमुट् आगम होता है। प्रत्यङ् + निरोधि = प्रत्यङ्ङ्निरोधि, प्रत्यङ्निरोधि नहीं।

२४। तरु + छाया = तरुच्छाया, च + छिनत् = चच्छिनत्, वि- च्छ — विच्छ—

छे च ।६।१।७३।। ह्रस्व स्वर के बाद छ आने पर तुक् का आगम होता है (त् का 'स्तोः श्चुना श्चुः' से च होता है) १८८ पृ, १ टिप्पणी देखो।

अधिच्छत्र—

दीर्घात् ।६।१।७५।। के बाद रहनेपर छ को भी तुक् आगम होता है, १८६ पृ टिप्पणी १ देखो।

लक्ष्मी + छाया = लक्ष्मीच्छाया या लक्ष्मीछाया—

पदान्ताद्वा ।६।१।७६।। पदान्तमें रहनेवाले दीर्घको विकल्पसे तुक् आगम होता है १८६ पृ टिप्पणी १।

आ + छादयति = आच्छादयति मा + छिदत् = माच्छिदत्।

आङ्माङोश्च ।६।१।७४।। यह 'पदान्ताद्वा' का बाधक है। आ तथा मा को नित्य तुक् होता है १८६ पृ, टिप्पणी १।

विसर्गसन्धि।

२५। मनः + रथ = मनोरथ, मनः + हर = मनोहर और + अस्ति = औरोऽस्ति। पृ १८ नियम ७,८ तथा पृ २६ नियम ४।

२६। शुकः + चलति = शुकश्चलति, बालाः + आगच्छन्ति = बाला आगच्छन्ति, देवाः + जयन्ति = देवा जयन्ति। पृ १९ नियम ९, तथा २४ पृ, नियम २।

२७। कविः + अस्ति = कविरस्ति, मनोः + उपयाति = मनोरुपयाति, निः + रस = नीरस, निः + रोग = नीरोग २३ पृ, नियम २ तथा ३।

२८। अग्रः + चरति = अग्रश्चरति, जनः + तरति = जनस्तरति, रामः + टीकते = रामष्टीकते। पृ १५ नि १, तथा पृ २९ नियम ४।

३७। बुध्+त=बुध्+ध=बुद्+ध=बुद्ध।

झषस्तथोर्धोऽधः ।८।२।४०॥ झष्से पर आनेवाले त् तथा थ् को ध् होता है, पर धा धातुके त् वा थ् को नहीं होता। १८६ पृष्ठ, नियम (आ)

३८। लिह्+ति=लेह्+ति=लेढ्+ढि=लेढि, लेढा, लीढ, ऊढ —

लिह्+स्यति=लेह्+स्यति=लेढ्+स्यति=लेक्+स्यति=लेक्+ष्यति=लेक्ष्यति—

हो ढः ।८।२।३१॥ झल आगे रहनेपर वा पदान्तमें ह् को ढ् होता है १८६ पृष्ठ, नियम (अ)।

षढोः कः सि ।८।२।४१॥ स् आगे रहनेपर ष तथा ढ को क् होता है १७४ पृष्ठ नियम (ए)।

३९। दुह्+स्यामि=दोह्+स्यामि=दोघ्+स्यामि दोग+धास्मि=दोग्धास्मि, दोह्+स्यामि=दोघ्+स्यामि=धोघ्+स्यामि—

दादेर्धातोर्घः ।८।२।३२॥ झल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें दकारादि धातुके ह् को घ् होता है। १८७ पृष्ठ, नियम (ई)।

एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः ।८।२।३७॥ पृष्ठ १८८, नि (ए)।

४०। द्रोग्धा, द्रोढा, स्नह्+स्यति=स्नेक्+स्यति इत्यादि=स्नेक्ष्यति, मूढ वा मुग्ध—

वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् ।८।२।३३॥ झल आगे रहनेपर वा पदान्तमें द्रुह्, मुह्, स्नुह् तथा स्निह् के ह् को विकल्पसे घ् होता है, पक्षमें ढ् होता है। १८७ पृष्ठ, नि (उ)।

४१। नह्+ता=नध्+ता=नध्+धा=नद्धा, नत्स्यति, उपानद्भि —

नहो धः ।८।२।३४॥ झल् आगे रहनेपर वा पदान्तमें नह् के ह् को ध् होता है। १८७ पृष्ठ, नियम (उ)।

४२। वह्+त=वढ्+त=वढ्+ध=वढ्+ढ=वोढ, वोढुम्—

३२। वाच् + सु = वाक् + सु—

चोः कुः ।८।२।३०॥ झल् आगे रहनेपर या पदान्तमें चु—चवर्गको कु—कवर्ग होता है २६ पृष्ठ नि २।

३३। वाच् + भ्याम् = वाज् + भ्याम् = वाग्भ्याम्, बुध् + त = बुद् + ध = बुद्ध, लभ् + त = लब्ध, क्षुध् + त = क्षुब्ध।

झलां जश् झशि ।८।४।५३॥ झश् आगे रहनेपर झल्को जश् होता है। १९८ पृष्ठ, नि (आ)।

३४। वाक् + सु = वाक् + षु = वाक्षु कमल् + सु = कमल् + षु = कमल्षु धार् + सु = धार्षु रामे + सु = रामेषु, हरिषु, गुरुषु, वधूषु, परन्तु रमासु।

आदेशप्रत्यययोः ।८।३।५९॥ * इण् तथा कवर्गसे पर पदके अन्तमें न रहनेवाले आदेश या प्रत्ययके स् को मूर्धन्य अर्थात् ष् होता है। ५६ पृष्ठ, नियम ४।

३५। शास् + त = शिष् + त = शिष् + ट = शिष्ट उषित, अघस् + क्त = अक्ष् + क्त = अक्ष् + क्त = जक्षित।

शासिवसिघसीनां च ।८।३।६०॥ इण् तथा कवर्गसे पर शास्, वस्, तथा घस् के स् का ष् होता है। १०२ पृष्ठ, नियम (इ)।

३६। पुनर् + रमते = पुनारमते।

रो रि ।८।३।१४॥ र् आगे रहनेपर र् का लोप होता है २३ पृष्ठ, नियम ३।

ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ।६।३।१११॥ ढ् तथा र् को लोप करनेवाले ढ्र अर्थात् ढ् तथा र् आगे रहनेपर पूर्व अण् (अ, इ, उ) को दीर्घ होता है। १८० पृष्ठ नि० (इ)।

---

* यहाँ इण् प्रत्याहार इ से लेकर ण् तक है अर्थात् इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ ह य व र ल।

१। भ्वादि।

अञ्चि अभिव्यक्तिगत्योः (अञ्चते)।
स्पदि किञ्चिच्चलने (स्पन्दते)।
त्रपूष् लज्जायाम् (त्रेपिषे त्रपे)।
क्षमूष् सहने (क्षमिष्ये क्षंस्ये)।
क्रमु पादविक्षेपे (क्रमित्वा क्रान्त्वा, क्रन्त्वा)।
ग्रसु अदने।
गाहू विलोडने।
शंसु स्तुतौ।
स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु अवस्रंसने।
वृतु वर्तने (वर्तित्वा—वृत्वा)।
वृधु वृद्धौ।
स्यन्दू प्रस्रवणे।
कृपू सामर्थ्ये।
रमु क्रीडायाम्।
भ्रमु चलने।
शद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु (लुङ्—अशदत्)।
गुहू संवरणे।
गम्लृ सृप्लृ गतौ (अगमत, असृपत)
धस्लृ गतौ।
दृशिर् प्रेक्षणे (अदर्शत् अद्राक्षीत्)
डीङ् विहायसा गतौ (डयते)।
त्रैङ् पालने।
श्रिञ् सेवायाम् (श्रयति ते)।
भृञ् भरणे।
हृञ् हरणे।
णीञ् प्रापणे।
धृञ् धारणे।

२। अदादि।

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि।
शीङ् स्वप्ने।
षूङ् प्राणिगर्भविमोचने।
ष्टुञ् स्तुतौ।
ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि।
षपू शुद्धौ।
रुदिर् अश्रुविमोचने (अरोदीत्—अरुदत्)।
शासु अनुशिष्टौ।

३। जुहोत्यादि।

डुभृञ् धारणपोषणयोः।
ओहाङ् गतौ।
डुदाञ् दाने।
डुधाञ् धारणपोषणयोः।

४। दिवादि।

दिवु क्रीडादिषु।
तृषी छर्दने।
नृती गात्रविक्षेपे।
जनी प्रादुर्भावे।
शमु उपशमे।
तमु काङ्क्षायाम्।

पाणिनिकी संज्ञाओंके अर्थ।

लट्—वर्तमान, लिट्—परोक्षभूत, लुट्—अनद्यतनभविष्यत्; लृट्—सामान्यभविष्यत्, लेट्—विधि (वैदिक), लोट्—आज्ञा, लङ्—अनद्यतनभूत, लिङ्—विधि तथा आशीर्लिङ्, लुङ्—सामान्य भूत, लृङ्—क्रियातिपत्ति।

णिच्—प्रेरणार्थक प्रत्यय, सन्—इच्छार्थक प्रत्यय, यङ्—पौनःपुन्यार्थक (और २ होनेके अर्थमें) प्रत्यय।

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥

अजन्त या ऐसा धातु जिसमें अकार हो, जो तास (अनद्यतनभविष्यत्का प्रत्यय) आगे रहने पर अनिट् होता है, थल् (परोक्षभूतका थ) आगे रहने पर वेट् होता है, इस प्रकारका ऋकारान्त धातु नित्य अनिट् होता है, और क्रृ इत्यादि (कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु) के सिवा अन्य धातु लिट् में सेट् होते हैं। २६२ पृष्ठ, नि ९ तथा २६३ पृष्ठ नियम १०, ११।

संस्कृत व्याकरणोंमें धातु कुछ अनुबन्धोंके साथ दिये गये हैं, जैसे—गम्लृ गतौ, मृङ् मरणे, डुकृञ् करणे, अव रक्षणे, ञि[illegible] करणे, भ्रमु अनवस्थाने, [illegible] गात्रविनामे। इन धातुओंमें लृ, ञ, ङ, क, इर्, ष तथा ई थे अनुबन्ध हैं। लृ अनुबन्धवाले धातुओंमें नियमसे लुङ्का द्वितीय प्रकार होता है, इर् अनुबन्धवाले धातुओंमें विकल्पसे लुङ्का द्वितीय प्रकार होता है, ऊ अनुबन्धवाले वेट् हैं, ङ् अनुबन्धवाले आत्मने तथा ञ अनुबन्धवाले उभयपदी होते हैं, उ अनुबन्धवाले धातुओंके अव्ययभूत कृदन्तमें विकल्पसे इ आगम होता है। ई अनुबन्धवाले धातुओंमें त आगे रहनेपर इ आगम नहीं होता। यद्यपि धातुओंका उनके अनुबन्धोंके साथ याद करना परिश्रमका काम है परन्तु यह परिश्रम सफल है, क्योंकि विद्यार्थियोंको याद करना सुगम होता है। प्रधान धातु उनके अनुबन्धोंके साथ नीचे दिये जाते हैं —

१। भ्वादि।

वदि अभिवादनस्तुत्योः (वन्दते)।
स्पदि किञ्चिच्चलने (स्पन्दते)।
गुपू रक्षायाम् (गोपायि रक्षे)।
क्षमूष् सहन (चक्षमिषे चक्षण्वे)।
क्रमु पादविक्षेपे (क्रमित्वा-क्रान्त्वा, क्रान्त्वा)।
ग्रसु अदने।
गाहू विलोडने।
ग्रसु स्तुता।
स्रंसु ध्वंसु भ्रंसु अवस्रंसने।
वृतु वर्त्ते (वर्तित्वा—वृत्वा)।
वृधु वृद्धौ।
स्यन्दू प्रस्रवणे।
कृपू सामर्थ्ये।
रमु क्रीडायाम्।
चसु चला।
घस्लृ विप्ररणमत्यप्रकाशनयु (लुङ्—अघस्त्)।
गुहू संवरणे।
गम्लृ सृप्लृ गतौ (अगमत्, असृपत्)
पत्लृ गतौ।
दृशिर प्रेक्षणे (अदृशत् अद्राक्षीत्)
डीङ् विहायसा गतौ (डयते)।
त्रैङ् पालने।
श्रिञ् सेवायाम् (श्रयति त)।
भृञ् भरणे।
हृञ् हरणे।
णीञ् प्रापणे।
धृञ् धारणे।

२। अदादि।

चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि।
शीङ् स्वप्ने।
षूङ् प्राणिगर्भविमोचने।
ष्टुञ् स्तुतौ।
ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि।
मृजू शुद्धौ।
रुदिर अश्रुविमोचन (अरोदीत्—अरुदत्)।
शासु अनुशिष्टौ।

३। जुहोत्यादि।

डुभृञ् धारणपोषणयो।
ओहाङ् गतौ।
डुदाञ् दाने।
डुधाञ् धारणपोषणयो।

४। दिवादि।

दिवु क्रीडादिषु।
गृधो उद्वेगे।
नृती गात्रविक्षेपे।
जनी प्रादुर्भावे।
शमु उपशमे।
तमु काङ्क्षायाम्।

दमु उपशमे।
श्रमु तपसि खेदे च।
भ्रमु अनवस्थाने।
क्षमू सहने।
क्लमु ग्लानौ।
मदी हर्षे।
असु क्षेपणे।

५। स्वादि।

षुञ् अभिषवे।
चिञ् चयने।
स्तृञ् आच्छादने।
वृञ् वरणे।
धूञ् कम्पने।
शक्लृ शक्तौ।
आप्लृ व्याप्तौ।

६। तुदादि।

व्रश्चू छेदने।
दृङ् आदरे।
धृङ् अवस्थाने।
पृङ् व्यायामे।
मृङ् प्राणत्यागे।
षद्लृ विशरणादिषु।
मुच्लृ मोक्षणे।
लुप्लृ छेदने।
विद्लृ लाभे।
कृती छेदने।

७। रुधादि।

रुधिर् आवरणे।
छिदिर् द्वैधीकरणे।
भिदिर् विदारणे।
रिचिर् विरेचने।
युजिर् योगे।
शिष्लृ विशेषणे।
पिष्लृ सञ्चूर्णने।
अञ्जू व्यक्त्यादिषु।

८। तनादि।

तनु विस्तारे।
क्षणु क्षिणु हिंसायाम्।
मनु अवबोधने।
वनु याचने।
डुकृञ् करणे।

९। क्र्यादि।

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये।
प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च।
पूञ् पवने।
स्तॄञ् आच्छादने।
वृञ् वरणे।
धूञ् कम्पने।
लूञ् छेदने।
क्लिशू विबाधने।

१०। चुरादि।

धूञ् कम्पने।
प्रीञ् तर्पणे।

परिशिष्ट (ग)।

कृदन्त रूप।

धातु	भू कृ	पश्च भू कृ	तुम्
ज्ञा	ज्ञात	ज्ञात्वा	ज्ञातुम्
ख्या	ख्यात	ख्यात्वा	ख्यातुम्
दा	दत्त	दत्वा	दातुम्
श्रा	श्रात श्रान्त	श्राणय	श्रातुम्
म्ना	म्नात म्नान्त	म्नाय	म्नातुम्
धा	हित	हित्वा	धातुम्
पा	पीत	पीत्वा	पातुम्
हा-छोड़ना	हीन	हित्वा	हातुम्
हा जाना	हान	हात्वा	हातुम्
मी	मीत	मीत्वा	मेतुम्
श्रु	श्रुत	श्रुत्वा	श्रोतुम्
कृ	कृत	कृत्वा	कर्तु म्
तॄ	तीर्ण	तीर्त्वा	तरितुम् तरीतुम् तर्तु म्
पॄ	पूर्ण	पूर्त्वा	परितुम् परीतुम् पर्तु म्
हृ	हृत	हृत्वा	हातुम्
गै	गीत	गीत्वा	गातुम्
त्रै	त्रात त्राण	त्रात्वा	त्रातुम्
म्लै	म्लान	म्लात्वा	म्लातुम्
ग्लै	ग्लान	ग्लात्वा	ग्लातुम्
सो	सित	सित्वा	सातुम्

पच्	पक्व	पक्त्वा	पक्तुम्
मुच्	मुक्त	मुक्त्वा	मोक्तुम्
युज्	युक्त	युक्त्वा	योक्तुम्
वृत्	वृत्त	वृत्त्वा वर्तित्वा	वर्तितुम्
ग्रह्	गृहीत	गृहीत्वा	ग्रहीतुम्
खिद्	खिन्न	खित्वा	खेत्तुम्
छिद्	छिन्न	छित्वा	छेत्तुम्
क्षुध्	क्षुब्ध	क्षुद्ध्वा	क्षोद्धुम्
तन्	तत	तत्वा तनित्वा	तनितुम्
मन्	मत	मत्वा	मन्तुम्
हन्	हत	हत्वा	हन्तुम्
खन्	खात	खनित्वा खात्वा	खनितुम्
जन्	जात	जनित्वा	जनितुम्
लभ्	लब्ध	लब्ध्वा	लब्धुम्
गम्	गत	गत्वा	गन्तुम्
नम्	नत	नत्वा	नन्तुम्
यम्	यत	यत्वा	यन्तुम्
रम्	रत	रत्वा	रन्तुम्
क्रम्	क्रान्त	क्रमित्वा, क्रान्त्वा, क्रन्त्वा	क्रमितुम्
शम्	शान्त	शमित्वा, शान्त्वा	शमितुम्
प्रच्छ्	पृष्ट	पृष्ट्वा	प्रष्टुम्
विश्	विष्ट	विष्ट्वा	वेष्टुम्
दृश्	दृष्ट	दृष्ट्वा	द्रष्टुम्
सृज्	सृष्ट	सृष्ट्वा	स्रष्टुम्
नश्	नष्ट	नष्ट्वा, नंष्ट्वा, नशित्वा	नष्टुम्
यज्	इष्ट	इष्ट्वा	यष्टुम्

वप्	उप्त	उप्त्वा	वप्तुम्
वच्	उक्त	उक्त्वा	वक्तुम्
वह्	ऊढ	ऊढ्वा	वोढुम्
वस्	उषित	उषित्वा	वस्तुम्
वन्द्	वन्दित	वन्दित्वा	वन्दितुम्
व्यध्	विद्ध	विद्ध्वा	व्यद्धुम्
ग्रह्	गृहीत	गृहीत्वा	ग्रहीतुम्
लिह्	लीढ	लीढ्वा	लेढुम्
दुह्	दुग्ध	दुग्ध्वा	दोग्धुम्
नह्	नद्ध	नद्ध्वा	नद्धुम्
सह्	सोढ	साढ्वा, सहित्वा	साढुम् सहितुम्
भञ्ज्	भग्न	भक्त्वा, भङ्क्त्वा	भङ्क्तुम्
लभ्	लब्ध	लब्ध्वा	लब्धुम्
चुर्	चोरित	चोरयित्वा	चोरयितुम्
कृ प्रे०	कारित	कारयित्वा	कारयितुम्
निविश् प्रे०	निवेशित	निवेश्य	निवेशयितुम्
अवगण्	अवगणित	अवगणय्य	अवगणयितुम्
विरच्	विरचित	विरचय्य	विरचयितुम्

धातु भू कृ
ज्या—जीन
क्षि—क्षित क्षीण
श्री—श्रपित
ह्री—ह्रीण
लू—लून
क्षै—क्षाम
मस्ज्—मग्न
मद्—मत्त
प्याय्—प्यान, पीन (पीनं मुखम्। अन्यत्र प्यानं पीनं वा)
स्फाय्—स्फीत
त्वर्—त्वरित तूर्ण
फल—फुल्ल
दिव्—द्यूत द्यून (विजिगीषायां द्यूतम्)
धाव्—धौत
ष्ठिव्—ष्ठ्यूत
सिव्—स्यूत
शुष—शुष्क
मुह्—मुग्ध—मूढ
निर् वा—निर्वाण वा (निर्वाणोऽग्निर्मुनिश्च निर्वातो वातः)।
घ्रा—घ्रात वा
ह्री—ह्रीत वा

धातु—अव्यय भू कृ
प्र स्था—प्रस्थाय
वि जि—विजित्य
प्र स्तु—प्रस्तुत्य
अधि इ—अधीत्य
अनु कृ—अनुकृत्य
वि स्मृ—विस्मृत्य
अनु भू—अनुभूय
उत् तॄ—उत्तीर्य
आप्लु—आप्लूय
अनु मन्—अनुमत्य
नि हन्—निहत्य
आ गम्—आगम्य, आगत्य
नि यम्—नियम्य, नियत्य
प्र णम्—प्रणम्य, प्रणत्य
वि रम्—विरम्य, विरत्य
अप वह्—अपोह्य
प्र वच—प्रोच्य
उप वस—उपोष्य
अनु बन्ध्—अनुबध्य
सम् श्री—संश्रित्य

कर्तरि भूतकृदन्ताः।

गम्—गतवत्
कृ—कृतवत्

परोक्षभू कृदन्त।

दा—ददिवस्

पत्—पतिष्य

कृ—चकृवस्—चक्राण (उभ)

दृ—ददृवस्-ददृशान (उभ)

नी—निनीवस्—निन्यान (आत्म)

स्तु—तुष्टुवस्—तुष्टुवान (आत्म)

वर्तमान कृदन्त पर

भ्वा गम्—गच्छत्—गच्छन्ती (स्त्री)

दृश्—पश्यत्—पश्यन्ती

घ्रा—जिघ्रत्—न्ती

गुह्—गूहत्—न्ती

षद्—सीदत्—न्ती

दि पुष्—पुष्यत्—न्ती

तुष्—तुष्यत्—न्ती

सो—स्यत्—न्ती

शम्—शाम्यत्—न्ती

भ्रम्—भ्रम्यत्—न्ती, भ्राम्यत्—न्ती, भ्रमत्—न्ती

तु विश्—विशत्—ती—न्ती

इष्—इच्छत्—ती—न्ती

प्रच्छ्—पृच्छत्—ती—न्ती

भ्रस्ज्—भृज्जत्—ती—न्ती

व्रश्च्—वृश्चत्—ती—न्ती

मस्ज्—मज्जत् ती न्ती

स्पृश्—स्पृशत् ती न्ती

सद्—सीदत् ती न्ती

कॄ—किरत् ती न्ती

चु चुर्—चोरयत् न्ती

पीड्—पीडयत् न्ती

स्पृह्—स्पृहयत् न्ती

आत्मने।

भ्वा वृत्—वर्तमान ना (स्त्री)

वृध्—वर्धमान ना

रम्—रममाण णा

गुह्—गूहमान ना

त्रै—त्रायमाण-णा

दि जन्—जायमान ना

विद्—विद्यमान—ना

क्षुध्—क्षुध्यमान ना

युध्—युध्यमान ना

दीप्—दीप्यमान ना

तु मृ—म्रियमाण णा

व्यापृ—व्याप्रियमाण णा

दृ—द्रियमाण णा

धृ—ध्रियमाण णा

चु मन्त्र्—मन्त्रयमाण-णा

भर्त्स्—भर्त्सयमान ना

तर्ज्—तर्जयमान ना

परस्मै।

अ पा—पात् ती न्ती

अस्—सत्—ती

इ—यत् ती

स्तु—स्तुवत् ती

सू—सुवत् सौ
स्तु—स्तुवत् सौ
शास—शासत् तौ
जक्ष्—जक्षत् तौ
हन्—घ्नत् तौ
जागृ—जाग्रत् तौ

आत्मने ।

आस्—आसीन ना
अधि-इ—अधीयान ना
सू—सुवान ना
शी—शयान ना
स्तु—स्तुवान ना
ईश्—ईशान ना
वस्—वसान ना
शास्—शासान ना

परस्मै ।

जु हु—जुह्वत् तौ
हा—(छोड़ना) जहत् तौ
भी—बिभ्यत् तौ
दा—ददत् तौ
ह्री—जिह्रियत् तौ
भृ—बिभ्रत् तौ
निज्—नेनिजत् तौ

आत्मने ।

हा (जाना)—जिहान ना
मा—मिमान ना
दा—ददान ना
भृ—बिभ्राण ना
निज्—नेनिजान ना

परस्मै ।

स्वा चि—चिन्वत् तौ
आप्—आप्नुवत् तौ
श्रु—शृण्वत् तौ
सु—सुन्वत् सौ

आत्मने ।

चि—चिन्वत् ना
अश्—अश्नुवान-ना
सु—सुन्वान ना

परस्मै ।

रु रुध्—रुन्धत् तौ
भञ्ज्—भञ्जत् तौ
छिद्—छिन्दत् तौ
भिद्—भिन्दत् तौ

आत्मने ।

रुध्—रुन्धान ना
इन्ध—इन्धान ना
छिद्—छिन्दान ना
भुज (खाना)—भुञ्जान ना

परस्मै ।

तना तन्—तन्वत्—तौ
कृ—कुर्वत्—तौ
सन—सन्वन् तौ

आत्मने।

तनु—तन्वान ना

कृ—कुर्वाण-णा

यनु—यन्वान ना

परस्मै।

भाग। क्री—क्रीणत् ती

ग्रह्—गृह्णत् ती

मुष्—मुष्णत् ती

ज्ञा—जानत्-ती

बन्ध्—बध्नत्-ती

आत्मने।

क्री—क्रीणान ना

ग्रह—गृह्णान-ना

ज्ञा—जानान ना

भवि कृदन्त।

कृ—करिष्यत् ती न्ती

गमु—गमिष्यत् ती न्ती

क्री—क्रेष्यमाण-णा

कृ—करिष्यमाण णा

शुद्धिपत्र ।

—०—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	षट	षड्
४	अन्तिम	स्मर + च	स्मर् च
६	१४	सुझाना	सुझाना
६	२१	छूते	छूते
७	१	उपर	ऊपर
१०	१४	षट	षड्
१०	१५	न	न्
१०	१७	कण्ट	कण्ठ
१७	१४	रामाणाम	रामाणाम्
१७	२४	णमें	ण् में
१८	हेडिंग	स्कृत	संस्कृत
१९	१	व्याघ्रभ्य	व्याघ्रेभ्य
१९	८	हृच्चाद्	हृच्चाद्
२०	४	अपके	अर्थके
२१	२०	हरीणाम	हरीणाम्
२१	२६	भानुभ्याम	भानुभ्याम्
२७	४	पुष्पाणा	पुष्पाणां
२८	९	मस	मस्

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२८	१६	मस	मस्
३२	२१	प	प्र
३२	२३	सवेण	सवेण
३३	८	पलिङ्ग	पुलिङ्ग
३३	९	सव	सर्व
३५	१	उनके	उनको
३५	२३	देवता	देवता
३७	६	कुल्लपते	कुलपते
३७	८	विघ्नघ्न	विघ्न
३७	२२	श्वश्वा	श्वश्रा
३८	२०	वध्वौ	वध्वो
३९	७	अति स्म	अतिसूक्ष्म
४०	१५	होतेते	होते
४१	हेडिंग	अर	और
४३		ओर	और
४४	३	प्रनिदिन	प्रतिदिन
४५	अन्तिम	समास	समास
५३	२१	भगवन्तो	भगवन्तौ
५६	१३	कमल्के	कमलके
५८	१७	गै	गैल
५९	११	अव्यय	अव्यय

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
५८	टिप्पणी	लक्षीवत्	लक्ष्मीवत्
५८	२	भूमिमत	भूमिमत्
५८	,,	समास	समास
६०	५	स्त्रीलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
६०	अन्तिम	मष्टर्तम्	मष्टुर्म्
६१	,,	क्ष—	क्ष—
६४	७	लिले	लिये
६४	१६	मव	मैव
७५	१६	ऽत्वा	ऽत्वा
८१	४	विद्येतते	विद्योतते
८४	८	(इरा)	(इुरा)
८४	१८, २०	कर्ता कर्ति	कर्त्री कर्त्रि
८७	५	नृणा	नृणा
९०	५	जाता है	जाता है
९०	८	स्थानम	स्थानम्
९५	हेडिंग	ऋकारान्त	ऋकारान्त
९६	१	१७	१८
९६	१४	वस्तु	वस्तुषु
९९	१७	पूवके	पूर्वके
१००	८	३	२
१००	१७	दैवायत्त	

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१०८	४	प्रेरणार्थक	प्रेरणाथक
१०८	४	समासाद्य	समासाद्य
११०	३	(रत्नम्) पु	(रत्नम्) न
११०	१२	ब्राह्मण	ब्राह्मण
१११	टिप्पणी	प्रयङ्ग	प्रत्यङ्ग
११२	११	रतपरीक्षा	रत्नपरीक्षा
११३	२२	पुष—	पुष्—
११४	२	ह्नि व	ह्नि व
,,	,	छ व	व व
,,	१८	स्नात्—	स्नात्—
११६	६	साधु	साधु
,,	२०	(अङ्गम्)	अङ्गम्
११७	२०	वाल्मोकि	वाल्मीकि
११८	५	साध	साधुत्व
११८	२१	जाता	जाता है
१२०	४	किय	किया
१२०	१२	सैदिवदृभ्य	सैदिवदृभ्य
१२०	१६	सैदिवास	सैदिवांस
२२१	१२	गरिष्ट	गरिष्ठ
१२१	२०	बलिष्ठ	बलिष्ठ
१२२	२४	क्षयान्	क्षेयान्

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१२३	१	तिष्टन्ते	तिष्ठन्ते
१२४	७	भ्राष्ट	भ्राष्ट्र
१२५	२१	चोर	चौर
१२६	५	एकाद्वि,	एक, द्वि,
१३१	२४	सुहृ	सुहृ,
१३४	अन्तिम	प्रिय	प्रिय
१३५	१८	अघि	अस्थि
१३५	२०	अघन्	अस्थन्
१३५	टिप्पणी	रजम्बला	रजस्वला
१४०	अन्तिम	शृण	शृणु
१४३	७	परस्मपद	परस्मैपद
१४५	२०	भुंवा	भ्रुंवा
१४८	९	तुम	तुम्
१४८	२०	दोग्धु	दोग्धु
१५०	१५	अक्षोणाय म्	अक्षीणाथाम्
१५१	१८	सम्यक्सम्पद	सम्यत्सम्पद
१५२	१३	(ज व)	(ज व)
१५२	१५	ओजखिता	ओजस्विता
१५४	१२	(सुयोधन)	(सुयोधन)
१५८	२१	ब्रूवीत	ब्रुवीत
१६२	२०	हृद्धि	विद्धि

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१६४	१८	अगुठी	अगूठी
१६५	७	करण	कारण
१६७	१६	त्व	त्वां
१६८	१५	भ्रस्ज	भ्रस्ज्
१६९	१५	ग्रस	ग्रस्
१७५	१९	दैवेन	दैवेन
१७८	टिप्पणी	प्रत्यग	प्रत्यय
१८३	,,	बन्द्धम्	बन्धम्
१८४	२०	भिन्ते	भिन्दताम्
१८४	२४	भिन्तैं	भिन्दताम्
१८५	२	अभिन्ताम्	अभिन्ताम्
१८७	२२	द्दह	द्दुह्
१८८	२२	दिवसै	दिवस
१९१	अन्तिम	अनुकुल	अनुकूल
१९२	टिप्पणी	रञ्ज	रञ्ज्
१९४	२२	मकारो	मकारौ
१९७	४	—तृत—	—तृतृ—
१९७	१९	विभराम है	विभरामहै
२०२	१४	पाप	पाप
२०३	५	कत	कृत
२०३	६	पुनदर्शनानि	पुनर्दर्शनानि

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२०८	१२	यावनमत्यक्रामत्	यौवनमत्यक्रामत्
२११	१	शवतम	शततम
२१८	१	अवयव	अवयवै
२१९	७	अव्ययीभाव	अव्ययीभाव
२२१	५	अपर	अपर
२२१	६	मध्यान्ह	मध्याह्न
२२१	१३	कमन्नम	कमलम्
२२५	हेडिंग	तत्प रुष	तत्पुरुष
२२५	१	कोइ	कोई
२२६	अन्तिम	उत्पत्र	उत्पन्न
२२८	२	मविज्ञान	संविज्ञान
२२८	१५	इत्यादि	इत्यादि
२३३	६	(विस्तार)	(विस्तार)
२३४	१२	शब्दसमूहा	शब्दसमूहों
२४०	१०	प्रजायन्त	प्रजायन्ते
२४०	१६	क्लोतु—	क्लोतु—
२४१	३	रुदता	रुदती
२४४	१	(परिचप)	(परिचय)
२४७	८	परिवसन	परिवर्तन
२४७	२४	धातुको	धातुओंको
२४७	टि० ३	उद्दन्ते—	ऊदृदन्ते—

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
२५०	३	मुट्	लुट्
२५०	८	लुड्	लङ्
२५१	७	हध	हध
२५२	८	अ।नामिक	अनुनामिक
२५३	७	प्रज्ञात	प्रकृति
२५६	७	मारकी	मोरकी
२५७	२२	हटहच	यटहच
२६२	७	चिक्राथ	चिक्राय
२६२	१२	पामच्छ	पामच्छु
२६२	१७	अक्रतु	अक्रतु
२६३	७	अविकार	अविकारच
२६३	१४	र, व	र्, व्
२६६	१	गुण सन्निपाते	गुणसन्निपाते
२६६	१७	परस्पर	परस्पर
२६७	५	हत्ति	हत्ति
२७०	१८	ऋकारान्त	ऋकारान्त
२७१	८	वच	वच
२७३	३	पूर्व	पर
२७३	अन्तिम	व्राह्मा	व्राह्मण
२७५	२	गखाये	गाखाये
२७५	३	वप	वप

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२७८	१५	माला कारा	मालाकारा
२८२	२०	मित	मिति
२८५	६	(स्त्री)	(स्त्री)
२८६	१५	दूर्धी	दुधी
२९१	हेडिंग	हित	सहित
२९३	८	दर्शन	दर्शन
२९४	२	षड	षड्
२९४	५	परिष्वजे	परिष्वजे
२९९	३	अवादिष्ठाम्	अवादिष्टाम्
२९९	१७	दृष्ठाम्	दृष्टाम्
२९९	अन्तिम	अचालिष	अचालिषु
३०५	१३	न्यत	न्यत
३०६	११, १३	यतयन्य	यतयोऽन्य
३०६	१६	रत्यु पाय	ऽत्युपाय
३०६	१६	तैमत्यन्तिक	तैमात्यन्तिका
३०८	२०	सदनुण	सद्‌गुण
३०९	५	भ्राया	भुरा
३१०	६	चितिर्भेनुरिव	चितिर्धेनुरि
३१३	२४	रुद्रैच्छिया	रुद्रैच्छिया
३१४	१२	तावुभो	तावुभौ
३१६	१७	करनेमे	करनेमें

पृ.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	बैठक	बैठक्
[illegible]	७	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	८	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	मिच	मिच
[illegible]	१०	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	धम	धम
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	४	सौम्य	सौम्य
[illegible]	[illegible]	लदग	लदन
[illegible]	८	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	य	ये
[illegible]	[illegible]	-का मापदो	कामापदो
[illegible]	[illegible]	या यामवस्या	या यामवस्या

पृ०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
३५०	१०	धम	धम
३५१	५	नाश्नुते	नाश्नु ते
३५१	८	वशो	वशी
३५२	८	मृत्यना	मृत्य ना
३५५	३	चन्द्रोज्ज्वला	चन्द्रोज्ज्वला
३५२	२३	द्रुमालय	द्रुमालय
३५७	२५	वक्तव्य	वैक्तव्य
३५८	२५	दरत—	दूरत—
३६०	१	०नुसत्या	नुसत्या
३६२	७	चाटन्	चाटून्
३६२	८	नया	नैयां
३६५	१७	विधय	विधेय
३६६	६	अतिकान्तो	अतिक्रान्तो
३७१	२२	प्रत्यभ्यन्नास	प्रत्यभ्यनाशी
३७८	११	साऽर्थां०	सोऽर्थां०
३८०	१८	पङ्क चनेवाला	पङ्कु चनेवाला
३८१	२	मुनके	मुनिके
३८३	५	ह	है
३८८	१३	वाद	बाद
३८८	अन्तिम	शाकल्पस्य	शाकल्यस्य
३८९	१	य	य